बुद्धिमान् ब्रह्माने जब बहुतसे प्राणियोंकी सृष्टि की है; तब आकाश आदि पांचकी ही महाभूत नामसे प्रसिद्धि क्यों हुई ?

भृगु बोले, परिमित पदार्थके पहिले महत् शब्दका योग होता है और अपरिमित पदार्थही भूत नामसे प्रसिद्ध हुआ करते हैं, इस ही कारण आकाश आदिकोंका महाभूत नाम युक्तियुक्त होता है। चेष्टात्मक वायु सुषात्मक आकाश उष्णात्मक अग्नि, द्रवमय जल, और अस्थिमांसमय कठिनात्मक पृथ्वी इन पञ्चभूतोंके संयोगसे शरीर उत्पन्न होता है; स्थावर जङ्गम सब पदार्थ ही इन पञ्चभूतोंसे संयुक्त हैं; कान, नाक, जीभ, त्वचा और नेत्र इन पांचोंका नाम इन्द्रिय है।

भरद्वाज बोले, स्थावर जङ्गम सब पदार्थ ही यदि पञ्चभूतोंसे संयुक्त हैं, तो वृक्षादि स्थावर शरीरोंमें पञ्चभूत क्यों नहीं दीखते। उष्मभाव निबन्धन निरग्नि और चलनसे रहित होनेसे चेष्टाहीन प्रकृत रूपसे निविड़ संयोग विशिष्ट वृक्षोंके शरीरमें पञ्चभूत नहीं दीख पड़ते। जिन्हें देखने, सुनने, सूंघने, चखने और स्पर्श करनेकी शक्ति नहीं है, वे किस प्रकार पाञ्चभौतिक होंगे। जो द्रव पदार्थ नहीं है, जिनमें अग्नि, भूमि और वायु नहीं है तथा जिनमें आकाश नहीं मालूम होता; उन वृक्षोंमें भौतिकत्व सम्भव नहीं हो सकता।

भृगु बोले, वृक्षोंके निविड़ संयोग विशिष्ट होने पर भी उनमें निःसन्देह आकाश है, क्यों कि सदाही उनमें फूल और फल प्रकाशित होते हैं उष्णताके कारण उनके त्वचा, फल पुष्प और पत्ते मलिन होते हैं; इससे अग्निके रहनेकी असम्भावना नहीं है। वृक्ष समूह म्लानि युक्त और शीर्ण होते हैं, इससे उनमें अवश्यही स्पर्शात्मक वायु है। अग्नि, वायु और वज्रके शब्दसे वृक्षोंके फल फूल गिरते हैं, इससे जबकि श्रोत्रसे शब्दका ज्ञान होता है, तब अवश्यही वे सब सुनते हैं। जबकि लता वृक्षोंमें लपटती और सब ओर गमन किया करती हैं, तब वृक्षोंको अवश्यही दर्शन शक्तिसे युक्त कहना पड़ेगा; क्यों कि दर्शन शक्तिसे हीनको गमन करनेकी सम्भावना नहीं रहती। पवित्र और अपवित्र गन्ध और अनेक तरहकी धूप सब वृक्ष रोग रहित और पुष्पित हुआ करते हैं, इससे वे अवश्यही घ्राणशक्तिसे युक्त हैं; जड़से जलको आकर्षण व्याधि और उसकी प्रतिक्रिया दर्शन निबन्धनसे यह स्वीकार करना पड़ेगा, कि वृक्षोंमें चखनेकी शक्ति है। वक्र, उत्पल, मृणालसे जैसे लोग ऊपरको जल उठाते हैं, वैसेही वृक्ष वायुसे संयुक्त होकर मूलके जरिये जल पीते हैं। वृक्षोंको सुख दुःखका ज्ञान है और काटनेसे फिर उत्पत्ति होती है, इससे देखता हूं, कि उनमें जीवन है; इसलिये यह नहीं कह सकते कि वृक्षोंमें चैतन्यता नहीं है। वृक्ष जो जल खींचता है, अग्नि और वायु उसे जीर्ण किया करते हैं; उनके आहारके परिमाण अनुसार स्निग्धताकी भी वृद्धि होती है। सब जङ्गम पदार्थोंके शरीरमें पञ्चभूत संयुक्त है, जिनके जरिये सब शरीरके चेष्टा सम्पन्न होती हैं, वह सब हर एकमें प्रकाशित हुआ करता है। त्वचा, मांस, हड्डी, मज्जा और स्नायु, ये पांचो पार्थिव पदार्थ संहतरूपसे शरीरमें विद्यमान हैं; प्राणियोंमें अग्नि स्वरूप तेज, क्रोध, नेत्र, उष्मा और जठराग्नि जो कि सब भक्ष वस्तुओंको परिपाक करती है, ये पांचो आग्नेय पदार्थ हैं। कान, नाक, मुख, हृदय और कोठे अर्थात् अन्न आदिके स्थान, ये पांचो प्राणियोंके शरीरमें आकाशसे उत्पन्न हुए हैं। कफ, पित्त, पसीना, चर्बी और रुधिर, ये पांचो जलके अंश प्राणियोंके शरीरमें सदा स्थित रहते हैं। प्राणी लोग प्राण वायुके आसरे गमन आदि कार्य्य करते, व्यानवायुको अवलम्बन करके बलसाध्य कार्य्योंके लिये तैयार होते हैं, अपान वायु अधोगमन

करता है, समान वायु हृदयमें स्थित रहता है और उदान वायुसे उच्छास, उर, कण्ठ और शिर स्थानको भेदकर शब्द उच्चारण होता है। ये पांचो प्रकारकी वायु इसी भांति प्राणियोंको अंगचालन आदि चेष्टा सिद्ध करती हैं। भूमिसे गन्ध, जलसे रस, तेजोमय नेत्रसे रूप और वायुसे स्पर्श ज्ञान हुआ करता है। गन्ध स्पर्श, रूप और शब्द, ये पृथ्वीके पांच गुण हैं; उसके बीच विस्तार पूर्व्वक गन्धका नव प्रकार गुण कहता हूं सुनो। इष्ट, अनिष्ट, मधुर, कटु, दूरगामी, स्निग्ध, रूखा और विषद, ये नव प्रकार पार्थिव पदार्थोंके बीच गुण हैं। नेत्रसे पृथ्वी आदिका रूप देखा जाता है, त्वक इन्द्रियसे स्पर्श ज्ञान उत्पन्न होता है। शब्द, स्पर्श रूप और रस, ये चारों जलके गुण हैं, तिसमें जिस तरह रसज्ञान हुआ करता है, उसे कहता हूं सुनो। विख्यात महर्षियोंने रसको अनेक प्रकारका कहा है; मीठा, खारा, तीखा, कषैला, खट्टा और कड़ुवा, ये छः तरहके रस जलमय कहके प्रसिद्ध हैं। शब्द, स्पर्श और रूप, ये तीनों अग्निके गुण हैं; ज्योतिके जरिये वस्तुका रूप देखा जाता है। रूप अनेक प्रकार है; ह्रस्व, दीर्घ स्थूल, चतुरस्र, गोलाकार, सफेद, काला, लाल, नीला, पीला, अरुण, कठिन चिकना, श्लक्ष्ण, पिच्छल, मृदु और दारुण, ये सोलह तरहके रूपके गुण ज्योतिमय कहके विख्यात हैं। शब्द और स्पर्श, ये दोनों वायुके गुण हैं, उसमेंसे स्पर्श अनेक प्रकारका है। गर्म्म, ठण्ढा, सुखदायक, दुःखदायक, स्निग्ध, विषद, कड़ा, कोमल, श्लक्ष्ण, लघु और गुरु ये ग्यारह प्रकार वायुके गुण हैं। आकाशका गुण केवल अकेला शब्द है; उस शब्दके अनेक भेद हैं, उसे विस्तार पूर्व्वक कहता हूं, सुनो। षड्ज, ऋषभ, गान्धार मध्यम, धैवत, पञ्चम और निषाद ये सात प्रकारके गुण आकाशसे उत्पन्न होते हैं; ये सब शब्द व्यापक भावसे सर्व्वत्र रहनेपर भी पटह आदि वाद्ययन्त्रोंमें विशेषरूपसे मालूम हुआ करते हैं। मृदंग, भेरी, शङ्ख आदि वाद्ययन्त्र, बादल, रथ, प्राणी वा अप्राणी, जिनमें जो कुछ शब्द सुन पड़ते हैं, वे सब इन सातों स्वरोंके अन्तर्गत कहके वर्णित हुआ करते हैं। इसी भांति आकाशसे प्रकट हुए शब्दका अनेक प्रकार रूप है, पण्डित लोग आकाशसे शब्दकी उत्पत्ति कहा करते हैं। ये सब शब्द स्पर्शसे प्रतिहत होकर बीच तरङ्गकी तरह उत्पन्न होते हैं और विषम अवस्थामें रहनेसे वे मालूम नहीं होते। देहारम्भकत्वक आदि प्राण और इन्द्रियोंके जरिये प्रथमसे ही बढ़ते रहते हैं। जल, अग्नि और वायु सदा देहधारियोंमें जाग्रत हैं, येही शरीरके मूल हैं, पञ्चप्राणोंको अवलम्बन करके इस शरीरमें निवास करते हैं।

१८४ अध्याय समाप्त।

भरद्वाज बोले, हे भगवन्! शरीरमें स्थित अग्नि इस पाञ्चभौतिक देहको अवलम्बन करते हुए किस प्रकार निवास करती है और वायुही किस प्रकार आकाश विशेषके जरिये सब शारीरिक चेष्टाओंको समाधान किया करता है।

भृगु बोले, हे ब्रह्मन्! मैं तुम्हारे समीप वायुकी गतिका विषय कहता हूं, वायु जिस प्रकार प्राणियोंको शारीरिक चेष्टा समाधान करता है, उसका विषय सुनो। अग्नि मस्तकमें निवास करके शरीरको पालती हुई शारीरिक चेष्टाओंको समाधान करती है और प्राणवायु मस्तक और अग्नि दोनोंमें वर्त्तमान रहके शरीरके गमन आदि कार्य्योंको सिद्ध किया करता है। वह प्राणही सर्व्वभूतमय सनातन पुरुष है; मन, बुद्धि, अहङ्कार सब जीव और शब्द स्पर्शरूपी विषयोंके स्वरूप, आन्तरिक विज्ञान और बाह्य इन्द्रिय आदि प्राणसेही परिचालित होती हैं। अनन्तर समान वायुके

जरिये इन्द्रिय आदि निज निज गतिको अवल-म्बन करती हैं। अपानवायु जठराग्निको अव-लम्बन करके मूत्राशय और पुरीषाशयमें स्थित अशित पीत वस्तुओंको परिपाक करके मूत्र और पुरीषरूपसे परिणत करता है। गमन आदिके कार्य, उसके अनुकूल चेष्टा और बोझा ढोनेकी सामर्थ, इन तीनों विषयोंमें जो वायु वर्त्तमान रहती है, अध्यात्मवित पुरुष उसे उदान वायु कहा करते हैं। मनुष्योंके शरीरकी सब सन्धियोंमे जो वायु संयुक्त है उसे व्यान वायु कहा जाता है। त्वक आदिमें फैली हुई जठराग्नि समान वायुसे सञ्चालित होकर रस, धातु, रुधिर और पित्त आदिकी परिणति कियाकरती है,यह जठराग्नि नाभीकेनीचे स्थित होकर अपनी ऊर्द्ध-गतिको प्राणके मध्यस्थलमें स्थित करके उसकी सहायतासे अन्न आदि परिपाक करती है। मुखसे पावपर्य्यन्त एक प्रवाहमान् स्रोत है, उसके शेषमें गुह्य स्थान है। उस स्रोतके चारो ओरसे देहके बीच असंख्य नाड़ी विस्तीर्ण होरही हैं। प्राण वायुकी सहायतासे उसकी सहचर जठराग्निका समागम हुआ करता है, उस जठराग्निका नाम उष्मा है; यही देहधारियोंके भुक्त अन्न आदिको परिपाक करती है। जठराग्निके वेगको बढ़ाने-वाला प्राणवायु पावतक आके प्रतिघातको प्राप्त होता है। तब वह फिर ऊपरको आके जठरा-ग्निका सब तरहसे उत्क्षिप्त करता है। नाभीके नीचे पक्काशय अर्थात् पक्कअन्न आदिकोंका स्थान है और ऊपरके हिस्सेमें आमाशय स्थित है; शरीरके मध्य स्थलमें समस्त प्राण स्थित होरहा है। प्राण आदि पञ्च वायु और नाग, कूर्म्म, कृकर, देवदत्त तथा धनञ्जय नाम पञ्च-वायु, इन दश प्रकारके वायुके सहारे चलकर सब नाड़ियें तिर्य्यग, ऊर्द्ध और अधोभाग हृदय प्रदेशमें प्रस्थान करती हुई अन्नके रसोंको ढोया करती हैं। मुखसे पांव तक जो स्रोत है, वही योगियोंके योगका पथ है; क्लान्ति विजयी सुख दुःखको समान जाननेवाले वीर योग मस्तक स्थित सहस्र दल पद्ममें सुषुम्ना नाड़ीके जरिये इसही मार्गमें आत्माको धारण करते हुए परम पद लाभ करते हैं। स्थालीमें रखी हुई वाह्य अग्निकी तरह देहधारियोंका बुद्धि, मन, कर्म्मेन्द्रिय और प्राण अपानके जरिये समर्पित जठराग्नि सदा प्रदीप्त हुआ करती है।

१८५ अध्याय समाप्त।

भरद्वाज बोले, प्राणवायुही यदि प्राणियोंको जीवित और चेष्टा युक्त करती है और प्राणकी सहायतासेही यदि सब जीव श्वास छोड़ते और वार्त्तालाप किया करते हैं, तब जीव स्वीकार करनेका कुछ प्रयोजन नहीं है और अग्निका गुण उष्ण भाव है, उस अग्निके जरिये ही यदि अन्न आदि परिपाक होते और अग्निही यदि सब वस्तुओंको जीर्ण करती है, तब जीव निरर्थक है, मरेहुए जन्तुओंमे जीव नहीं प्राप्त होता, वायु ही उसे परित्याग करता और उसका उष्म भाव नष्ट होजाता है, यदि जीव वायुमय होता अथवा वायुके सहित संश्लिष्ट रहता, तो वायु चक्रकी तरह दीखके वायुकी तरह विगत हो सकता है; जैसे पत्थरमें बधा हुआ तूंबी फल जलमें डूब जाता है और बन्धनसे छूटनेपर उन्मग्न हुआ करता है, वैसेही जीव यदि वातप्रधान संघातसे संश्लिष्ट रहै; तो संघात नाशसे वह भी प्रनष्ट होगा। जैसे कूएंके बीच सलिलान्तर और अग्निके बीच प्रकाश प्रवेश करतेही नष्ट होता है, तैसेही वायु मण्डल विशिष्ट जीव भी नष्ट हो सकता है। इस पाञ्च भौतिक शरीरमें जीवन कहां है। पञ्चभूतोंमेंसे एकका अभाव होनेसेही अन्य चारोंका एकत्र संग्रह नहीं होता। अना-हारके कारण समस्त जल, उच्छ्वास निग्रह निब-न्धनसे वायु, वात आदिसे कोष्ठ निरुद्ध होनेपर आकाश और अभोजनके कारण अग्नि नष्ट हुआ करती है; व्याधिसे पराक्रम नष्ट होने-

पर पार्थिव अंश भौमों हो जाता है; इसके बीच अन्यतर पीड़ित होनेसे भौतिक संघात पञ्चलको प्राप्त होते हैं; पञ्चभौतिक शरीर पञ्चलको प्राप्त होनेपर जीव किसका अनुसरण करेगा, किन विषयोंका ज्ञान करता है। "परलोक गमन करनेपर यह गऊ मेरा उद्धार करेगी"—इस उद्देश्यसे गऊ दान करनेपर कोई पुरुषके मरनेसे वह गऊ फिर किसका उद्धार करेगी। गऊ दान लेनेवाला और दाता, सभी जीव समान भावसे इस जगत्में मृत्युको प्राप्त होते हैं; तब फिर उन लोगोंका समागम कहां। पक्षियोंसे उपभुक्त, पहाड़की शिखरसे गिरे और अग्निसे जले हुए पुरुषोंमें पुनर्जीवन कहां। जबकि कटे हुए वृक्षोंकी जड़ फिर उत्पन्न नहीं होती, केवल उसके बीज उत्पन्न हुआ करते हैं; तब मरा हुआ पुरुष कहांसे पुनरागमन करेगा। पहिले बीज मात्र उत्पन्न हुआ था; जो इस समय भी परिवर्त्तित होता है। मरण धर्म्मसे युक्त प्राणी लोग मरके प्रनष्ट होते हैं; बीजसे बीजही प्रवर्त्तित हुआ करता है।

१८६ अध्याय समाप्त।

भृगु बोले, हे महर्षि! जीवका विनाश नहीं होता; प्राणी देहान्तरमें गमन करते हैं, शरीरही नष्ट होता है। जैसे लकड़ियोंके जलनेसे अग्नि विद्यमान रहती है, वैसेही शरीरके नष्ट होनेपर शरीराश्रित जीव कभी नष्ट नहीं होता।

भरद्वाज बोले, हे महात्मन्! यदि अग्निकी तरह जीवका विनाश नहीं होता यही आपकी सम्मत है, तब काठके जलनेपर अग्नि अदृश्य क्यों होती है। इससे बोध होता है, कि जैसे अग्नि काठ न मिलनेसे बुझ जाती है; उसी प्रकार जीव भी नष्ट हुआ करता है। जिसकी गति, प्रमाण वा सस्थान कुछ भी नहीं रहता, उसे विद्यमान वस्तु कहके किस प्रकार विवेचना की जावे।

भृगु बोले, यह ठीक है कि काठोंके न जानेपर अग्निकी प्राप्ति नहीं होती; परन्तु जैसे अग्नि निराश्रय होकर आकाशके अनुगत होनेसे दुर्लक्ष्य हुआ करती है, वैसे ही शरीरके नष्ट होनेपर जीव आकाशकी तरह स्थिति करता है; जीव अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे ज्योतिवाले पदार्थोंकी भांति निःसन्देह इन्द्रियगोचर नहीं होता। विज्ञान रूपी अग्नि प्राणोंको धारण करती है इसलिये उसेही जीव रूपसे जानो। यह अग्नि वायुके सहित निवास करती है और उच्छ्वास वायुके निग्रह-निबन्धनसे नष्ट होती है, उस शरीराग्निके नष्ट होनेसे देह चैतन्य रहित हुआ करता है, और गिरके पृथ्वीमें लीन होजाती है, पृथ्वीही शरीरके निवासका स्थान है। स्थावर और जङ्गम समस्त पदार्थ निश्चय आकाशके अनुगत होता है, अग्नि वायुका अनुगमन किया करती है। आकाश, वायु और अग्नि, इन तीनोंकी ऐक्यताके कारण भूमिमें ये तीनों एकत्रित वा जल स्थित करता है। जहांपर आकाश, वहांही वायु है और जहां वायु है वहांही अग्नि स्थित रहती है; ये तीनोंही अदृश्य हैं, केवल देहधारियोंके सम्बन्धमें दृश्य हुआ करते हैं।

भरद्वाज बोले, हे महात्मन्! यदि आकाश, वायु, जल, अग्नि और भूमि ये पञ्चभूतही देहधारियोंमें वर्त्तमान हैं; तो इनके बीच जीव किस प्रकार है, यही आप मेरे समीप वर्णन करिये। पञ्चभूतात्मक पञ्च विषयोंमें रत, पञ्च इन्द्रिय और चेतनता युक्त प्राणियोंके शरीरमें जीव जिस प्रकार निवास करता है उसे मैं जाननेकी अभिलाषा करता हूं। मांस, रुधिर, मेदा स्नायु और हड्डियोंसे युक्त शरीरके नष्ट होनेपर जीवकी उपलब्धि नहीं होती। पञ्चभूतोंसे युक्त शरीर यदि जीव रहित हो, तो शारीरिक वा मानसिक दुःख उपस्थित होनेपर कौन उस क्लेशको अनुभव करेगा? हे महर्षि।

जीव दोनों कानोंसे वचन सुनता है; परन्तु मन विषयान्तरमें व्यग्र रहनेसे, वह उसे सुननेमें समर्थ नहीं होता; इसलिये जीव निरर्थक है। जीव सावधान होनेपर नेत्रसे सब दृश्य वस्तु-ओंको देखता है पर मन व्याकुल होनेपर नेत्रोंसे देखकर भी नहीं देख सकता। जीव निद्राके वशमें होनेसे देखने, सुनने, सूंघने और बोलनेमें समर्थ नहीं होता तथा स्पर्श घ्राण और रसका ज्ञान भी नहीं हो सकता। इस शरीरके बीच कौन प्रसन्न होता, कौन क्रुद्ध होता है, कौन शोक करता और कौन व्याकुल होता है, कौन इच्छा करता कौन चिन्ता करता, कौन द्वेष करता है और कौन वाक्य उच्चारण करता है? आप मुझसे उसेही कहिये।

भृगु बोले, हे ब्रह्मन्! मन पञ्चभूतोंसे पृथक् नहीं है। इससे मनके जरिये शारीरक क्रियाका निर्व्वाह नहीं होता। एकमात्र अन्त-रात्माही स्थूल और सूक्ष्म शरीरके कार्य्योंका निर्व्वाह करता है; अन्तरात्माही शब्द, स्पर्श, गन्ध, रस और दर्शन आदि सब विषयोंको जानता है। वह अन्तरात्माही पाञ्च भौतिक शरीरमें पाञ्चगुणोंसे युक्त मनका द्रष्टा है और मनके जरिये सब शरीरके अनुगत होकर सुख दुःखोंका अनुभव करता है। अन्तरात्मा जब देहसे पृथक् होता है तब भौतिक शरीर कुछ भी अनुभव करनेमें समर्थ नहीं होता है। शरीराग्निके शान्त होनेपर जब कि दर्शन स्पर्शन और उष्मभाव कुछ भी नहीं रहता तब शरीर नष्ट होता है, जीवका कदापि विनास नहीं होता। दृश्यमान् समस्त संसार जलमय है, जलही देहधारियोंकी मूर्त्ति है; जलके बीचही चित् स्वरूप मानस ब्रह्मा निवास करते हैं, वेही सर्व्व भूतोंकी सृष्टि किया करते हैं। आत्मा जब प्राकृत गुणों अर्थात् इन्द्रिय और मनसे संयुक्त होता है तब उसे क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीव कहा जाता है और जब वह उन गुणोंसे रहित होता है, तब परमात्मा स्वरूपसे वर्णित हुआ करता है; इसलिये तुम सर्व्वलोकोंके सुख स्वरूप आत्माको मालूम करो। जो पद्मके बीच जलकी बूंद समान शरीरके बीच स्थित हो रहा है, उसेही सदा लोक सुखात्मक क्षेत्रज्ञ कहके जानना चाहिये। सत, रज और तम येही जीवके तीन गुण हैं; पण्डित लोग जीवकी गुणोंको सचेतन कहा करते हैं। वे आत्माके प्रभावसे चेष्टा युक्त होकर सब कार्य्योंमें तत्पर हुआ करते हैं। आत्मज्ञ पुरुष इस जीवको पर-मात्माको परमश्रेष्ठ कहा करते हैं; उसनेही सप्त भुवनकी सृष्टि की है। शरीरके नष्ट होनेसे जीवका नाश नहीं होता, "जीव मर गया"—यह वचन मूर्ख लोग कहा करते हैं। शरीरके पञ्चत्व प्राप्त होनेपर जीव दूसरे शरीरमें गमन करता है; आत्मा इसी प्रकार सर्व्वभू-तोंमें संवृत रहके गूढभावसे विचरण करता है, तत्वदर्शी लोग परमसूक्ष्म बुद्धिके जरिये उसे देखनेमें समर्थ होते हैं। विद्वान् पुरुष पूर्व्व और अपर रात्रिमें रत तथा लघु आहार करते हुए पवित्र चित्त होके आत्माके जरिये आत्माको अवलोकन करते है। प्रसन्नतासे शुभाशुभ कर्म्मोंको त्यागकर शुद्धचित्त और आत्मनिष्ठ होनेसे मनुष्य अनन्त सुख भोग कर-नेमें समर्थ होता है। जरायुज आदि शरीरोंमें आगकी तरह प्रकाशमान जो पुरुष है वही जीवनामसे विख्यात् है, उसहीसे प्रजापतिकी यह समस्त सृष्टि हुआ करती है।

१८७ अध्याय समाप्त।

भृगु बोले, हे द्विजसत्तम! पहिले ब्रह्माने अपने तेजसे सूर्य्य और अग्निके समान प्रकाश-युक्त मरीचि आदि ब्रह्मनिष्ठ प्रजापतियोंको उत्पन्न किया था। अनन्तर उन्होंने सुखके लिये सत्य, धर्म्म, तपस्या, शाश्वत, वेद, पवित्रता और

आचारका विधान किया; देवता दानव गन्धर्व्व दैत्य, असुर, महोरग, यक्ष, राक्षस, नाग, पिशाच, मनुष्य और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इनके अतिरिक्त सब भूतोंके सत, रज और तमोगुणसे युक्त जो सब वर्ण हैं, उनकी भी सृष्टि की थी। ब्राह्मणोंका सफेद, क्षत्रियोंका लाल, वैश्योंका पीला और शूद्रोंका काला वर्ण हुआ करता है।

भरद्वाज बोले, ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि चारों वर्णोंकी जातिके जरिये यदि वर्णभेद हो, तो सब जातिही वर्ण सङ्कर दृष्टिगोचर हो सकती हैं। काम, क्रोध, भय, लोभ, शोक, चिन्ता, क्षुधा और श्रम सबमें समान भावसे सम्भव नहीं होता; इसलिये किस प्रकारसे वर्ण विभिन्न होगा। पसीना, पुरीष, मूत्र, कफ, पित्त और रुधिर सब शरीरोंसे भरता रहता है; इससे किस प्रकार वर्णविभाग हो सकता है। अनेक स्थावर और जङ्गम जातिके वर्ण कई प्रकारके हैं; उन सब विभिन्न जातियोंके वर्ण किस तरह निर्णय किये जा सकेंगे।

भृगु बोले, सब वर्णोंमें विशेष नहीं है, यह सब जगत् पहिले ब्रह्माके जरिये उत्पन्न होके ब्राह्मणमय था, फिर कर्म्मके अनुसार विविध वर्ण हुए हैं। जो सब ब्राह्मण काम भोगमें अनुरक्त, तीक्ष्णभाव, क्रोधी, साहसी, स्वधर्म्मत्यागी और लोहिताङ्ग थे, वेही क्षत्रियत्वको प्राप्त हुए हैं। जो लोग गौओंसे जीविका निर्व्वाह करते हुए कृषिजीवी हुए हैं, और स्वधर्म्मका अनुष्ठान नहीं करते, उन्हीं पीतवर्णवाले ब्राह्मणोंने वैश्यत्व लाभ किया है; और जो सब ब्राह्मण हिंसा तथा मिथ्यामें रत, सर्व्वकर्म्मोपजीवी कृष्णवर्ण और पवित्रतासे परिभ्रष्ट थे, वेही शूद्र हुए हैं। इन सब कर्म्मोंसे पृथक् किये गये ब्राह्मण लोगोंने ही वर्णान्तरमें गमन किया है। लोगोंके यज्ञक्रिया आदि धर्म्म सदा प्रतिषिद्ध नहीं हैं। ब्राह्मणोंके चारों वर्णोंमें विभक्त होनेपर भी सबको ही वेदमें अधिकार है, केवल जो लोग मोहके कारण ज्ञानहीन हुए उन शूद्रोंको वेदमें अधिकार नहीं है; इसे विधाताने कहा है। जो सब ब्राह्मण वेदोक्त कर्म्मोंका अनुष्ठान किया करते हैं और सदाव्रत तथा नियम धारण करते हुए वेदाध्ययन करते हैं, उनकी तपस्या नष्ट नहीं होती। जो लोग ब्रह्माके कहे हुए परमश्रेष्ठ वेदसे अनभिज्ञ हैं; वे लोग ब्राह्मण नहीं हैं; बहुतसी जाति उनके समान हैं। पिशाच, राक्षस, प्रेत और अनेक प्रकारकी म्लेच्छ जाति ज्ञान विज्ञानसे रहित होकर स्वेच्छाचारी होके कार्य्य किया करती हैं। प्राचीन महर्षियोंने निज तपोबलसे वेदविहित संस्कारमें रत स्वकर्म्मोंमें निश्चय करनेवाली और भी दूसरी प्रजासमूहको उत्पन्न किया है; आदि देव विधाताकी सृष्टि वेदमूलक अक्षय तथा अव्यय है और मानसीसृष्टि योगानुष्ठान परायण हुआ करती है।

१८८ अध्याय समाप्त।

भरद्वाज बोले, हे वक्तृवर द्विजोत्तम विप्रर्षि! किन कर्म्मोंसे ब्राह्मण होता है, क्या करनेसे क्षत्रिय हुआ करता है और किस तरहके कार्य्योंसे वैश्य तथा शूद्र होते हैं? आप उसे वर्णन करिये।

भृगु बोले, जातधर्म्म संस्कारसे जो संस्कारयुक्त और पवित्र हुए हैं और जिन्होंने वेदाध्ययन किया है; प्रतिदिन सन्ध्या, स्नान, जप, होम, देवपूजा, आतिथ्य, वा बलि वैश्वदेव, इन षटकर्म्मोंको किया करते हैं, पवित्रता और आचारसे युक्त पूर्णरीतिसे विघसाशी गुरुजनोंके प्रियपात्र, नित्यव्रती और सत्यपरायण हैं, उन्हींको ब्राह्मण कहा जाता है, जिनमें सत्य, दान, अद्रोह, अनृशंसता, दया, लज्जा और तपस्या है, वेही ब्राह्मण होते हैं। जो युद्ध आदि हिंसा-

कार्य्य किया करते हैं, वेदाध्ययनमें अनुरक्त होते और ब्राह्मणोंको अर्थदान तथा प्रजासमूहसे धन ग्रहण करते हैं, उन्हें ही क्षत्रिय कहा जाता है। जो लोग कृषि और पशुपालन करते दान करनेमें अनुरक्त रहते, पवित्रता और वेदाध्ययनसे युक्त हैं, वेही वैश्य कहाते हैं। जो पुरुष सदा सब वस्तुओंके भक्षणमें ही अनुरक्त, सब कर्म्मोंके करनेमें आसक्त, अपवित्र वेदज्ञानसे रहित और अनाचारी उसेही शूद्र कहते हैं। ब्राह्मणका लक्षण यदि शूद्रमें दीखे तो वैसा शूद्र भी शूद्र नहीं है और ब्राह्मणमें यदि उसके लक्षण न हों, तो उसे ब्राह्मण नहीं कहा जाता। सब उपायोंसे क्रोध और लोभका निग्रह तथा आत्मसंयम ही ज्ञानका पवित्र लक्षण है। क्रोध और लोभ कल्याण नष्ट करनेकोही उत्पन्न हुआ करते है, इसलिये उन्हें निवारण करना उचित है। सदा सावधान होके क्रोधसे श्री, मत्सरसे तपस्या, मान तथा अपमानसे विद्या और प्रमादसे आत्माको रक्षा करनी उचित है।

हे द्विजश्रेष्ठ! जिन्हें सब कर्म्मोंमें कामना नहीं है, और दान विषयमें जिनकी समस्त सम्पत्ति समर्पित हुई है, उसेही त्यागशील और बुद्धिमान् कहा जाता है। सब भूतोंकी हिंसा न करके सबके विषयमें मित्र भाव दिखाते हुए भ्रमण करे, परिजनोंकी बुद्धि पूर्व्वक त्यागके जितेन्द्रिय होवे, शोक रहित स्थान अर्थात् आत्मामें निवास करे तो इस लोक और परलोकमें किसी भयकी सम्भावना न होवे। सदा तपस्यामें रत, दान्त मौनव्रतावलम्बी, संयतात्मा, अजित काम आदिको जय करनेके अभिलाषी और सङ्गके कारण पुत्र कलत्र आदिमें आसक्ति रहित होना योग्य है। इन्द्रियोंसे जिन वस्तुओंका ज्ञान हुआ करता है, उसेही व्यक्त कहते हैं और इसे जानना उचित है, कि सूक्ष्म शरीरगोचर अतीन्द्रिय पदार्थही अव्यक्त है। गुरु और वेद वचनमें विश्वास न रहनेसे परम पदार्थ नहीं मिलता; इसलिये विश्वासमें चित्त स्थिर करना उचित है। प्राण उपाधिक "तुम इस पदके अर्थ गोचर जीवात्मामें मन समर्पण करो और जीवात्माको परब्रह्ममें अर्पण करो।" वैराग्यसेही निर्व्वाणपद मिलता है, योगियोंको ध्यान ध्यानादिके सिवाय दूसरी कोई चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है। ब्राह्मण लोग वैराग्यसे सहजमें ही परब्रह्मको पाते हैं। सदा पवित्रता सदाचार और सब भूतोंमें यथायुक्त व्यवहारही ब्राह्मणके लक्षण हैं।

१८८ अध्याय समाप्त।

भृगु बोले, वेदज्ञानसे सत्यस्वरूप परब्रह्मको प्राप्त किया जाता है, स्वधर्म्मानुष्ठानरूपी तपस्याही सत्य है; सत्यनेही प्रजासमूहको उत्पन्न किया है; सत्यसेही ये सब लोक स्थित हैं, और सत्यसेही लोग स्वर्गमें जाते हैं। सत्यके विपरीत वेदाचारसे पृथक् यथेष्ट आचरणको मिथ्या कहते हैं, वह अज्ञान स्वरूप है; अज्ञानसेही तमोग्रस्त लोगोंकी अधोगति होती है; अज्ञानसे घिरे हुए लोग स्वर्ग दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होते। पण्डित लोग देवताओंके निवासस्थान स्वर्गको प्रकाशमय और तिर्य्यग् जातिके निवास स्थान नरकको अन्धकारमय कहा करते हैं। भूलोक वासी जीव सत्य और मिथ्या दोनोंही प्राप्त करते हैं। लोकमें सत्य और मिथ्याके विषयमें इस प्रकार व्यवहार होता है, कि धर्म्म और अधर्म्म, उजाला और अन्धेरा सुख और दुःख; उसके बीच जो सत्य है, वही धर्म्म है, जो धर्म्म है वही प्रकाश है, और जो प्रकाश है वही सुख है, जो मिथ्या है वही अधर्म्म है, जो अधर्म्म है वही अन्धेरा है जो अन्धकार हैं, वही दुःख है। इस विषयमें यही कहता हूं; कि बुद्धिमान् लोग शारीरिक और

मानसिक सुख दुःख तथा असुखोदयसे परिपूरित लोकसृष्टिको देखकर मोहित नहीं होते। बुद्धिमान् पुरुष दुःख नष्ट होनेके लिये यत्नवान् होवें। इस लोक और परलोकमें प्राणियोंका सुख नित्य नहीं है। जैसे राहुसे ग्रस्त चन्द्रमाकी किरण प्रकाशित नहीं होती, वैसेही अज्ञान युक्त जीवोंके सुखभी अन्तर्हित हुआ करते हैं। वह सुख दो प्रकारका है। शारीरिक और मानसिक लोकमें सुखके लिये ही दृष्ट फलोंकी प्रवृत्ति आविष्कृत होती हैं सुखसे बढ़के त्रिवर्ग फल और कुछ भी नहीं है। सुखही आत्माका गुण विशेष है, सुखहीके लिये धर्म और अर्थमें प्रवृत्ति होती है; धर्म और अर्थसेही सुखकी उत्पत्ति हुआ करती है, सब कार्यही सुखके लिये आरम्भ किये जाते हैं।

भरद्वाज बोले, हे ब्रह्मन्! आपने कहा, सुखही परम पदार्थ है परन्तु मैं ऐसा नहीं विचारता। आपने सुखको ही आत्माका गुण विशेष कहा है, परन्तु योगनिष्ठ ऋषि लोग इसकी अभिलाषा नहीं करते। सुनता हूं, कि त्रिलोक विधाता प्रभु ब्रह्मा ब्रह्मचारी होकर अकेले ही तपमें निष्ठावान् रहते हैं वह कभी काम सुखमें आत्म समाधान नहीं करते और जगत्के ईश्वर भगवान भवानीपतिने सम्मुख आये हुए रतिपतिको अनङ्गभावसे शान्त किया था। इन सब प्रमाणोंको देखकर कहता हूं, कि महानुभाव पुरुष कामसुखमें आसक्त नहीं होते और यह आत्माका गुण विशेष नहीं है; मैं आपके इस वचनमें विश्वास नहीं कर सकता, आपने कहा "सुखसे बढ़के परम वस्तु और कुछ भी नहीं है," फलोदय युक्त लोक प्रवाद दो प्रकारका है, पहला सुकृत; उससे सुखलाभ होता है, दूसरा दुष्कृत उससे दुःख प्राप्त हुआ करता है।

भृगु बोले, इस विषयमें मैं अपना अभिप्राय कहता हूं, अज्ञानसे अन्धकार उत्पन्न होता है वेही तमोग्रस्त लोग क्रोध, लोभ, हिंसा और मिथ्यासे परिपूरित होकर अधर्मोका आचरण किया करते हैं, धर्ममार्गमें कदापि नहीं विचरते वे लोग इस लोक और परलोकमें सुख नहीं पाते। अनेक व्याधि रोग और उपतापसे परिपूरित, बध, बन्धन, क्लेश, भूख, प्यास और श्रमजनित उपतापसे उत्तप्त और वर्षा, वायु, गर्म्मी, सर्दीके कारण शारीरिक दुःखोंसे सन्तापित तथा बान्धव, धनके विनाश विप्रयोग जनित मानस दुःख वा जरा मरण जनित शोकोंसे परिपूरित हुआ करते हैं। जो लोग समस्त शारीरिक और मानसिक दुःखोंसे संस्पृष्ट नहीं हैं; वेही सुख अनुभव करनेमें समर्थ होते हैं, स्वर्गमें इन सब दोषोंकी उत्पत्ति नहीं है; वहां सुख स्पर्श सुरभि वायु सदा बहा करती है, भूख, प्यास और श्रम नहीं है; जरा और पापका सम्पर्क नहीं है, स्वर्गमें नित्य सुख है और इस लोकमें सुख दुःख दोनोंही हैं। निरवच्छिन्न दुःखही नरक है; इसलिये पण्डित लोग सुखकोही परम पदार्थ कहा करते हैं। पृथ्वी उन जीवोंकी माता है, स्त्रियां उसके समान हैं, पुरुष प्रजापतिके समान है, उसमें तेजमय शुक्र है। पहिले समयमें प्रजापति ब्रह्माने इसही प्रकार स्त्री पुरुषोंके सहयोगसे लोक सृष्टिका विधान किया है। प्रजा निज निज कर्म्मोंसे आवृत रहके उत्पन्न हुआ करती है।

१६० अध्याय समाप्त।

भरद्वाज बोले, हे भगवन्! पुराने लोगोंने दान, धर्म्म, आचार, उत्तम रीतिसे की हुई तपस्या स्वाध्याय और होमके फलको किस प्रकार कहा है?

भृगु बोले, होमसे पापकी शान्ति होती है स्वाध्यायसे परम श्रेष्ठ शान्ति सुख मिलता है। दानसे भोग और तपस्यासे सुखप्राप्ति हुआ

करती है; यही प्राचीन लोगोंके मत हैं पण्डित लोग दानको दो प्रकारसे कहा करते हैं; पहिला पारलौकिक दूसरा ऐहिक। साधुओंको जो कुछ दान किया जाता है। परलोकमें उसका फल भोग हुआ करता है और दुष्टोंको जो कुछ दान किया जाता है, इस लोकमें उसका फल भोग हुआ करता है। मनुष्य जैसा दान करता है वैसाही फल भोग भी किया करता है।

भरद्वाज बोले, कौनसे अधिकारियोंको कैसा धर्म्माचरण करना चाहिये, धर्म्मका क्या लक्षण है और वह कितने प्रकारका है? इसेही वर्णन करना आपको उचित है।

भृगु बोले, जो बुद्धिमान पुरुष धर्म्माचरणमें नियुक्त होते हैं। उन्हें स्वर्ग फल प्राप्त होता है और जो लोग विपरीत आचरण करते हैं। वे मोहित होते हैं।

भरद्वाज बोले, पहिले समयमें ब्रह्माने जिन चारों आश्रमोंका विधान किया है आप उन सब आश्रम वासियोंका व्यवहार वर्णन करिये।

भृगु बोले, सब लोकोंके हित करनेवाले भगवान् ब्रह्माने पहिले धर्म्म रक्षाके निमित्त चार आश्रमोंका निर्देश किया था। उसके बीच गुरु कुलमें निवासरूपी ब्रह्मचर्य्य पहला आश्रम कहा जाता है। इस आश्रममें पूरी रीतिसे पवित्रता संस्कार व्रत नियम दोनो सन्ध्यामें सूर्य्य और अग्निकी उपासना तन्द्रा और आलस त्यागके गुरुको प्रणाम करना; वेदाभ्यास और वेद सुनके चित्तको पवित्र करना; त्रिकाल स्नान करके ब्रह्मचर्य्य अग्नि परिचर्य्या करते हुए गुरुसेवा और नित्य भिक्षा करनी होती है। भिक्षा आदिसे प्राप्त हुई सब वस्तु अन्तरात्माको समर्पण करके गुरु वचन निर्दिष्ट अनुष्ठानके अनुकूल होकर गुरुकी कृपासे प्राप्त हुए स्वाध्यायमें रत होना पड़ता है। इस विषयमें यह श्लोक है, कि जो ब्राह्मण पूर्णरीतिसे गुरुकी सेवा करके वेदज्ञान लाभ करता है, उसकी स्वर्गफलकी प्राप्ति और मनो-कामना सिद्ध होती हैं।

गार्हस्थ्यको दूसरा आश्रम कहते हैं; उसके यथा उचित व्यवहारोंके लक्षण आगे कहता हूं। जिनका गुरुकुलमें वास समाप्त होचुका है, जो भार्य्याके सहित धर्म्माचरणके फलकी इच्छा करते हैं, उन्हीं सब सदाचारी पुरुषोंके लिये गृहस्थाश्रम विहित है। इस आश्रममें धर्म्म, अर्थ, काम, यह त्रिवर्ग प्राप्त हुआ करता है। अनिन्दित कर्म्मोंसे धन उपार्जन अथवा वेद पाठ वा दक्षिणासे प्राप्त हुआ धन, वा ब्रह्म-र्षियोंकी भांति उञ्छवृत्ति, अथवा खानसे लाया हुआ धन, वा हव्य-कव्य प्रदानसे दैवकी कृपासे प्राप्त हुए धनसे गृहस्थ, गार्हस्थ्य आश्रम निर्व्वाह करे। पण्डित लोग इस आश्रमको सब आश्र-मोंका मूल कहा करते है। क्या गुरुकुलमें निवास करनेवाले ब्रह्मचारी, क्या परिव्राजक, क्या दूसरे सङ्कल्पित व्रत नियम धर्म्मके अनुष्ठान करनेवाले पुरुष; और सबके ही इस आश्रममें भिक्षा, अतिथि सत्कार और पुत्र आदिकोंका प्रतिपालन हुआ करता है। वाणप्रस्थ लोगोंके लिये फल मूल आदि सम्पादन गृहस्थाश्रमसे ही निभता है। ये सब साधु लोग सुन्दर पथ्य वस्तुओंका भोजन करके वेदपाठमें अनुरक्त होते हैं, ये लोग तीर्थ गमन और विविध देश दर्शनके निमित्त पृथ्वी पर भ्रमण करते हैं। उन्हें देखते ही उठके सम्मुख आना, असूय रहित होके वचन कहना, सुखासन, सुखशय्या और भोजनकी सामग्री दान करके सत्कार करना उचित है। इस विषयमें यह श्लोक है, कि जिसके गृहसे आशाके भङ्ग होनेपर अतिथि लौट जाता है वह उसीनिज दुष्कृत देकर उसके सञ्चित पुण्यका ग्रहण करके गमन करता है। गार्हस्थ्य आश्रममें यज्ञकर्म्मसे देवता पितृतर्पणसे पितर, विद्याके अभ्यास, श्रवण और धारणादि

ऋषि और पुत्र उत्पन्न करनेसे प्रजापति प्रसन्न होते हैं। इस विषयमें दो श्लोक हैं, कि इस आश्रममें सब लोगोंका ही स्नेहयुक्त अथवा सुखदायक वचन कहना उचित है और परिताप पीड़ादान, परोक्ष, अवज्ञा, अहङ्कार और दम्भ अत्यन्त निन्दित है। अहिंसा, सत्यवचन और क्रोधहीनता सब आश्रमोंमें ही तपस्या स्वरूप है। गार्हस्थ्य आश्रममें माला, आभूषण और वस्त्र धारण, तैल मर्द्दन नित्य उपभोगके योग्य नृत्य, गीत वाद्य आदि सुनना नेत्रको प्रसन्न करने योग्य दर्शनीय वस्तुओंको देखना भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, पेय और चूस्य आदि विविध खाद्य वस्तुओंके उपभोगसे विहार सन्तोष और काम सुखकी प्राप्ति होती है। गृहाश्रममें रह कर जिनको सदा धर्म्म, अर्थ, काम, इन त्रिवर्गोंके सहित सत, रज और तमोगुणकी कृतार्थता होती है, वे इस लोकमें सब सुखोंका अनुभव करके शिष्ट पुरुषोंकी गतिको प्राप्त होते हैं। जो गृहस्थ उञ्छवृत्ति होकर भी स्वधर्म्माचरणमें रत रहता है और काम सुख तथा सब कर्म्मोंको त्यागता है, उसके विषयमें स्वर्ग दुर्लभ नहीं है।

१९१ अध्याय समाप्त।

भृगु बोले, वानप्रस्थाश्रमी लोग धर्म्मका अनुसरण करके मृग, महिष वराह, शार्दूल और जङ्गली हाथियोंसे युक्त निर्ज्जन वनमें तपस्या करते हुए नदी और झरनेमें तथा पुण्य तीर्थोंमें विचरें। वे लोग ग्राम्य, वस्त्र, आहार और उपभोग परित्याग करके सदा वनकी औषधी, फल, मूल और पत्तोंका परिमित रीतिसे भक्षण किया करें। पृथ्वीही उनका आसन है, भूमि, पत्थर, सिकता, शर्करा, बालुका और भस्मही उनकी शय्या है, काश, कुश, चर्म और वल्कलही उनके अङ्गके वस्त्र हैं। वे लोग केश, श्मश्रु, नख और लोम धारण करते, यथा समय स्नान करते, पूजा और होमके समयको अतिक्रम नहीं करते। समित् कुश और फूल चुनने तथा सम्मार्ज्जनके समयमें ही विश्राम लाभ करते हैं; सर्द्दी, गर्म्मी, वर्षा और वायुकी खेलवाड़की तरह सहते रहते इन लोगोंके सब शरीरका चमड़ा विभिन्न होजाता है। विविध नियम पञ्चाग्नि साधन प्रहार सङ्कोच और तीर्थ पर्य्यटनके कारणसे इन लोगोंका मांस, रुधिर, चमड़ा और हड्डी पर्य्यन्त सूख जाती है; ये लोग सतोगुण अवलम्बन करके धैर्य्यशाली होकर शरीर धारण करते हैं। जो लोग इस ब्रह्मर्षि विहित व्रतका सदा आचरण करते हैं, वे अग्निकी तरह दोषोंको जलाकर दुर्ज्जय लोकोंको जय करते हैं। परिव्राजकोंका यही आचार है, कि वे लोग अग्नि, वित्त, कलत्र और शय्या आदि भोग सामग्रियोंके उपभोगसे आत्माको विरत करके स्नेह आशाको त्याग कर सन्न्यास धर्म्म ग्रहण करते हैं; वे लोग सुवर्ण लोष्ट तथा पत्थरमें समदृष्टि, होते हैं; धर्म्म, अर्थ और काम, इन त्रिवर्गोंमें असंसक्त बुद्धि; शत्रु, मित्र और उदासीनके विषयमें समदृष्टि, स्थावर, जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज आदि भूतोंके विषयमें मन, वचन और कर्म्मसे कभी अनिष्ट आचरण नहीं करते; वे लोग गृहमें निवास नहीं करते; पर्व्वत, पुलिन, वृक्षमूल और देवालयोंमें घूमते हुए वास करनेके लिये गांव अथवा नगरमें उपस्थित होते हैं। वे लोग नगरमें पांच रात्रि और गांवमें केवल एक रात्रि निवास किया करते हैं। नगर वा गांवमें पहुंचके असत्कार्य्य कर्म्मवाले द्विजातियोंके गृहपर प्राण धारणके निमित्त उपस्थित होते हैं। पात्रमें पड़ी बिना मांगी भिक्षा ग्रहण करते हैं; काम, क्रोध, दर्प, लोभ, मोह, कृपणता दम्भ, परिवाद, अभिमान और हिंसा रहित होते हैं। इस विषयमें ये सब

लोक हैं कि जो लोग मौनव्रत अवलम्बन करके सब भूतोंको अभय दान करते हुए भ्रमण करते हैं, सब जीवोंसे कभी उन्हें भय नहीं उत्पन्न होता। निज शरीरमें स्थित प्राण आदि पञ्च वायुको अग्निहोत्र विधान करके जो ब्राह्मण अग्निकी भांति प्रकाशमान जीवको परमात्मामें आहुति प्रदान करते हैं, वे भिक्षासे प्राप्त खिला-त्रिनकी हविके जरिये अवश्य परम लोकोंमें गमन करते हैं। जो उत्तम रीतिसे सङ्कल्पित युक्त बुद्धि और पवित्र होकर यथा रीतिसे मोक्षा श्रम अवलम्बन करते हैं, वे द्विजाति अनिन्धन अग्निकी तरह प्रशान्त ब्रह्म लोकमें निवास किया करते हैं।

भरद्वाज बोले, हे भगवन्! ऐसा सुना जाता है, कि इस लोकके अनन्तर परलोक है, परन्तु यह जाना नहीं जाता, कि वह कैसा है; इस लिये मैं उसे जाननेकी इच्छा करता हूं आप कृपा करके मेरे समीप उसे वर्णन करिये।

भृगु बोले, हे ब्रह्मन्! उत्तर दिशाकी ओर सब गुणोंसे रमणीय, पवित्र हिमालय पर्व्वतकी बगलमें पुण्य और कल्याणकारी जो सब सुन्दर देश हैं, उन्हेंही परलोक कहा जाता है। वहां पर कोई मनुष्य पाप कर्म्म नहीं करते, सदा पवित्र और अत्यन्त निर्म्मल हुआ करते हैं, लोभ मोहको परित्याग करते और उपद्रव हीन होते हैं। वह देश स्वर्गके समान शुभगुणोंसे युक्त है, वहां यथा समय पर मृत्यु होती है, समस्त व्याधि मनुष्योंको स्पर्श नहीं कर सकती। वहांके सब लोग निज स्त्रियोंमें रत रहते, कभी पराई स्त्रीके विषयमें लोभ नहीं करते। द्रव्य सञ्चय लाभके लिये लोभके कारण आपसमें नष्ट नहीं होते। विशेष करके वहां अधर्म्म नहीं है, किसीको किसी विषयमें सन्देह नहीं होता, वहां किये हुए कार्य्योंका फल प्रत्यक्ष प्राप्त होता है; कोई कोई समस्त काम्य वस्तु-ओंसे युक्त होकर विविध पान आसन और भोजनकी सामग्रियोंसे युक्त सुन्दर अट्टालिका आश्रय करके उसे सुवर्णादिकोंसे विभूषित करते; किसी किसीका केवल प्राणधारण सम्पन्न होता है। इस लोकमें कोई धर्म्म परा-यण और कोई पापनिष्ठ कोई सुखी, कोई दुःखी कोई निर्धन और कोई धनवान हुआ करते हैं। इस लोकमें श्रम, भय, मोह और तीव्र क्षुधा उत्पन्न होती है जिस अर्थके जरिये पण्डित लोग भी मोहित होते हैं, मनुष्योंको उस ही अर्थके लिये लोभ उत्पन्न होता है। इस विषय पर धर्म्माधर्म्मके सम्बन्धमें अनेक प्रकारकी बातें हुआ करती हैं, जो बुद्धिमान मनुष्य उन सब बातोंको जानते हैं, वे पाप पङ्कमें लिप्त नहीं होते। जो दम्भके सहित अभिमान स्तेय परि-वाद असूयापर पीडन हिंसा पिशुनता और मिथ्या आचरण करते हैं उनकी तपस्या नष्ट होती है और जो विद्वान् पुरुष इन सबका आच-रण नहीं करते, उनकी तपस्याकी वृद्धि हुआ करती है। इस लोकमें धर्म्माधर्म्म कर्म्मोंका अनेक भांतिसे विचार हुआ करता है। इस लोकमें यह पृथ्वी कर्म्मभूमि है, यहांपर शुभाशुभ कर्म्म करनेसे शुभ कर्म्मोंसे शुभफल और अशुभ कर्म्मोंसे अशुभ फल प्राप्त होता है। पहिले प्रजापतिने देवताओं और ऋषियोंके सहित इस लोकमें यज्ञ और तपस्या करके पवित्र होकर हिमशैलके निकटवर्त्ती ब्रह्मलोकको प्राप्त किया था। पृथ्वीका उत्तर भाग अत्यन्त पुण्ययुक्त और शुभ मय है; इस लोकमें जो सब पुरुष पुण्यकार्य्य करते हैं वे लोग दूसरी बार वहां पर उत्पन्न हुआ करते हैं। दूसरे लोग तिर्य्यग् योनिमें सत्कार लाभकी इच्छा करके परमा-युका क्षय करते हुए इस पृथ्वीपर नष्ट होते हैं, कितने ही लोभ मोहसे युक्त और परस्पर भक्षणमें आसक्त होकर इस लोकमें ही रूपा-न्तरोंमें परिणत होते हैं; वे लोग उत्तर दिशामें स्थित परलोकमें गमन नहीं करते। जो सब

विद्वान् पुरुष सदा ब्रह्मचर्य्यमें रत रहके गुरु-सेवा करते हैं, वे लोग सब लोकोंकी गति मालूम करते हैं। मैंने ब्रह्मनिर्म्मित यह संक्षिप्त धर्म्म विषय कहा, जो लोगोंके धर्म्म और अध-र्म्मके विषयको जानते हैं, वेही बुद्धिमान् हैं।

भीष्म बोले, परम धर्म्मशील प्रतापवान् भर-द्वाज महर्षिने भृगुसे इतनी कथा सुनके विस्मय युक्त चित्तसे उनकी पूजा की थी। हे महाप्राज्ञ महाराज! यही मैंने तुमसे विस्तारके सहित जगत्की उत्पत्तिका वृत्तान्त कहा है, फिर क्या सुननेकी इच्छा करते हो?

१९१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पापरहित धर्म्मज्ञ पिता-मह! मैं आपके कहे हुए आचरणकी विधि सुननेकी इच्छा करता हूं; आप सर्व्वज्ञ हैं, यह मुझे अविदित नहीं है।

भीष्म बोले, जो लोग दुराचारी दुष्ट-चेष्टा-युक्त और प्रिय साहसी हैं, वेही दुष्ट कहके विख्यात हैं; परन्तु आचार ही साधुओंका लक्षण है। जो लोग राजमार्ग, गोष्ठ और धान्यके बीच मल मूत्र परित्याग नहीं करते वेही शुद्ध आचारसे युक्त हैं। आवश्यक शौच और देवताओंका तर्पण करके जलस्पर्श करके नदीमें स्नान करे; प्राचीन लोगोंने इसे ही मनुष्योंका धर्म्म कहा है। सदा सूर्य्यकी उपा-सना करे, सूर्य्यके उदय होनेपर कभी न सोवे; सन्ध्या और सबेरेके समय पूर्व्व और पश्चिम मुख होकर सन्ध्याके उपलक्षमें स्वगृह्योक्त मन्त्रके सहित सावित्रीका पूजन करे। पूर्व्वकी ओर होकर मौनभावसे दोनों पैर, दोनों हाथ और मुख धोकर भोजन करे; अभक्ष्य अन्न आदिकी निन्दा करे, सुस्वादु वस्तुओंका स्वाद लेते हुए भोजन करे, भोजनके अनन्तर हाथ धोके उठे रातमें भींगे पैरसे न सोवे; देवर्षि नारदने इसी प्रकार आचारका लक्षण कहा है। यज्ञ आदि पवित्र स्थान, वृषभ, देवता, गऊ, चौपाये, धर्म्मात्मा ब्राह्मण और चैत्य आदि देवस्थानको देखकर प्रदक्षिण करे। सब प्रकारसे अतिथि, स्वजन और सेवकोंके सहित समान रीतिसे भोजन करना गृहस्थोंके लिये प्रशंसनीय है। मनुष्योंको दिन और रात्रिमें भोर और सन्ध्याके मध्याह्नकालमें भोजन करनाही देवनिर्द्दिष्ट है; सबेरे और सन्ध्याके समय भोजन करना मना है इसी तरह यथा समयमें जो लोग भोजन नहीं करते उन्हें उपवासका फल नहीं मिलता, होमके समय होमकारी और एक पत्नीक होकर ऋतुकालमें स्त्रीसे सहवास करनेवाले बुद्धिमान् मनुष्य ब्रह्मचारी समान होते हैं।

ब्राह्मणोंके भोजनसे बचेहुए अन्नको जननीके हृदय समान हितकर और अमृत रूपसे ऋषि-योंने वर्णन किया है; इससे सब लोग सब तर-हसे उनकी उपासना करें साधु लोग आहार-शुद्धिसे सत्वशुद्धि लाभ करते हुए सत्य स्वरूप परब्रह्मको पाते हैं। यज्ञकी वेदी बनानेके लिये जो मनुष्य ढेलोंको मद्दते और तृण काटते तथा नखसे छेदन करते हुए यज्ञसे बचे हुए मांसको भक्षण करते हैं, जिनके पिता, पितामह आदि किसीने सोमपान नहीं किया, वैसे ब्राह्मण यदि सदा सोमपान करते और जो काम मोहके वशमें होकर अस्थिर होते हैं, वैसे मनुष्य इस लोकमें दीर्घपरमायु नहीं पाते। यजुर्व्वेद जाननेवाले अध्वर्य्यु मांस भक्षणसे निवृत्त होकर यज्ञके संस्कृत मांसको भी परित्याग करें, दूसरे वृथा मांसको त्याग दें और आदसे विशिष्ठ मांस भोजन भी निषिद्ध है। गृहस्थ लोग स्वदेश और परदेशमें कभी अतिथिको भूखा न रखें; भिक्षा आदि काम्य कर्म्मोंके फल अन्न आदि मिलनेपर पिता माता आदि गुरुजनोंके समीप उसे उपस्थित करें; बड़े लोगोंको आसन देना और प्रणाम करना उचित है। मनुष्य लोग

गुरुजनोंको पूजा करके परमायु यश और सम्पत्तिसे युक्त होते हैं। उदय और अस्त सूर्य्यका दर्शन न करे; वस्त्र रहित स्त्रीको ओर देखना उचित नहीं है। निज स्त्रीसे ऋतुकालमें धर्म्म-मैथुन निर्जन स्थानमें करना योग्य है। सब तीर्थोंके बीच रहस्यही उत्तम तीर्थ है पवित्र पदार्थोंमें अग्नि परम पवित्र है; आर्य्य पुरुषोंके आचरित सब विषयही श्रेष्ठ हैं; गो पूंछको स्पर्श आदि कार्य्य भी पवित्र कहके वर्णित हैं। ब्राह्मणोंको जब देखे तभी उनसे सुखप्रश्न करे, सन्ध्या और सवेरेके समय ब्राह्मणोंको प्रणाम करना कर्त्तव्य कर्म्म कहा गया है। देवस्थान गौओंके बीच, ब्राह्मणोंके श्रौतस्मार्त्त कर्म्मोंके अनुष्ठान वेदपाठ और भोजनके समय दहिना हाथ उठावे अर्थात् उपवीत युक्त होवे। जैसे श्रेष्ठ पण्यकी वस्तु, उत्तम खेती कर्म्म और धान्य आदि शस्योंके निमित्त तत्पर रहनेसे प्रत्यक्ष फल दीखता है, तैसे ही सवेरे और सन्ध्याके समय विधिपूर्व्वक ब्राह्मणोंको पूजा करनेसे दिव्य स्त्री और अन्नपान आदि प्राप्ति स्वरूप अभिलषित फल मिलता है। भोजनको सामग्री दी जाने पर दाता कहे "सम्पन्न है," दान लेनेवाला "सुसम्पन्न है" ऐसा वचन उच्चारण करें। और पीनेको वस्तु दान करनेके समय दाता "तर्प्पण" और दान लेनेवाला "सुतर्प्पण" ऐसा वचन उच्चारण करें। पायस यवान्न और कृशर दानके समय दाता सुशृत, यह वचन कहे। श्मश्रु कर्म्म श्रुत, स्नान और भोजन करने तथा पीड़ित पुरुषोंको देखनेसे आयुकी वृद्धि होवे कहके अभिनन्दन करे; सूर्य्यके सम्मुख देखना उचित नहीं; स्त्रियोंके सङ्ग एकत्र सोना और एकत्र भोजन न करे। जेठे भाई आदिको "तुम" कहके वार्त्ता न करे; समान और छोटे पुरुषको "तुम" कहना दोष युक्त नहीं है। पापियोंका अन्तःकरणही उनके किये हुए पाप कर्म्मोंका प्रकाश कर देता है अर्थात् उनके मुख और नेत्रविकार आदिसे भीतरी मनके भाव प्रकाशित हुआ करते हैं जो लोग महाजनोंके समीप जानके अपने पापकर्म्मोंको छिपाते हैं, वे अवश्यही नष्ट होते हैं। मूर्खलोग किये हुए पापोंको जान कर छिपाया करते हैं। मनुष्योंके न देख सकनेपर भी देवता लोग उसे देखते हैं, पापसे छिपा हुआ पापकर्म्म पापहीका अनुगमन करता है; धर्म्मके जरिये छिपा हुआ धर्म्म धर्म्मका ही अनुसरण किया करता है, धर्म्मात्माओंके आचरित धर्म्म धर्म्मका ही अनुसरण करते हैं। इस लोकमें मूढ़ पुरुष अपने किये हुए पापोंको स्मरण नहीं करते, परन्तु शास्त्रीय इतिकर्त्तव्यताविमूढ़ पुरुषोंके निकट वह पाप उपस्थित होता है। जैसे राहु चन्द्रमाके निकटवर्त्ती होता है, वैसेही पापकर्म्म मूढ़ मनुष्योंका आश्रय करता है। आशाके जरिये सञ्चित वस्तु अत्यन्त दुःखसे उपभुक्त होती है, ज्ञानवान् मनुष्य उसकी प्रशंसा नहीं करते; मृत्यु कभी किसीको प्रतिक्षा नहीं करती। विद्वान पुरुष सब जीवोंके मानसको ही धर्म्म कहा करते हैं; इससे मनसे सब जीवोंके मङ्गलका आचरण करे। अकेला ही धर्म्माचरणकरे, धर्म्म साधन विषयमें किसीके सहायताको उपेक्षा न करे; धर्म्म रहित मानसमें विधिलाभ पूर्व्वक सहायता मिलनेसे क्या होगा। धर्म्म ही मनुष्योंको उत्पत्ति और प्रलयका कारण है; धर्म्म ही सुरपुरमें देवताओंका अमृत है, मनुष्य लोग परलोकमें जानेपर अपूर्व्व देह पाके धर्म्मसे ही निरन्तर परम सुख भोगते हैं।

१८३ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! चित्तको अवलम्बन करके जो योगधर्म्म चिन्तनीय हुआ करता है उसे अध्यात्म कहते हैं यह सामान्य-रीतिसे मुझे मालूम है, परन्तु वह अध्यात्म

क्या है और किस प्रकारका है। आप मुझसे उसे ही कहिये। हे ब्रह्मवित्! यह स्थावर जङ्गमात्मक संसार किससे उत्पन्न हुआ है, और प्रलयकालमें किसमें जाके लीन होता है। इस समय मेरे समीप उसे ही वर्णन करना योग्य है।

भीष्म बोले, हे तात पृथापुत्र! तुम जो मुझसे अध्यात्म विषय पूछते हो, वह तुम्हारे लिये कल्याणकारी और सुखदायक है। इसलिये मैं उस विषयका वर्णन करता हूं, पहिले समयके आचार्य्योंने परमात्माको सृष्टि, स्थिति और प्रलयके कारण स्वरूप कहके वर्णन किया है। इस लोकमें मनुष्य जिसे जानकर प्रसन्न और सुखी होते तथा सर्व्व कामका प्राप्तिरूपी फल लाभ किया करते हैं,—उस अध्यात्मज्ञानसे आत्महितकर विषय दूसरा कुछ भी नहीं है। ईश्वर ही सर्व्वमय है; पृथिवी, वायु, आकाश, जल और अग्नि इन पांचोंको महाभूत कहते हैं; परमात्मा ही इन पांचो भूतोंको उत्पत्ति और प्रलयका कारण है। जैसे लहर समुद्रसे ही उत्पन्न होकर उसहीमें लीन होती हैं, वैसे ही पृथिवी आदि महाभूत आनन्द स्वरूप अधिष्ठान परब्रह्मसे उत्पन्न होकर बार बार उसहीमें लीन होते हैं। जैसे कछुआ अपने अंगोंको फैलाकर फिर उन्हें समेट लेता है वैसे ही सर्व्व भूतमय आत्मा सब भूतोंको उत्पन्न करके फिर उनका संहार करता है। प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले ईश्वरने सब भूतोंके शरीर आदिमें पञ्च महाभूतोंको स्थापित किया है और स्थापित करके उनमें नैसम्यभाव कर दिया है, शरीर आदिकोंमें आत्माभिमानी जीव उसे नहीं देखता, शब्द, श्रोत्र और छिद्र ये तीनों आकाश योनिज हैं, स्पर्श, चेष्टा और त्वचा, ये तीनों वायु योनिज हैं; नेत्र और अन्न आदिके परिपाक स्थान ये तीनों विषय अग्निसे प्रकट हुए हैं; घ्रेय, घ्राण और शरीर, ये तीनों भूमिके गुणसे उत्पन्न हुए हैं; पांच महाभूत हैं, मनको छठवां गिनते हैं। हे भरतकुल प्रदीप! सब इन्द्रियें और मन विज्ञान कहके वर्णित हुआ करते हैं बुद्धि इनको सातवीं श्रेणीमें है; साक्षी स्वरूप चैतन्य आठवां कहा जाता है। नेत्र आदि इन्द्रियोंसे विषयोंकी आलोचना करके मन सन्देह करता है, निश्चय करनेवाली चित्त वृत्तिका नाम बुद्धि है, चैतन्य साक्षीको तरह निवास करता है। पैरके तलएसे ऊर्द्ध स्थित शरीरके ऊपर और नीचे सब स्थलोंमें साक्षी चैतन्य व्यापक भावसे निवास करता है, बाहरी हिस्सेमें जो कुछ दृश्यमान शून्य स्थान हैं, वह साक्षी चैतन्यसे परिव्याप्त है। सब इन्द्रियें मन और बुद्धि आदिको सब तरहसे पुरुषोंको परीक्षा करनी उचित है; तम, रज और सतोगुण भी इन्द्रियोंके आश्रित हैं; मनुष्य बुद्धिशक्तिके प्रभावसे जीवोंकी इसी प्रकार उत्पत्ति और लयके विषयको विचार कर धीरे धीरे परम शान्ति लाभ करते हैं। तम आदि गुणोंके जरिये बुद्धि बार बार विषयोंमें उपस्थित हुआ करती है; इसलिये बुद्धि ही षष्ठेन्द्रिय मन स्वरूप है। बुद्धिके अभावमें सत्वादि गुणोंकी सत्ताकी सम्भावना नहीं होती; इसी प्रकार ये स्थावर जङ्गम सब बुद्धिमय हैं, बुद्धि नाश होनेपर सब नष्ट होते हैं, और बुद्धिके प्रभावसे ही सब उत्पन्न हुआ करते हैं; इसही कारण वेदमें समस्त बुद्धिमय कहा गया है। बुद्धि जिस द्वारसे देखती है, उसे नेत्र कहते हैं, जिससे सुनती, उसे कान कहते हैं, जिससे सूंघती उसका नाम नाक है, जिससे रसका ज्ञान करती, उसे जिह्वा कहते हैं और त्वचासे स्पर्शका ज्ञान होता है। बुद्धि एक ही बार विकृत होती है, जब वह किसी विषयकी कामना करती है, तब उसे मन कहा जाता है, बुद्धिके पांच निवास स्थान हैं, इन पांचोंको पञ्च इन्द्रिय अर्थात् बुद्धिके रहनेसे नेत्र आदि

इन्द्रिय रूप आदिका दर्शन करती हैं। बुद्धिसे अदृश्य चिदात्मा प्रागुक्त इन्द्रियोंमें निवास करता है। पुरुषाधिष्ठित बुद्धि सत, रज, तम इन तीनोंभावोंसे वर्त्तमान रहती है; इसहीसे कभी प्रीतिलाभ करती, कभी दुःख पाती है, कभी सुख तथा दुःख किसीमें भी लिप्त नहीं होती। मनुष्योंके मनमें इसी प्रकार बुद्धि तीनोंभावोंमें निवास किया करती है। नदियोंको पूर्ण करनेवाली तरङ्गमालायुक्त समुद्रकी वीचि-मालासे जैसे सब नदियां तिरोहित होती हैं, वैसेही सुख दुःख, मोह आदि सत्त्वभाव स्वरूपी बुद्धि सुख, दुःख, मोह आदिको अतिक्रम किया करती है। बुद्धि सुख दुःख आदिसे अतिक्रान्त होकर सत्तामात्र मनोवृत्तिको अवलम्बन करके निवास करती है, ग्रीष्म उत्थानके समय प्रवर्त्तमान रज वाहका अनुगमन किया करता है; तब वैसी बुद्धि इन्द्रियोंको प्रवर्त्तित करती है, प्रीति स्वरूपी सत्त्वात्मिका बुद्धि विषयोंके यथार्थ ज्ञानको सिद्ध करती है, रजोगुण शोकात्मक और तमोगुण मोह स्वरूप कहके वर्णित हुए हैं। हे भारत! इस लोकमें इन्हीं सत, रज, तम, तीनों भावोंमें शम, दम, काम, क्रोध, भय, विषय आदि जो सब भाव वर्त्तमान हैं, वे सभी बुद्धिके आश्रय हैं, यह मैंने तुम्हारे समीप व्याख्या की है, और बुद्धिमान् पुरुषोंको इन्द्रिय जीतना उचित है, इसे भी विस्तार पूर्व्वक कहा है। सत, रज और तम ये तीनों गुण सदा प्राणियोंमें स्थित होरहे हैं, और सात्विकी, राजसी तथा तामसी, ये तीन प्रकारकी पीड़ा भी सब प्राणियोंमें दीख पड़ती हैं। सतोगुण सुख युक्त और रजोगुण दुःख युक्त है, ये दोनों तमोगुणके सहित मिलकर व्यवहारिक हुआ करते हैं। शरीर और मनकी जो प्रीति युक्त हुआ करती है, उसे सात्विकभाव कहा जाता है, और जो आत्माको अप्रसन्न करनेवाला तथा दुःखमिश्रित है, वह रजोरूपसे प्रवृत्त है, दुःखकी खोजके कारण भय युक्त होके उस विषयकी चिन्ता न करे। दूसरे जो मोह युक्त अव्यक्त विषय, अप्रतर्क्य और अविज्ञेय है। उसे ही, तमोगुण कहके निश्चय करे। प्रहर्ष, प्रीति, आनन्द, सुख और शान्त चित्तता आदि सात्विक गुण कदाचित प्राप्त हुआ करते हैं।

अप्रसन्नता, परिताप, शोक, लोभ और क्षमा, ये सब रजोगुणके लक्षण कभी कारण कभी अकारणसे ही दीख पड़ते हैं। अपमान, मोह, प्रमाद, स्वप्न और तन्द्रा, इस प्रकारके विविध तामसगुण कदाचित उपस्थित होते हैं जिनका मन दुर्लभ वस्तुओंमें भी आसक्त, अनेक विषयोंमें युगपत पतित होनेमें समर्थ, "दोष" यह दीनता युक्त वचन संशयात्मक और निरुद्ध वृत्तिक है, वे मनुष्य इस लोक तथा परलोकमें सुखी होते हैं। सूक्ष्म बुद्धि और साक्षी चैतन्य क्षेत्रज्ञके इस महत् अन्तरको देखो, तप्ताय पिण्डवत् इतरेतर अविचार निबन्धन बुद्धि, अहङ्कार आदि सब गुणोंको उत्पन्न करती है, साक्षी चैतन्य स्वयं निर्लिप्त रहके कुछ भी उत्पन्न नहीं करता, बुद्धिके सब कार्य्योंको देखता है। मसक और उदुम्बर जैसे सदा सम्प्रयुक्त हैं, वैसे ही बुद्धि और क्षेत्रज्ञ सदा परस्पर संप्रयुक्त होते हैं। जैसे जल और मछली सदा संयुक्त हैं, वैसेही बुद्धि और क्षेत्रज्ञ निरन्तर संयुक्त रहनेपर भी स्वभावके जरिये पृथक्‌भूत हुआ करते हैं। अहङ्कार आदि गुण आत्माको जाननेमें समर्थ नहीं होते, परन्तु आत्मा सब गुणोंको ही जानता है। क्षेत्रज्ञ पुरुष ईश, अहङ्कार आदिका द्रष्टा होकर भी अविद्याके कारण "मैं गौर, मैं काणा, मैं सुखी, मैं कर्त्ता" इत्यादि अभिमान किया करता है। परमात्मा, घटाच्छन्न दीपककी भांति निश्चेष्ट और ज्ञानहीन पञ्चइन्द्रिय, मन और बुद्धिके जरिये विषयोंको प्रकाशित करता है। बुद्धि अहङ्कार आदिकी सृष्टि करती है; क्षेत्रज्ञ उसे पृथ

रीतिसे देखा करता है; इसलिये बुद्धि और आत्माका सम्बन्ध अनादि सिद्ध है। आत्मा असङ्गत और निर्गुण है, इसहीसे बुद्धिका आश्रय नहीं है, और स्वयं निज महिमासे निवास करता है; इसलिये बुद्धि और आत्माका आपसमें आश्रयाश्रय भाव सम्बन्ध नहीं है। बुद्धि मनकी सृष्टि करती है, परन्तु मूलभूत तीनों गुण कदापि उससे नहीं उत्पन्न हुए हैं; इससे मनकी सृष्टि आरम्भ करके बुद्धिका कार्य्य प्रवर्त्तित हुआ करता है। घड़ेके बीच जलते हुए दीपककी भांति जब आत्मा मनसे इन्द्रिय वृत्तियोंको पूर्ण रीतिसे नियमित करता है, उस ही समय वह बुद्धिके निकट प्रकाशित होता है। जो लोग स्वभाविक कर्म्म सन्न्याससे सदा आत्मरत, मननशील और सब भूतोंके आत्मरूप होते हैं, उन्हें उत्तम गति प्राप्त होती है। जैसे हंस आदि जलचर पक्षी जलमें भ्रमण करके उसमें लिप्त नहीं होते, वैसे ही कृतबुद्धि पुरुष सब भूतोंमें स्थिति किया करते हैं। मनुष्योंका यह स्वभाव ही है, कि वे निज बुद्धि बलके सहारे शोकरहित, अप्रहृष्ट, मत्सररहित और सब भूतोंमें समदर्शी होकर विहार करते हैं। जैसे ऊर्णनाभ निमित्त और उपादान होकर सूतो बनाती है, वैसेही स्वभाव-योगयुक्त विद्वान् पुरुष देहेन्द्रियादिकोंसे अभेद ज्ञान जनित पररूपता परित्याग करके भूतभौतिक गुणोंको उत्पन्न किया करते हैं; इसलिये सत्वादि गुणोंको धागेके समान जानना चाहिये। गुणोंके प्रध्वस्त होनेपर निवृत्ति नहीं होती; प्रत्यक्षमें निवृत्तिकी प्राप्ति नहीं होती; इसलिये वह परोक्ष विषय अनुमानसे सिद्ध होता है। अनेक जीववादी पुरुष व्यवहारके अनुरोधसे इसही प्रकार निश्चय करते हैं; एक जीववादी बुद्धिमान् पुरुष निवृत्तिको ही अज्ञानकृत प्रपञ्च कहा करते हैं। ऊपर कहे हुए दोनों विषयोंको आलोचना करके निज बुद्धिके अनुसार ध्यानसे प्रत्यक्ष करें। इसही प्रकार जलते हुए कोड़ेकी तरह बुद्धि और क्षेत्रज्ञके परस्पर मिलके कारण क्षेत्रज्ञमें बुद्धि, धर्म्म, दुःख आदि और बुद्धिमें क्षेत्रज्ञके धर्म्म सत्वचित्त आदि दीख पड़ते हैं। तत्व जिज्ञासु मनुष्य इस बुद्धिभेदमय दृढ़ हृदयग्रन्थि छुड़ाकर सुखसे निवास किया करते हैं, संशयोंके कट जानेपर फिर वे शोक प्रकाश नहीं करते। जैसे विशिष्ट विद्यायुक्त पुरुष पवित्र नदमें स्नान करके सिद्धिलाभ करते हैं, वैसेही मलिन मनुष्य विज्ञान अवलम्बन करके सिद्धि लाभ किया करते हैं; इसलिये इस जगत्में ज्ञानके समान पवित्र पदार्थ दूसरा कुछ भी नहीं है। जो लोग महानदीके पार जानेका उपाय जानते हैं, वे उसके निमित्त शोक नहीं करते; और जो लोग उस विषयमें अनभिज्ञ हैं, वे उस विषयमें शोकित हुआ करते हैं; तत्वज्ञ पुरुष कदापि परितापित नहीं होते, उपाय जाननेसे वे पार होते हैं। इसी प्रकार जो लोग हृदयाकाशमें निर्व्विषय श्रेष्ठज्ञानकी आलोचना करते हैं, वे कृतार्थ होते हैं। मनुष्य जीवोंकी यह उत्पत्ति और लयके विषयोंको जानके बुद्धिसे धीरे धीरे आलोचना करके अनन्त सुख भोग करते हैं। धर्म्म, अर्थ, काम ये त्रिवर्ग नाशमान् हैं, यह जिन्हें विदित है, किये हुए कार्य्य अर्थात् काम सुख आदि अनित्य हैं, यह जानके जो लोग उन्हें परित्याग करते हैं, वे श्रवण मननके जरिये निश्चय करके ध्याननिष्ठ और तत्वदर्शी होकर आत्मदर्शनसे ही सब कामना लाभ करके निरुत्सुक रहते हैं। अकृतबुद्धि मनुष्योंको अनिवार्य्य और रूप रस आदि निज निज विषयोंमें विभागके अनुसार विशिष्ट इन्द्रियोंके जरिये आत्माका दर्शन नहीं किया जा सकता। मनुष्य इसे जानके बोधयुक्त होते, इससे बढ़के बोधका लक्षण और कौनसा है। ज्ञानी पुरुष इसे ही जानके अपनेको कृतकृत्य समझते हैं। रस्सीमें सर्पभ्रम आदि जिस अज्ञानसे

मूर्ख पुरुषोंको अक्षत् संसार दुःख हुआ करता है, विद्वान् मनुष्योंको उससे भयकी सम्भावना नहीं होती। मैंने जो कहा है, कि मुक्ति ही सबकी गति है, उससे बढ़के किसीके विषयमें और उपाय कुछ नहीं है; तब शम, दम आदि गुणोंकी प्रधानतासे मुक्तिकी अनुकूलता होती है; ऐसा प्राचीन लोग कहा करते है। जो निष्काम होकर कर्म्म करते हैं, उन निष्काम कर्म्म करनेवालोंके कर्म्म पूर्व्वके किये हुए दोषोंको नष्टकरते हैं; पूर्व्वकृत अथवा वर्त्त-मानके किये हुए कर्म्म ज्ञानी कर्त्ताको प्रिय वा अप्रिय नहीं होते। परीक्षक मनुष्य काम, क्रोध आदि व्यसनोंसे जर्ज्जरीकृत लोगोंको धिक्कार प्रदान करते हैं; वह धिक्कार इस लोकमें आतुर पुरुषोंको निन्दित कर रखता है और परलोकमें उसे तिर्य्यग् योनिमें उत्पन्न करता है; जनसमाजमें पूर्णरीतिसे अभिनिवेश पूर्व्वक देखो, आतुर लोग मरे हुए स्त्री पुत्रादिकोंके निमित्त अत्यन्त शोक प्रकाश करते हैं, और जो लोग सार असार विवेकमें निपुण हैं, वे उस विषयमें शोकरहित होकर निवास करते हैं; इससे जो लोग क्रममुक्ति और सद्योमुक्ति इन दोनों विषयोंको जानते हैं, वेही ज्ञानियोंके गमन करने योग्य पद प्राप्त करते है।

१९४ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे पृथापुत्र ! मैंने तुमसे आत्म-तत्त्व विषय कहे, अब उसके जाननेका उपाय चार प्रकारके ध्यानयोगका विषय कहूंगा; महर्षि लोग इसे जानके इस लोकमें शाश्वती कीर्त्ति प्राप्त करते हैं। ध्यान जिस प्रकारसे भलीभांति अनुष्ठित हो, योगी लोग वैसाही किया करते हैं। हे पार्थ ! ज्ञानसे तृप्त निर्व्वा-णनिष्ठ चित्तवाले महर्षि लोग संसारके दोषोंसे छूटकर फिर लौटके संसारमें नहीं आते; वे लोग जन्म दोषसे रहित होके आत्मस्वरूपमें निवास करते हैं; वे सर्द्दी, गर्म्मी आदि द्वन्द्वोंके सहनेवाले सदा स्वप्रकाशमें स्थित लोभ आदिसे रहित, निष्परिग्रह और शौच सन्तोष आदि विषयोंमें निष्ठावान् होते हैं; स्त्रियोंमें आसक्तिहीन, प्रतिपक्ष रहित, मनके शान्तकारी स्थानमें इन्द्रियोंको एकत्रित कर काष्टकी भांति बैठके और मननशील होकर ध्यानके जरिये संश्लिष्ट मनको एकाग्र रूपसे धारण करते हैं। योगी पुरुष कानसे शब्द ग्रहण, त्वचासे स्पर्श ज्ञान, नेत्रसे रूप और जीभसे रस मालूम नहीं करते और ध्यानके जरिये सब ध्येय विषयोंको परित्याग करते है। योग बलशाली पुरुष श्रोत्र आदि पञ्च इन्द्रियोंको प्रमथन करनेवाले इन शब्द आदि विषयोंकी कामना नहीं करते। शेषमें बुद्धिमान् योगी मनमें श्रोत्र आदि पञ्च-वर्गोंको निग्रहीत करके, पांचो इन्द्रियोंके सहित मिलकर भ्रान्त मनको स्थिर करते हैं। धीर योगी पहले विषयोंमें भ्रमणशील देहादि अवलम्बन शून्य पञ्च द्वार और चञ्चल मनको ध्यानपथसे हृदयाकाशमें स्थित करें। इन्द्रि-योंके सहित मनको पिण्डी कृत करता है, यह ध्यान पथ मुख्य रीतिसे मेरे जरिये वर्णित हुआ है। जैसे घूमती हुई बिजली बादलोंके निकट स्फूर्त्ति युक्त हुआ करती है वैसेही वह मन, बुद्धि और पञ्च इन्द्रिय यह सप्ताङ्ग स्वरूप आत्माका षष्ठांश मन ध्यानके समयमें भी स्फुरित हुआ करता है। जैसे कमलके पत्ते-पर स्थित चपल जलबिन्दु सब तरहसे चञ्चल रहता है, ध्यानमार्गमें वर्त्तमान योगीका चित्त पहले वैसे ही तरल हुआ करता है। मन ध्यानपथमें स्थिर होकर क्षणभर स्थित रहता है, फिर वायुमार्गको प्राप्त अनेक प्रका-रके रूप दिखाते हुए वायुकी भांति भ्रमण किया करता है। ध्यानयोगके जाननेवाले योगी निर्व्वेद शून्य, क्लेशरहित आलस और मत्स-

रता हीन होकर ध्यानके जरिये फिर चित्तको स्थिरकरते हैं। समाधि करनेमें उद्यत मनन-शील मनुष्योंके मनमें अधिकारी भेदसे ध्यानके पहिले विचार, विवेक और वितर्क उपस्थित होता है ; उसमेंसे पहले अधिकारियोंके अन्तः-करणमें मनके कल्पित पीताम्बर आदि विग्र-होंमें जो चित्तका प्रणिधान होता उसे विचार कहते हैं, इस विचारसे आलम्बन स्वरूप स्थूल विग्रहके एक एक अंशका परित्याग कर ध्येय वस्तुके एक अवयवभूत चरण आदिको विचारते विचारते विवेक उपस्थित होता है। उस विवे-कके जरिये ईश्वरस्वरूपसे चिन्तितव्य मूर्त्तिका जड़त्वभाव दूर होकर चेतमात्रकी उत्पत्ति हुआ करती है। इसी प्रकार विवेकसे निर्गुण पर-ब्रह्म विषयका ज्ञान उत्पन्न होता है, इसलिये मननशील मनुष्य मनके जरिये क्लेशित होकर भी समाधि किया करते हैं, वे कदापि निर्व्वेद प्राप्त नहीं होते, अपने हित कार्य्यमें ही नियुक्त रहते हैं। जैसे पांशु, भस्म और शुष्क गोमयसे सञ्चित चिता सहसा जलके भीगनेपर पहिले उसका कैसा रूप था, उसकी कल्पना नहीं की जाती, और शुष्कचूर्ण पदार्थ अल्पस्नेहके कारण पहिले अभिभावित रहके फिर बहुत समय तक जलसे क्लिन्न होकर क्रमसे मूर्त्ताकार धारण किया करते हैं, वैसे ही इन्द्रियोंको धीरे धीरे मूर्त्ताकारमें योजित और क्रमशः संहार करे; जो ऐसा करते हैं वेही सम्यक रूपसे प्रशान्त होसकते हैं, हे भारत ! स्वयं बुद्धि, मन और पञ्च इन्द्रियोंको सदा अभ्यस्तयोगके जरिये पहले ध्यानमार्गमें स्थापित करके दग्धेन्धन अग्निकी तरह आप भी शान्त होवे, अर्थात् ब्रह्माकार चित्तवृत्ति दूसरी समस्त वृत्तियोंको प्रशान्त करती हुई निर्व्वाणकी भांति स्वयं शान्त हुआ करती है। सर्वाङ्ग युक्त सार्व्व भौम पद आदि ऐहिक सुख और हिरण्यगर्भ आदि पारलौकिक सुख निरुद्ध चित्तवाले योगोके सुखके समान नहीं हैं। योगी लोग उस ही परम सुखसे युक्त होकर ध्यान कार्य्यमें अनुरक्त रहते हैं, वे लोग इसी प्रकार निरामय निर्व्वाण पद लाभ किया करते हैं।

१६५ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे बुद्धिमान ! आपके कहे हुए चारों आश्रमोंके हितकर धर्म्म, राजधर्म्म, विभिन्न प्रकार अनेक विषयोंके इतिहासों और धर्म्म युक्त सब कथा मैंने सुनी अब मुझे किसी विषयमें सन्देह है, आप उस विषयमें उपदेश दान करनेके उपयुक्त हैं। हे भारत ! मैं जाप-कोंके फलप्राप्ति विषयको सुननेकी अभिलाषा करता हूं। हे पापरहित ! शास्त्रमें जापक लोगोंके लिये कैसा फल वर्णित है? जापक लोग कहां निवास करते हैं जापकोंकी कैसी विधि है। आप यह सब मेरे समीप वर्णन करिये। "जापक" इस शब्दके जरिये वेदान्त विचार, अथवा चित्तवृत्ति निरोध वा कर्म्म, इन सबका प्रकाश अर्थात् विचार युक्त कर्म्म और आचार वर्णित हुआ करता है, अथवा यह ब्रह्मयज्ञ विधि रूपसे कहा जाता है। यह सब मेरे समीप वर्णन करिये, आपको मैं सर्व्वज्ञ समझता हूं।

भीष्म बोले, पहिले, समयमें यम और किसी ब्राह्मणसे आपसमें जो वार्त्ता हुई थी, प्राचीन लोग इस विषयमें उस ही पुराने इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। मोक्षदर्शी महर्षियोंने जिसे सांख्य और योग कहा है, उसके बीच सांख्यमें जप क्रिया त्यागका विषय ही वर्णित हुआ है ; क्यों कि सांख्य मतके अनुयायी सब वेदान्त वचन परब्रह्म पर्य्यवसन्न हैं ; वे सब उपासना आदि विधि पर नहीं हैं तब सब वेदवाक्य निवृत्ति प्रधान, शान्त और ब्रह्मपरा-यण हैं। प्रमाणान्तरोंसे न मालूम होने योग्य

ब्रह्मामें क्य प्राप्तरूप कैवल्य पदकामके कारण वेदान्तशास्त्र जपकी उपेक्षा नहीं करते। दूसरे शुभदर्शी मुनियोंके जरिये जो सांख्य और योगरूपसे कहे गये हैं, वे दोनों मार्ग ही जप विषयमें संश्रित और असंश्रित हुआ करते हैं। हे महाराज! ऊपर कहे हुए दोनों मार्ग जिस प्रकार जपके सङ्ग संयुक्त होते हैं, उसका कारण कहता हूं। इन दोनों विषयोंमें मनके निग्रह और इन्द्रिय जयकी आवश्यकता होती है। सत्य कहना अग्नि परिचर्य्या, शुद्ध आहार और निर्जन स्थानमें निवास, ध्येय आकार प्रत्यय प्रवाह लक्षणका ध्यान विषयोंके दोष दर्शन आलोचना रूपी तपस्या, वशमें की हुई इन्द्रियोंकी तत्व प्रतिपत्ति योग्यता रूपी दम, क्षान्ति अनसूयता, परिमित भोजन काम आदि विषयोंको जीतना, परिमित वचन, और निग्रहीत मनके विक्षेपहीनता रूपी शम, ये सब सकाम पुरुषोंके स्वर्गादि जनक जपके अङ्गभूत धर्म हुआ करते हैं। अब जापकके कर्म्मनिवृत्ति लक्षण मोक्ष धर्म कहता हूं सुनो। जप करनेवाले ब्रह्मचारीका कर्म्म जिस प्रकार निवृत्त होता है, उसे प्रदर्शित करता हूं। मन समाधि आदि जिन सब विषयोंको पहिले विशेष रीतिसे कहा है निष्काम अनुष्ठानसे स्थूल सूक्ष्म निर्व्विषय शुद्ध चिन्मात्र निवृत्ति मार्गको अवलम्बन करके उन सबका परिवर्त्तन करे। कदम्बपुष्प समान हृदयपिण्ड स्पर्श करते हुए मूलसे ब्रह्माण्ड आवरण करके स्थिति करता है; उसी प्रकार जापक योगी अधस्तात कुश बिछावें, हाथमें कुश धारण करें; शिखाको कुशोंसे परिपूरित करें और चारों ओर कुशोंसे परिपूरित होकर कुशमें ही निवास करें, बाहरी और भीतरी चिन्ता परित्याग करें; मनके जरिये जीव ब्रह्मकी ऐक्यता स्थिरकरके मनहीसे मनका प्रविलापन करें। वे सावित्री संहिता जप करते हुए जीव ब्रह्मके ऐक्य ज्ञानसे परब्रह्मका ध्यान किया करते हैं, अथवा चित्तकी स्थिरता होनेपर वे निश्चल भावसे सावधान होकर पूर्व्वोक्त संहिता परित्याग करते हैं। वे शुद्ध चित्त, जितेन्द्रिय, द्वेष रहित और परब्रह्मके पानेके इच्छुक होकर विचारके जरिये संहिताबल अवलम्बन करनेसे ध्येयाकार प्रत्यय प्रवाह रूप ध्यान उत्पन्न करते हैं, राग मोहसे रहित और सुख दुःख आदि द्वन्द्व हीन होकर किसी विषयमें शोक नहीं करते और किसी विषयमें आसक्त भी नहीं होते। ऐसे जापक अपनेको कर्म्मकर्त्ता वा कर्म्म फल भोक्ता नहीं समझते और अहङ्कार योगसे मनको किसी कर्म्मके कर्त्तृत्व वा कर्म्मफल भोक्तृत्वमें प्रस्थापित नहीं करते, वे अर्थ ग्रहण करनेमे आसक्त अभिमानी और क्रिया रहित नहीं होते, वे ध्याननिष्ठ समाधिविशिष्ट होकर ध्यानसे तत्व निश्चय किया करते हैं। वे लोग ध्यान अवलम्बन करके चित्तकी एकाग्रतामें उत्पन्न करते हुए धीरे धीरे उस अवलम्बनको भी परित्याग करते हैं। वे उस ही अवस्थामें सर्व्वत्यागी निर्बीज समाधिस्थ योगीके प्रत्यगानन्द स्वरूप सुख अनुभव करते हैं। जो लोग अणिमा आदि योग फलोंमें निष्प्रह होकर लोकान्तर गति साधन लिङ्ग शरीर परित्याग करते हैं, वे सुख स्वरूप ब्राह्म शरीरमें प्रविष्ट होते हैं, अथवा यदि वे ब्रह्मस्वरूप सुखमें स्थिति करनेकी इच्छा न करें, तो देवयान मार्गमें निवास करते हुए फिर संसारमें जन्म नहीं लेते वे योगी इच्छानुसार मोक्षमार्ग वा ब्रह्मलोकमें गमन करनेमें समर्थ होते हैं; वे सत्व दर्शनसे रजोगुण हीन अमृत अवलम्बन करके शान्त और जरा मरणसे रहित होकर पवित्र परमात्माको पाते हैं।

१९९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! आपने जाप-कोंको योगसिद्धि प्राप्तिके जरिये जरा मरण हीनता, इच्छानुसार शरीर त्याग, ब्रह्मलोक गमन और कैवल्य प्राप्ति विषय कहे, परन्तु उन लोगोंकी यह एकही प्रकारकी गति है, अथवा वे लोग दूसरी भांति गति लाभ किया करते हैं।

भीष्म बोले, हे नरश्रेष्ठ महाराज ! जापक लोग जिस प्रकार अनेक प्रकारके निरयोंमें गमन किया करते हैं, उसे तुम सावधान होकर सुनो। जो जापक पहिले पूर्व्वोक्त आचरण नहीं करते, वे अपूर्ण मनोरथ होकर निरयमें गमन किया करते हैं। जो अश्रद्धाके सहित जप करते और उससे प्रसन्न वा हर्षित नहीं होते, वैसे जापक निःसन्देह निरयमें गमन करते हैं। जो लोग अहङ्कार पूर्व्वक जप करते और दूसरेकी अवज्ञा करते हैं, वैसे जापक पुरुष अवश्यही निरयगामी होते हैं। जो पुरुष मोहित होकर फलाभिसन्धि पूर्व्वक जप करते हैं उन्हें जैसे कर्म्ममें प्रीति होती है, वैसे फलको भोगनेके लिये उसे उसहीके अनुरूप शरीर प्राप्त हुआ करता है। अणिमा आदि ऐश्वर्य्य भोग प्रवृत्तिके वशमें होकर जो जापक उसमें अनुरक्त होते हैं, वह अनुराग ही उनके लिये निरय स्वरूप है; फिर वे उससे कदापि नहीं छूट सकते। ऐश्वर्य्य विषयक रागसे मोहित होकर जो जापक जप करते हैं, उन्हें जिस विषयमें अनुराग उत्पन्न होता है, उसे भोगनेके निमित्त उन्हें उसहीके अनुरूप शरीर धारण करके जन्म लेना पड़ता है। जो भोगासक्त चित्त सब भोगोंके दुरन्तत्वमें ज्ञान रहित और चञ्चलचित्तसे निवास करते हैं वे जापक चपलगति लाभ करते हैं अथवा निरयमें गमन किया करते हैं यह बुद्धि समयको अतिक्रम करके आरही है, प्रमादके कारण उसका निश्चय नहीं होता है। इस विषयमें मूर्ख बाल स्वभाव वाले जापक मोहको प्राप्त होते और उसही मोहके कारण नरकमें गमन करते हैं, वहां जाके शोक किया करते हैं। जो पुरुष दृढ़ निश्चय करके जप करनेमें प्रवृत्त होता है, और वह अविरक्त होकर बलपूर्व्वक भोगोंको त्यागते हुए जपकी समाप्ति करनेमें समर्थ नहीं होता, वह अन्तमें निरयगामी हुआ करता है।

युधिष्ठिर बोले, जो वस्तु अनागन्तुक कहके स्वभावसे ही अनिवृत्त और मन वचनसे अगोचर होकर प्रणवके बीच स्थित है, जापक उस ही ब्रह्मस्वरूपको पाके किस कारण इस संसारमें शरीर धारण करता है।

भीष्म बोले, हे राजन्! सकाम बुद्धिके कारण बहुतेरे निरय पूर्ण रीतिसे उदाहृत हुए हैं। जापकोंका धर्म्म अत्यन्त श्रेष्ठ है; परन्तु राग आदि सब दोष-दुष्ट अज्ञान स्वरूप हैं, उस ही लिये विविध गति हुआ करती है।

१९७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! जापक पुरुष किस प्रकारके निरयोंमें गमन करते हैं, उसे आप मेरे समीप वर्णन करिये। शुभ कर्म्म करनेवाले पुरुष भी अशुभ निरयको पाते हैं, इसे सुनके मुझे अत्यन्त कौतूहल उत्पन्न होरहा है, इसलिये आपको यह विषय वर्णन करना उचित है।

भीष्म बोले, हे पापरहित ! तुम धर्म्मके अंशसे उत्पन्न हुए हो स्वयं स्वभावसे ही धर्म्मिष्ट हो; इसलिये सावधान होकर इस धर्म्मानुगत वचनको सुनो। हे राजन् ! महाबुद्धि देवताओंके इन सब स्थानोंको जिसे कहता हूं, वे परमात्माके स्थानसे भिन्न नहीं है इन सब स्थानोंमें दिव्य देहोंके रूप रस गन्ध, शब्द, स्पर्श तथा अनेक तरहके फल दिखाई देते हैं; दिव्यकामचारी विमान, सभा और विविध क्रीड़ा स्थान दीखते

और सुवर्णके कमल फूलते हैं। हे तात! इन्द्र आदि चारों लोकपाल, देवगुरु, शुक्राचार्य्य मरुद्गण, विश्वदेव, साध्य दोनों अश्विनीकुमार, रुद्र, आदित्य और वसुगण तथा दूसरे सुरपुरवासी देवताओंके इन सब आश्रय स्थानोंको निरय कहते हैं, वे स्थान भयसे रहित हैं, क्योंकि वहां अविद्या, अहङ्कार, राग, द्वेष आदि क्लेशोंकी सम्भावना नहीं है, आसक्ति-हीनताके कारण वहां आगन्तुक भयकी भी सम्भावना नहीं होती। वह स्थान प्रिय और अप्रिय इन दोनों पदार्थोंसे मुक्त है; प्रिय अप्रियके कारणभूत तीनों गुणोंसे रहित है, भूत, इन्द्रिय, मन, बुद्धि कर्म्म वासना, वायु और अविद्या, इन अष्टपुरोंसे परित्यक्त है; ज्ञेय, ज्ञान इन त्रिपुटियोंसे मुक्त है; क्यों कि वह दर्शन, श्रवण, मनन और विज्ञान इन चारों लक्षणोंसे रहित है; अर्थात् वे स्थान रूप आदिसे रहित होनेसे प्रत्यक्षके विषय नहीं हैं। गुण-जाति क्रियाहीन प्रयुक्त शब्द ज्ञानगोचर नहीं हैं। असङ्गके कारण अनुमानके अनुगत नहीं हैं; सर्व्वसाक्षित्व निबन्धन बुद्धिसे भी नहीं जाने जाते। इसके अतिरिक्त ऊपर कहे हुए स्थान प्रागुक्त दर्शन आदि चारों कारणोंसे रहित प्रहर्ष और आनन्द हीन, विशोक और क्लम विवर्ज्जितरूपसे प्रसिद्ध हैं। अखण्डभावसे स्थित काल वहांपर भूत, भविष्य, वर्त्तमान आदि व्यवहारोंका कारण होकर उत्पन्न होता है। काल संयम वहां प्रभुता नहीं कर सकता अर्थात् वे वस्तु आदि अन्तसे रहित हैं। हे राजन्! जो कालका प्रभु और स्वर्गका ईश्वर है, जो जापक उस आत्माके सहित ऐक्यलाभ करता है, वह उक्त स्थानमें जाके शोक रहित होता है। ऐसे स्थान परम श्रेष्ठ हैं, पहिले कहे हुए सब निरय-स्थान भी उनके समान हैं। परन्तु यह हमने तुमसे ज्योंके त्यों सब निरयोंके विषय यथार्थ कहे; ऊपर कहे हुए मनोहर परम श्रेष्ठ स्थानोंसे निकृष्ट भावसे निरय नाम सब स्थान प्रसिद्ध हैं।

१९८ अध्याय समाप्त

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! परमायुको नष्ट करनेवाले काल, प्राण वियोजक मृत्यु और पुण्य-पापके फल देनेवाले यमराजके सम्मुख सूर्य्यवंशीय राजा इक्ष्वाकु और किसी ब्राह्मणसे विवाद हुआ था, आपने इस उपाख्यानके पहले इसकी चर्चा की थी; इसलिये अब उसे स्पष्ट रीतिसे वर्णन करना उचित है।

भीष्म बोले, सूर्य्यवंशमें उत्पन्न हुए इक्ष्वाकु और ब्राह्मणके सम्बन्धमें जो विवाद हुआ था, प्राचीन लोग उसको पुराने इतिहासका इस विषयमें उदाहरण दिया करते हैं, काल और मृत्युके सम्मुखमें जो घटना हुई थी और जिस स्थानमें जिस प्रकार उन लोगोंकी वार्त्ता हुई थी, वह मुझसे सुनो। धर्म्मचारी, महायशस्वी, मन्त्राध्ययन परायण कोई जापक ब्राह्मण था। वह महाबुद्धिमान् विप्र शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त छन्द और ज्योतिष, वेदके इन छहों अंगोंको जानता था; वह कौशिक गोत्रीय पिप्पलादका पुत्र था, षडङ्ग विषयमें उसे अपरोक्ष विज्ञान हुआ था। वह वेदनिष्ठ था और हिमालयके प्रत्यन्त पर्व्वतका आश्रय करके निवास करता था। उसने सावधान होके सावित्री संहिताका जप करते हुए स्वधर्म्मानुष्ठान रूपी अत्यन्त उत्तम तपस्या की थी। इसी प्रकार नियम पूर्व्वक उसका सहस्र वर्ष व्यतीत हुआ, तब सावित्रीदेवीने "मैं प्रसन्न हुई हूं"—ऐसा वचन कहके उसे दर्शन दिया। ब्राह्मण मौनभावसे मन्त्रका जप करते हुए देवीसे कुछ न बोला। वेदमाता गायत्री उसके विषयमें उस समय कृपा करके अत्यन्त प्रसन्न हुईं; और उसके जप मन्त्रकी अधिक प्रशंसा करने लगीं।

धर्मात्मा ब्राह्मणने जप समाप्त होने पर उठके देवीके चरणों पर गिरके उन्हें प्रणाम किया और यह वचन कहा कि, हे देवी! भाग्यसेही आपने प्रसन्न होकर मुझे दर्शन दिया है। हे भगवती! आप यदि मेरे ऊपर प्रसन्न हुई हों, तो आपकी कृपासे मेरा मन सदा जपमें ही रत रहे।

सावित्री बोली, हे जापकश्रेष्ठ विप्रर्षि! तुम क्या प्रार्थना करते हो? मैं तुम्हारा कौनसा अभिलषित विषय सिद्धकरूं, उसे कहो; तुम जो मांगोगे, वह सब सिद्ध होगा। देवीने जब ऐसे वचन कहे, तब वह धर्म जाननेवाला ब्राह्मण बोला, हे देवी! मेरी यह अभिलाषा जपमेंही सदा बढ़ती रहे, हे शुभे! मेरे मनकी एकाग्रता भी दिन दिन वृद्धिको प्राप्त होवे।

अनन्तर देवीने मधुर भावसे "वही होगा" ऐसा वचन कहा। फिर देवीने उसकी प्रियकामनासे यह भी कहा, जिस स्थानमें मुख्य-मुख्य ब्राह्मण लोग गमन किया करते हैं, तुम्हें उस नियममें न जाना पड़ेगा; तुम आवागमनसे रहित होकर ब्रह्मलोकमें गमन करोगे; अब मैं निज स्थानपर जाती हूं। तुमने मेरे समीप जो प्रार्थना की है वही होगा; तुम सावधान और एकाग्र चित्त होकर जप करो; धर्म स्वयं तुम्हारे निकट आवेगा और काल, मृत्यु तथा यम भी तुम्हारे समीप आगमन करेंगे। इसही स्थानमें उन लोगोंके साथ तुम्हारा धर्म विवाद होगा।

भीष्म बोले, भगवती सावित्री ऐसा कहके अपने स्थानपर चली गई। इधर ब्राह्मण भी सदा दान्त, जित-क्रोध, सत्यप्रतिज्ञ और असूया रहित होकर जप करते हुए देव परिमाणसे एकसौ वर्ष बिताने लगा। अनन्तर उस बुद्धिमान् ब्राह्मणके जापकका नियम समाप्त होने पर उस समय धर्मने स्वयं प्रसन्न होकर उसे दर्शन दिया।

धर्म बोले, हे द्विजवर! मेरी ओर देखो मैं धर्म हूं, तुम्हें देखनेको आया हूं, तुम जो जप करते हो, उसका फल इस समय मुझसे सुनो। हे साधु! जो सब दिव्य वा मनुष्य लोक हैं, तुमने उन सबको जय किया है; तुम देवताओंके सब स्थानोंको अतिक्रम करके गमन करोगे। हे मुनिवर! इस समय तुम प्राण छोड़के निज अभिलषित लोकमें गमन करो; तुम अपना शरीर त्यागनेपर सब परलोक प्राप्त करोगे।

ब्राह्मण बोला, हे धर्म! मुझे परलोक प्राप्तिसे क्या प्रयोजन है, आप सुखसे गमन करिये, हे विभु! मैं बहुतसे सुख दुःख मिश्रित शरीरको परित्याग न करूंगा।

धर्म बोले, हे मुनिपुङ्गव! तुम्हें अवश्य शरीर त्यागना योग्य है। हे पापरहित ब्राह्मण! तुम स्वर्गमें गमन करो, अथवा जो अभिलाषा हो वह कहो।

ब्राह्मण बोला, हे धर्म! मैं बिना शरीरके स्वर्गमें वास करनेकी इच्छा नहीं करता। हे विभो! मुझे शरीरके बिना स्वर्गमें गमन करनेकी श्रद्धा नहीं है; आप निज स्थान पर जाइये।

धर्म बोले, तुम शरीरमें मन न लगाओ, शरीर त्यागके सुखी होओ; रजोगुणसे रहित लोकोंमें गमन करो; जहां पर जाके शोक रहित होगे।

ब्राह्मण बोला, हे महाभाग! मैं जप साधनमें अनुरक्त हूं, मुझे सनातन लोकसे क्या प्रयोजन है, हे विभो! मैं शरीरके सहित यदि स्वर्ग लोकमें जा सकूं, तो अच्छाही है; नहीं तो कुछ प्रयोजन नहीं है।

धर्म बोले, हे द्विजवर! तुम यदि शरीर न त्यागोगे, तो देखो तुम्हारे समीप ये यम, मृत्यु, और काल उपस्थित हुए।

भीष्म बोले, हे राजन्! अनन्तर सूर्य्य-नन्दन यम, काल और मृत्यु, ये तीनों उस महाभाग

ब्राह्मणके समीप उपस्थित होके क्रमसे अपना अभिप्राय कहने लगे।

यम बोले, हे ब्राह्मण! मैं यम हूं, स्वयं तुम्हारे समीप आके कहता हूं, कि तुम्हारे इस बहुत समयसे अनुष्ठित तपस्या और सुचरितके हुआ उत्तम फल प्राप्तिका समय है।

काल बोला, मैं काल हूं, तुम्हारे समीप आया हूं, तुमने इस जपका उत्तम फल विधि पूर्व्वक प्राप्त किया है; इस समय तुम्हारा स्वर्गमें जानेका समय हुआ है।

मृत्यु बोली, हे धर्म्मज्ञ! मैं मृत्यु मूर्त्तिमान होकर स्वयं तुम्हारे निकट आई हूं। तुम मुझे मालूम करो। हे विप्र! आज तुम्हें इस स्थानसे लेजानेके वास्ते मैं कालसे प्रेरित हुई हूं।

ब्राह्मण बोला, हे सूर्य्य पुत्र यम! महात्मन् काल,—हे मृत्यु!—हे धर्म्म! आप लोगोंने सुखसे आगमन किया है न? इस समय मैं आप लोगोंके किस कार्य्यका अनुष्ठान करूं।

भीष्म बोले, अनन्तर वह ब्राह्मण आये हुए यम आदिको पाद्य अर्घ देकर उन लोगोंके वहां पर समागमसे प्रसन्न होकर बोला, मैं निज शक्तिके अनुसार आप लोगोंका कौन प्रिय-कार्य्य सिद्ध करूं।

हे राजन्! ब्राह्मण ऐसाही वचन कह रहा था, उस ही समय जिस स्थानमें वे सब एकत्रित हुए थे, वहां तीर्थयात्रा प्रसङ्गसे घूमते हुए सूर्य्यवंशीय राजा इक्ष्वाकु आके उपस्थित हुए। अनन्तर नृपरुत्तम इक्ष्वाकुने उन लोगोंकी पूजा की और सबसेही कुशल प्रश्न किया। ब्राह्मण उस अभ्यागत राजाको पाद्य, अर्घ और आसन देकर कुशल पूंछके बोला, हे महाराज! आप सुखसे आये हैं न? इस स्थानमें जो इच्छा हो, उसे कहिये मैं निज शक्तिके अनुसार क्या करूं; आप उसको आज्ञा करिये।

राजा बोला, मैं क्षत्रिय हूं, आप षट कर्म्म-शाली ब्राह्मण हैं, इसलिये आपको कुछ धन दान करूं, कहिये इस विषयमें आपका क्या अभिप्राय है?

ब्राह्मण बोला, हे राजन्! प्रवृत्त और निवृत्त भेदसे ब्राह्मण दो प्रकारके हैं, धर्म्म भी दो प्रकारके हैं, इसमेंसे मैं प्रतिग्रहसे निवृत्त हूं। हे नरनाथ! जो प्रतिग्रहणमें प्रवृत्त हो, आप उन्हेंहो धन दान करिये; मैं कुछ भी दान न लूंगा। हे राजन्! आप क्या इच्छा करते हैं, उसे कहिये। मैं तपस्यासे आपका कौन कार्य्य सिद्ध करूं?

राजा बोला, हे द्विजवर! मैं क्षत्रिय हूं, 'देहि' यह बचन कभी नहीं कहता, 'युद्ध दान करो'—ऐसाही बचन कहा करता हूं।

ब्राह्मण बोला, हे नृपवर! हम लोग जैसे स्वधर्म्मसे सन्तुष्ट रहते हैं, आपभी उसी प्रकार निज धर्म्मसे परितुष्ट होंगे; इसलिये हम लोगोंमें परस्पर भेद नहीं है; इस समय आप इच्छानुसार आचरण करिये।

राजा बोला, हे द्विजवर! पहले आपने "निज शक्तिके अनुसार दान करूंगा" ऐसा बचन कहा है; इसलिये मैं आपके समीप प्रार्थना करता हूं, कि आप मुझे इस जपका फल दान करिये।

ब्राह्मण बोला, आपने इस प्रकार अपनी बड़ाई की थी, कि "मेरा मन सदा युद्धकी प्रार्थना किया करता है;" परन्तु तुम्हारे साथ मुझसे युद्धकी सम्भावना नहीं है, तब किस लिये प्रार्थना करते हो?

राजा बोला, ब्राह्मणोंका वचन ही वज्र स्वरूप है और क्षत्रिय बाहुजीवी कहके वर्णित हुए हैं। हे विप्र! इसलिये आपके साथ मेरा यह कठोर बचन युद्ध होरहा है।

ब्राह्मण बोला, "मैं निज शक्तिके अनुसार क्या प्रदान करूं",—पहिले जो ऐसी प्रतिज्ञा की थी, इस समय भी वह प्रतिज्ञा है। हे राजेन्द्र! इससे मेरा जो कुछ विभव है, उसके

अनुसार मैं क्या दान करूं ? उसीही कहिये, विलम्ब न करिये।

राजा बोला, आपने एक सौ वर्षतक जप करके जो फल पाया है, यदि मुझे दान करनेकी इच्छा करते हैं, तो उसीही दान करिये।

ब्राह्मण बोला, हे महाराज! यह उत्तम वचन है मैंने जपसे जो फल पाया है, आप विचार न करके उसे ग्रहण करिये; आप उसका आधा फल पावेंगे, अथवा यदि आप पूरे फलकी इच्छा करें, तो मेरे जपका सब फल पावेंगे।

राजा बोला, मैंने जो आपके जपका सब फल मांगा है, उससे मुझे प्रयोजन नहीं है। आप कुशलसे रहिये, मैं जाता हूं; परन्तु आपके जपका फल क्या है; वही मुझसे कहिये।

ब्राह्मण बोला, मैंने जो जप किया है और आपको दान किया है, उससे क्या फल प्राप्त हुआ है, वह मैं कुछ भी नहीं जानता। ये धर्म्म, काल, यम और मृत्यु, इस विषयके साक्षी हैं।

राजा बोला, इस धर्म्मका फल अज्ञात रहनेसे मुझे क्या फल होगा। इस जपके फलको यदि आप मुझसे न कहें, तो इस फलको आपही पावें मैं संशयके सहित फल लाभ करनेकी इच्छा नहीं करता।

ब्राह्मण बोला, हे राजर्षि! दूसरेसे जो कहना होता है और मैंने जोफल दान किया है; उसे अब फिर ग्रहण नहीं करूंगा; इस समय तुम्हारा और मेरा वचनही इस विषयमें प्रमाण है। मैंने पहले जप विषयमें कभी कुछ अभिसन्धि नहीं की है, हे नृपश्रेष्ठ! इसलिये मैं जपका फल किस प्रकार जानूं? आपने 'दान करो' ऐसा वचन कहा, मैंने भी 'दान किया' यह वचन कहा है। और इस समय अपना वचन दूषित नहीं कर सकूंगा; आप स्थिर होके सत्यकी रक्षा करिये। हे राजन्! मैं इसी प्रकार कहता हूं, इससे यदि मेरा वचन न मानोगे, तो तुम्हें मिथ्या वचनके कारण महान् अधर्म्म होगा। हे प्रजानाथ! जैसे आपको मिथ्या कहना उचित नहीं है, वैसेही मैंने भी जो कुछ कहा है, उसे भी मिथ्या करना योग्य नहीं है। मैंने पहिले अविचारित चित्तसे "दान किया" कहके अङ्गीकार किया है, इसलिये यदि आप सत्यपथमें स्थित हों, तो विचार न करके मेरे दिये हुए फलको ग्रहण करिये। हे राजन्! आपने इस स्थानमें आके मुझसे जपका फल मांगा, मैंने आपको उसे दान किया है, इससे आप ग्रहण करिये और सत्यपथमें स्थित होइये; मिथ्या वचन कहनेवाले मनुष्योंको इस लोक तथा परलोकमें सुख नहीं मिलता; जब कि वह पूर्व्व पुरुषोंका ही उद्धार करनेमें समर्थ नहीं हैं, तब किस प्रकार उत्पन्न हुए सन्तान परम्पराका कल्याण साधन करेगा। हे पुरुष श्रेष्ठ! जैसा इस लोक और परलोकमें सत्य लोगोंके निस्तारका कारण है; यज्ञफल, दान और सब नियम वैसे नहीं हैं। मनुष्यने सौ हजार वर्ष तक जो तपस्या की है और करेगा उसका फल सत्यफलकी तरह उसे उत्तम फलभागी नहीं कर सकता। सत्य ही अविनाशी ब्रह्म, सत्य ही अक्षय तपस्या है; सत्य ही केवल सदा फल देनेवाला यज्ञ है, सत्य ही नित्यवेद स्वरूप है, तीनों वेदोंमें सत्य ही प्रकाशमान होरहा है। सत्यका फल सबसे श्रेष्ठ है, ऋषियोंने ऐसा ही कहा है, सत्यसे ही धर्म्म और इन्द्रिय जय रूपी दमगुण प्राप्त होता है। सत्यसे ही सब प्रतिष्ठित हैं। सत्य ही वेद और वेदाङ्ग स्वरूप है। सत्य ही विद्या और विधि स्वरूप है, सत्य ही ब्रह्मचर्य्य और सत्य ही ओंकार स्वरूप है; प्राणियोंकी उत्पत्ति और विस्तृति सत्य स्वरूप है। सत्यके कारण वायु बहता है, सूर्य्य तपता है, अग्नि जलाती है, सत्यसे ही स्वर्ग प्रतिष्ठित है। सत्य ही यज्ञ, तपस्या वेद,

सामोच्चारण वर्षा, मन्त्र और सरस्वती स्वरूप है। सुना गया है, तुल्यता जाननेके वास्ते सत्य और धर्म्म तुलादण्डपर रखे गये थे, समान भावसे परिमाण करनेके समय जिधर सत्य था, उधर ही अधिक हुआ; जहांपर धर्म्म वहां ही सत्य है, हे महाराज! इससे आप किस निमित्त अपने बचनको मिथ्या करनेकी इच्छा करती हैं। हे राजन्! अपना अन्त:करण सत्यमें स्थिर कीजिये, मिथ्या आचरणमें अनुरक्त न होइये। आपने "देहि" कहके उसे अशुभ और मिथ्या क्यों कहा? हे महाराज! यदि आप मेरे दिये हुए जपके फलको ग्रहण करनेकी इच्छा न करेंगे, तो सब धर्म्मसे भ्रष्ट होकर निकृष्ट लोकोंमें विचरेंगे। जो अङ्गीकार करके देनेकी इच्छा नहीं करते और जो मांगके दान लेनेसे विमुख होते हैं; वे दोनो ही मिथ्याचारी होते हैं; इसलिये आप अपने बचनको मिथ्या नहीं कर सकते।

राजा बोला, हे द्विजवर! युद्ध और प्रजा-पालन करना क्षत्रियोंका धर्म्म है, तथा क्षत्रिय लोग ही दाता कहके वर्णित हुए हैं; इसलिये मैं आपके समीप कैसे दान ले सकूंगा।

ब्राह्मण बोला, हे राजन्! मैं तुम्हारे घर पर नहीं गया और 'ग्रहण करो' कहके बार बार आग्रहके सहित प्रार्थना भी नहीं की; आप ही मेरे समीप आके मांगकर अब क्यों ग्रहण करनेमें पराङ्मुख होरहे हैं?

धर्म्म बोले, तुम दोनोंके बिबादका निबटारा होवे, तुम दोनोंको विदित हो कि मैं धर्म्म इस स्थानमें आया हूं। ब्राह्मण दान फलसे और राजा सत्य फलसे संयुक्त होवें।

स्वर्ग बोला, हे राजेन्द्र! तुम्हें विदित हो कि मैं स्वर्ग स्वयं मूर्त्तिमान होके आया हूं, तुम दोनोंका बिबाद मिट जावे, तुम दोनों ही समान फल भागी हुए हो।

राजा बोला, स्वर्गके साथ मेरा कुछ प्रयोजन नहीं है। हे स्वर्ग! जहां तुम्हारी इच्छा हो, वहां जाओ ब्राह्मण यदि स्वर्गमें जानेकी इच्छा करे, तो मेरे आचरित पुण्यफलको ग्रहण करे।

ब्राह्मण बोला, बालक अवस्थामें यदि अज्ञा-नके वशमें होकर मैंने ग्रहण करनेके वास्ते हाथ पसारा हो, तो नहीं कह सकता; परन्तु ज्ञान होनेपर आजतक मैं साबित्री संहिता जप करते हुए निवृत्ति लक्षण धर्म्मकी उपासना करता हूं। हे राजन्! मैं बहुत समयसे प्रति-ग्रहसे निवृत्त हूं, इसलिये मुझे आप क्यों लोभ दिखाते हैं। हे नृपवर! मैं तपस्या और स्वाध्यायमें रत और प्रतिग्रहसे निवृत्त हूं; इसलिये स्वयं ही अपना कार्य्य करूंगा; आपके निकट कुछ फल ग्रहण करनेका अभि-लाषी नहीं हूं।

राजा बोला, हे विप्रवर! आपके परमश्रेष्ठ जपका फल यदि बिस्पष्ट हुआ हो, तब हम दोनोंका जो कुछ फल है, वह इस स्थानमें एक-त्रित होवे। ब्राह्मण दान लेनेवाले और राज-वंशमें उत्पन्न क्षत्रिय दाता कहके बिख्यात हैं। हे विप्र! वेदोक्त धर्म्म सत्य हो, तो हम दोनोंका फल एकत्रित होवे यद्यपि हम लोगोंका एकत्र भोजन न हो, तोभी आप मेरे फलको पावें। यदि मेरे ऊपर आपकी कृपा हुई हो, तो आप मेरे किये हुए धर्म्मका फल ग्रहण करिये।

भीष्म बोले, अनन्तर मैले वस्त्र और बुरे रूपवाले दो पुरुष वहां पर उपस्थित हुए। उनमेंसे एकका नाम बिरूप दूसरेका नाम बिकृत था; वे दोनों एक दूसरेको घेरके पकड़कर यह बचन कहने लगे।

एक पुरुष बोला, "तुमने मुझसे ऋण नहीं लिया है," दूसरा बोला, "मैं अवश्यही तुम्हारे निकट ऋणी हूं," इस समय हम दोनोंमें यह बिबाद होरहा है; इसलिये यह राजा इसका बिचार करे। मैं सत्यही कहता हूं, "तुमने मुझसे ऋण नहीं लिया है," परन्तु तुम यह

मिथ्या कहते हो, कि "मैं ऋणी हूं," वे दोनो ऐसेही वचनसे अत्यन्त दुःखित होके राजाके निकट जाके बोले कि, हे महाराज! हम लोग इस विषयमें जिस भांतिसे निन्दित न होवें, आप उसही प्रकार परीक्षा करिये।

विरूप बोला, हे नरश्रेष्ठ महाराज! मैंने इस समय इस विकृतके गऊ दानका फल ऋण किया है; परन्तु मैं ऋण चुकानेमें प्रवृत्त हूं, तो भी विकृत उसे नहीं लेता है।

विकृत बोला, हे नरनाथ! इस विरूपने मुझसे कुछ भी ऋण नहीं लिया है, यह आपसे सत्यके समान भावसे मिथ्या कह रहा है।

राजा बोला, हे विरूप! तुमने इसके निकट क्या ऋण लिया है, वह मुझसे कहो, मैं सुनके उसका विचार करूंगा; यही मेरे अन्तः करणमें जंच रहा है।

विरूप बोला, हे महाराज! मैं जिस प्रकार इस विकृतके निकट ऋणी हुआ हूं, वह सब वृत्तान्त आप सावधान होकर सुनिये। हे पापरहित राजऋषि! इन्होंने पहिले धर्म प्राप्तिके लिये तप और स्वाध्यायशील किसी ब्राह्मणको एक शुभलक्षणवाली गऊ दान की थी। हे राजन्! मैंने इनके समीप जाके उस गऊ दानका फल मांगा, इन्होंने भी शुद्ध चित्तसे मुझे वह फल दान किया था। हे राजन्! अनन्तर मैंने आत्मशुद्धिके निमित्त सुकृत कर्म किया और बहुतसा दूध देनेवाली बछड़ायुक्त दो कपिला गऊ खरीदके यथाविधि श्रद्धापूर्व्वक इस उञ्छवृत्तिको दानों गऊ प्रदान की हे पुरुष प्रवर! इस लोकमें लेकर जो उसही समय दूना फल देता है, वैसा दाता और प्रति-दाता इन दोनोंमेंसे इस समय कौन निर्दोषी और कौन दोषी होगा? हे महाराज! इसी प्रकार विवाद करते हुए हम दोनों आपके निकट आये हैं आप धर्म्म वा अधर्म्मसे विचार करके हम लोगोंको शिक्षा दीजिये। इन्होंने मुझे जिस प्रकार दान किया है, वैसेही यदि मेरे दानको यह स्वीकार न करें, तो आप सावधान चित्तसे विचार करके हम लोगोंको सत्पथमें स्थापित करनेमें समर्थ होइये।

राजा बोला, हे विकृत! तुम पहिले दिये हुए ऋणके लेनेमें क्यों विमुख होरहे हो? तुम्हारा जैसा ज्ञान हो, उसके अनुसार ग्रहण करनेमें देरी मत करो।

विकृत बोला, यह कहते हैं, "मैं ऋणी हूं" परन्तु मैं कहता हूं, दान किया है। इससे यह पुरुष इस समय मेरे समीप ऋणी नहीं है, इसकी जहां इच्छा हो, वहां जावे।

राजा बोला, यह पुरुष दे रहा है, तौभी तुम नहीं लेते हो, यह मुझे विषम बोध होता है; मेरे मतमें निःसन्देह तुम्हीं दण्ड-नीय हो।

विकृत बोला, हे राजऋषि! मैंने इसे जो दान किया है, उसे फिर किस प्रकार ले सकता हूं। इसमें मेरा अपराध हो, तो अवश्यही आप दण्ड की आज्ञा करिये।

विरूप बोला, हे विकृत! मेरे दिये हुए धनको ग्रहण करना यदि तुम अङ्गीकार न करोगे, तो धर्म्मके नियमित अनुसार यह शासनकर्त्ता राजा तुम्हें शासन करेगा।

विकृत बोला, मैंने मांगने पर तुम्हें जो धन दान किया है, इस समय उसे किस प्रकार ग्रहण कर सकता हूं। जो हो, मैं तुम्हें आज्ञा करता हूं, तुम निज स्थान पर जाओ।

ब्राह्मण बोला, हे राजन्! इन दोनोंने जो कहा, उसे तुमने सुना; इस समय मैंने आपको जो प्रदान करनेकी प्रतिज्ञा की है, आप विचार न करके उसे ग्रहण करिये।

राजा बोला, इन लोगोंका कार्य्य जैसा गूढ़ है, यह महत् कार्य्य भी उसी भांति प्रस्तुत हुआ है। इस जापकके वचनकी दृढ़ता किस प्रकार सिद्ध होगी; यदि ब्राह्मणको दी हुई वस्तु

ग्रहण न करूं तो अवश्य ही आज महापापमें लिप्त हूंगा। अनन्तर वह राजर्षि विरूप और विकृतसे बोले, तुम लोग कृतकार्य्य होके गमन करो; इस समय राजधर्म्म मेरे समीप रहके मिथ्या न होगा। यह निश्चय है, कि राजाओंको सब तरहसे अवश्य स्वधर्म्म पालन करना चाहिये, मैं अत्यन्त अनात्मज्ञ हूं, इस समय विप्रधर्म्म मुझमें उपस्थित हुआ है।

ब्राह्मण बोला, हे राजन्! आपने जो मांगा है उसे ग्रहण कीजिये और मैंने भी जो अङ्गीकार किया है उसे धारण करूं। आप यदि जांचके ग्रहण न करेंगे, तो मैं निःसन्देह शाप दूंगा।

राजा बोला, जिसके कार्य्यका ऐसा निश्चय हैं, उस राजधर्म्मको धिक्कार है। इस समय विप्रधर्म्म और राजधर्म्म दोनों किस प्रकार समान होंगे, इसेही जाननेके लिये मुझे ग्रहण करना उचित होता है। मेरा जो हाथ पहिले ग्रहण करनेके वास्ते नहीं पसारा गया, इस समय वही हाथ दान लेनेके लिये पसारा जा रहा है। इससे, हे विप्र! आप मेरे निकट जो ऋणी हैं, इस समय उसे प्रदान करिये।

ब्राह्मण बोला, मैंने सावित्री संहिता जप करते हुए जो कुछ फल उपार्ज्जन किया है, वह सब आप ग्रहण करिये।

राजा बोला, हे द्विजवर! मेरे करतलमें यह जल पड़ा हुआ है, यह दोनोंके सम्बन्धमें समान हो और एकत्र मिलित हो, आप प्रतिग्रह करिये।

विरूप बोला, हम काम और क्रोध दोनों इस स्थानमें आये हैं, हमनेही आपके निकट विचारकी प्रार्थना की थी। आपने जो कहा है कि "समान होवे," उससे आपके और इसके सब पुण्यलोक तुल्य होंगे, आपके ही लिये यह कुछ ऋणी नहीं हैं, मैंने यह विषय पूछा था। काल, धर्म्म, मृत्यु; काम, क्रोध और आप दोनों पुरुष, सब तुम्हारे सम्मुखमें ही परीक्षित हुए। इस समय निज कर्म्मोके जरिये विजित लोकोंके बीच जिस स्थानमें जानेकी इच्छा हो, वहां जाइये।

भीष्म बोले, जापकोंको फलप्राप्ति और गम्य स्थान तुम्हारे समीप प्रदर्शित किया और जापकोंके जरिये जिस प्रकार सब लोक विजित होते हैं, वह भी कहा है जो जापक सावित्री संहिता अध्ययन करते हैं, वह परमपद पाके ब्रह्माके लोक अथवा अग्निलोकमें गमन किया करते हैं, वा सूर्य्य लोकमें प्रवेश करते हैं। यदि वे उन सूर्य्यादि लोकोंमें प्रकाशमय रूपमें अनुरक्त रहें, तो रागमोहित होकर सूर्य्य आदिकी तरह प्रकाश आदि गुण अवलम्बन करते हैं और चन्द्रलोक, वायुलोक, भूलोक और आकाशमें उसके अनुरूप शरीर धारण करके उन लोकोंमें जो जो गुण हैं, उसहीका आचरण करते हुए रागयुक्त होकर वहां निवास करते हैं। यदि वहांपर वे रागरहित होकर संशययुक्त हों, तो ब्रह्मलोकसे श्रेष्ठ अक्षय लोकको इच्छा करते हुए उसमेंही प्रविष्ट होते हैं। निष्काम, अहङ्कार रहित जापक लोग अमृतसे भी अमृत हैं, अर्थात् कैवल्य नाम सुख मोक्षस्थान प्राप्त करके सुख दुःख आदि द्वन्द्व हीन नित्य सुखी शान्त निरामय ब्रह्मस्वरूप होकर पुनरावृत्तिसे रहित अद्वितीय अक्षरसंज्ञक दुःख और जराहीन शुद्ध शान्तिमय ब्रह्मलोकमें गमन करते हैं। अनन्तर वे वहांपर प्रत्यक्ष आदि चारों प्रमाणोंसे हीन भूख, प्यास, शोक, मोह, जरा, मृत्यु लक्षणसे रहित प्राण आदि पञ्चवायु, दशो इन्द्रिय और मन, इन षोड़श विकारोंसे मुक्त, उस कारण स्वरूप ब्रह्माको अतिक्रम करके उपाधि रहित चैतन्यमात्र परब्रह्मको पाते हैं, अथवा यदि वे सकाम होकर सर्व्वमय कारण स्वरूप लाभकी इच्छा न करें, अर्थात् तदभिमानी हों तब वे मनही मन जो इच्छा करें, उसेही पावें।

इसके अतिरिक्त वे निरयनाम सब लोकोंको देखते और सर्व्व मुक्तासे विमुक्त होकर वहां परम सुखके साथ विराजते हैं। हे महाराज! यह तुमसे जापकोंको गति विस्तारपूर्व्वक कहा फिर किस विषयको सुननेकी इच्छा करते हो।

१९९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! उस समय उस विरूपकी वचन सुनके जापक ब्राह्मण अथवा राजाने क्या उत्तर दिया? आप मुझसे वही कहिये, अथवा सद्योमुक्ति, क्रममुक्ति और लोकान्तर प्राप्ति इन तीनों विषयोंको जो आपने कहा है, उसके बीच वे लोग कहां गये; उन लोगोंकी वहां जानेपर क्या वार्त्ता हुई और उन्होंने वहां जाके क्या किया? उसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे महाराज! अनन्तर वह ब्राह्मण ऐसाही होवे, यह वचन कहके पहले धर्म्म, यम, काल, मृत्यु और स्वर्गका पूर्व्वरीतिसे सत्कार किया, फिर वहांपर जो सब मुख्य ब्राह्मण उपस्थित हुए थे, शिर झुकाकर उनकी पूजा करके राजासे बोला, हे राजर्षि! आप इस फलसे संयुक्त होकर प्रधानता लाभ करिये, मैं भी आपकी सम्मतिके अनुसार फिर जप करनेमें नियुक्त होऊं। हे महाबली नरनाथ! पहिले सावित्री देवीने मुझे यह वर दिया है, कि "जप विषयमें तुम्हारी सदा श्रद्धा रहे"।

राजा बोला, हे विप्र! मुझे जपका फल दान करनेसे यदि आपकी सिद्धि निष्फल हुई हो और जप करनेमेंही यदि आपकी श्रद्धा हो; तो मेरे सङ्ग चलिये, जप, फल, दान करनेके पुण्यसेही आप जपका फल पावेंगे।

ब्राह्मण बोला, इस स्थानमें सबके समीप मैंने आपको जपका फल देनेके लिये अत्यन्त प्रयत्न किया; इस समय हम दोनों समान रीतिसे तुल्य फलभागी होकर, जहां हमारी गति होगी गमन करेंगे। अनन्तर त्रिदशेश्वर उनका ऐसा निश्चय जानके लोकपाल और देवताओंके सहित वहां उपस्थित हुए। साध्यगण मरुद्गण, विश्वगण, सुमहत्, समस्त वाद्य, नदी, पर्व्वत, समुद्र और विविध तीर्थ, तपस्या, योगविधि, जीव ब्रह्मकी ऐक्यता प्रतिपादक सब वेद सामगान पूरणार्थ (हायि हावु आदि) सब अक्षर, नारद, पर्व्वत विश्वावसु, हाहा, हूहू और परिवारके सहित चित्रसेन गन्धर्व्व, नाग, सिद्ध, मुनि, देवदेव, प्रजापति और अचिन्त्य सहस्रशीर्ष विष्णु वहां उपस्थित हुए। आकाशमें भेरी और तूर्य्यवाद्य होने लगा। वहांपर उन महानुभावोंके ऊपर फूलोंकी वर्षा होने लगी, चारों ओर अप्सरा नृत्य करने लगीं। अनन्तर मूर्त्तिमान स्वर्ग ब्राह्मणसे बोला, हे महाराज! आपने सब तरहसे सिद्धि लाभ की है,—महाराज! तुम भी सिद्ध हुए हो।

हे राजन्! वे दोनों ही परस्परके उपकारके जरिये एक समयमें ही रूप आदि विषयोंसे नेत्र आदि इन्द्रियोंकी प्रतिसंहार करनेमें प्रवृत्त हुए। प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान, इन पञ्चवायुको हृदयमें स्थापित करके एकीभूत प्राण और अपान वायुमें मनको धारण किया। अनन्तर उन्होंने प्राण और अपानको, उनके निवासस्थल उदरमें स्थापित करके पद्मासन होकर भृकुटीके नीचे नासिकाका अग्रभाग देखते हुए भृकुटीके बीच मनके सहित प्राण और अपान वायुको क्रमसे धारण किया, इसी प्रकार उन्होंने चित्त जय करके चेष्टा रहित दोनों शरीरोंके जरिये स्थिरदृष्टि और समाहित होकर प्राणके सहित चित्तको मस्तकमें स्थापित करके धारण किया। अनन्तर उस महात्मा ब्राह्मणका ब्रह्मरन्ध्र विदीर्ण होके एक बहुत बड़ी ज्योतिशिखा निकलके स्वर्ग लोकमें गई। उस समय सब दिशाओंमें सब जीवोंके बीच महान् हाहाकार होने लगा। वह प्रशंस-

नीय ज्योति उस समय ब्रह्मशरीरमें प्रविष्ट हुई। हे महाराज! पितामह ब्रह्मा उस ज्योतिके प्रवेशके समय उठे और स्वागत प्रश्न करके मधुर वचनसे बोले, कि योगियोंका फल निःसन्देह आपक लोगोंके समान है। आपकोंसे योगियोंका फलदर्शन प्रत्यक्ष है; परन्तु आपकोंके पक्षमें यही विशेष है, कि उन्हें देखतेही उठनी विहित हुआ है। अनन्तर ब्रह्मा उस ब्राह्मणसे बोले, "तुम मुझमें सदा वास करो" ऐसा कहके फिर उसे सचेतन किया। अनन्तर उस ब्राह्मणने आनन्दित होके ब्रह्माके मुखमें प्रवेश किया। जिस प्रकार ब्राह्मण ब्रह्माके शरीरमें प्रविष्ट हुआ, राजाने भी उसही विधिसे भगवान् पितामहके शरीरमें उसी समय प्रवेश किया। अनन्तर देवता लोग ब्रह्माको प्रणाम करके बोले, आपकोंको देखतेही उठके खड़ा होना विशेष रूपसे विहित है; आपकके लिये ही सबका इस प्रकार प्रयत्न हुआ है और हम भी इसही कारण इस स्थानमें उपस्थित हुए हैं; यह ब्राह्मण और राजा समान फलभागी हैं, इसलिये आपने इन दोनों तुल्य पुरुषोंका समान सत्कार किया है। योगी और जापकका महत् फल आज देखा गया। इस समय ये लोग सब स्थानोंको अतिक्रम करके जहां इच्छा हो, वहां गमन करें।

राजा बोला, जो शिक्षा आदि वेदाङ्गस्वरूप महास्मृति शास्त्र अध्ययन करते और जो मनु आदि प्रणीत शुभफल देनेवाली मनुस्मृति आदि पाठ किया करते हैं, वे भी इसी विधिके अनुसार हमारे समान लोकोंमें गमन कर सकते हैं। जो योग विषयमें अनुरक्त रहते हैं, वे भी शरीर त्यागने पर इस ही रीतिसे हमारे समान लोकोंको पाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। इस समय मैं जाता हूं। तुम लोग भी सिद्धिके अनुसार यथा स्थानमें गमन करो।

भीष्म बोले, हे राजन्! प्रजापति उस समय ऐसाही कहके उसही स्थानमें अन्तर्द्धान हुए। अनन्तर देवता लोग भी परस्पर आमन्त्रण करके निज निज स्थान पर गये। यम आदि महानुभावोंने अत्यन्त प्रसन्न होके धर्म्मका सत्कार करके उनके पीछे पीछे गमन किया। हे महाराज! जापकोंके फल और गतिका विषय जैसा सुना है, वैसा ही तुम्हारे समीप वर्णन किया; फिर किस विषयको सुननेकी इच्छा करते हो?

२०० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! ज्ञानयुक्त योग, सब वेदों और अग्निहोत्र आदि नियमोंका क्या फल है? और जीवको किस प्रकार जाने? आप मुझसे वही कहिये।

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें प्रजापति मनु और महर्षि बृहस्पतिके सम्वाद युक्त इस पुराने इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं देवर्षियोंमें मुख्य बृहस्पतिने शिष्यभाव स्वीकार करके प्रजापतियोंमें श्रेष्ठ मनुको गुरु समझके उन्हें प्रणाम करके यह प्राचीन प्रश्न पूछा कि, हे भगवन्! जो इस जगत्का कारण है, जिसके निमित्त कर्म्मकाण्डकी विधि प्रचलित हुई है, जिसे जाननेसे परमफलकी प्राप्ति होती है, ऐसा ब्राह्मण लोग कहा करते हैं; वेदोक्त मन्त्र जिसे प्रकाश नहीं कर सकते, आप विधि पूर्व्वक उसका वर्णन करिये। धर्म्म, अर्थ, काम यह त्रिवर्ग शास्त्र और वेद मन्त्रोंके जाननेवाले ब्राह्मण लोग अनेक प्रकारके महत् यज्ञ और गजदानके जरिये जिसकी उपासना किया करते हैं, वह वस्तु कैसी है? किस प्रकार उसकी प्राप्ति होती है। और वह कहां है; हे भगवन्! महीमण्डल, स्थावर और जङ्गम, वायु, आकाश, जल, जलचर जीव, स्वर्ग और स्वर्गवासी लोग जिससे उत्पन्न हुए हैं, आप मेरे समीप उसही

पुरुष पुराणका विषय वर्णन करिये। मनुष्य जिस विषयमें ज्ञानकी इच्छा करते हैं, ज्ञानसे उसी उसके निमित्त प्रवृत्ति हुआ करती है, मैं उस पुरातन पुरुषको नहीं जानता, तब उसे जाननेके लिये किस प्रकार मिथ्या प्रवृत्ति करनेमें प्रवृत्त होऊं। मैं ऋक्, साम और सम्पूर्ण यजुर्व्वेद, छन्द, ज्योतिष, निरुक्त, शिक्षा, कल्प और व्याकरण, यह सब विद्या पढ़के भी आकाश आदिके उपादान कारण आत्माको जाननेमें समर्थ न हुआ। आप सामान्य और विशेष शब्दोंसे उस विषयका उपदेश करिये। आत्माको जाननेसे क्या फल होता है। कर्म करनेसेही कौनसा फल मिलता है; आत्मा शरीरसे जिस प्रकार पृथक् होता है, और फिर जिस प्रकार शरीरमें स्थित होता है, आप वह सब वर्णन करिये।

मनु बोले, प्राचीन लोग ऐसा कहा करते हैं, कि जो जिसे प्रिय है उसे उसहीसे सुख है, जिसे जो अप्रिय है, वही उसका दुःख है। "मेरी भलाई हो और कुछ बुराई न हो," इसही लिये मनुष्य कर्म करनेमें प्रवृत्त हुआ करते हैं; "मेरी भलाई बुराई कुछ न हो," इसही निमित्त लोग ज्ञानके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होते हैं। वेदमें कहे हुए सब कर्म काम प्रधान कहके निर्द्दिष्ट हुए हैं, जो लोग उन सब कर्म्मोंसे मुक्त होते हैं, वे परम सुख भोग करते हैं। सुखकी इच्छा करनेवाले मनुष्य अनेक प्रकारके कर्मपथमें प्रवृत्त होके स्वर्ग अथवा नरकमें गमन किया करते हैं।

बृहस्पति बोले, अभिलषित सुखही ग्राह्य है, अनभिलषित दुःखही त्याज हैं,—ऐसीही इच्छा अभिलषा करनेवालोंको सब कर्म्मोंसे प्रलोभित किया करती है।

मनु बोले, स्वर्ग आदि प्राप्ति रूप सुखके निमित्त अश्वमेध आदि यज्ञोंका अनुष्ठान हुआ करता है। जो लोग उन कर्म्म फलोंसे मुक्त हुए हैं, उन्होंनेही परम पुरुषमें प्रवेश किया है। सब कर्मकाण्ड सकाम मनुष्योंकोही प्रलोभन प्रदर्शित करते हैं, जो निष्काम होते हैं, वे परमार्थ ग्रहण करते हैं। इसलिये मनुष्य ब्रह्मज्ञानके ही वास्ते सब कर्म्मोंका अनुष्ठान करें, क्षुद्र फलोंके लिये कर्म्मानुष्ठान उत्तम नहीं है। धर्ममें प्रवृत्त मोक्षसुखकी इच्छा करनेवाले मनुष्य चित्तशुद्धि आदि कर्म्मोंसे राग आदि दोषोंसे रहित होनेके कारण आदित्यकी तरह प्रकाशमान होकर कर्म पथसे अत्यन्त अगोचर निष्काम परब्रह्मको पाते हैं। जीव मन और कर्मसे उत्पन्न हुए हैं, इसलिये मन और कर्म संसारप्रद होनेपर भी सर्व्वलोक सेवित सत्पथ स्वरूप अर्थात् ब्रह्मप्राप्तिके उपाय हुए हैं। वेदविहित कर्म मोक्षके कारण होनेपर भी उनका फल बहुत कम है; मनसे क्रियमाण कर्म्म फलका त्यागही मोक्षके विषयमें कारण है, दूसरा कुछ भी नहीं है। जैसे नेत्र रूपी नायक रात्रिके बीतने पर अन्धकारसे रहित होकर त्यागने योग्य कांटे आदिको स्वयं देखता है, वैसेही ज्ञान विवेक गुणसे संयुक्त होकर त्यागने योग्य अशुभ कर्म्मोंको देखता रहता है। जैसे कोई कोई मनुष्य सांप कुशाग्र और कूएंको जानके उन्हें परित्याग करते हैं, वैसेही कोई कोई अज्ञानके कारण उनके ऊपर गिरते हैं, इसलिये ज्ञानमें जो विशेष फल है, वह इस उदाहरणसे ही देखो। विधिपूर्व्वक प्रयोग किये गये मन्त्र, यथोक्त यज्ञ, दक्षिणादान, अन्न प्रदान और देवताके ध्यानमें मनकी एकाग्रता, ज्ञानपूर्व्वक किये गये इन पांचों विषयोंको प्राचीन लोग फलवत् कर्म कहा करते हैं। वेद सब धर्म्मोंको सात्विक, राजसिक और तामसिक कहा करता है, इससे मन्त्र भी त्रिगुणात्मक हैं; क्यों कि मन्त्रपूर्व्वक कर्म्मही सिद्ध होते हैं। सात्विक आदि भेदोंसे विधि भी तीन प्रकार की है;

मनके जरिये फलको उत्पत्ति हुआ करती है और फलभोक्ता देहधारी भी तीनों गुणोंके भेदसे सुखी, दुःखी और मूढ़ भेदसे तीन प्रकारका हुआ करता है। शब्द, स्पर्श, रूप पवित्र रस और शुभगन्ध आदि कर्म्म फलोंसे प्राप्त होने योग्य स्वर्ग आदि लोक सिद्ध होते हैं। मनुष्य शरीर धारण करनेसे ही ज्ञान फलका अधिकारी नहीं होता; ज्ञानका फल, कर्म्मसे प्राप्य स्वर्ग आदि लोक ही सिद्ध हुआ करता है। शरीरसे जो कर्म्म करता है, शरीर युक्त होकर जीव उसही कर्म्मका फल भोग किया करता है; क्योंकि अकेला शरीर ही केवल सुखका स्थान और शरीरही केवल दुःखका आश्रय है। वचनसे जो कुछ कर्म्म करता है, जीव वाक्यके सहित उन सब फलोंको भोग किया करता है; मनसे जो कुछ कर्म्म करता है। जीव मनके सहितही उन कर्म्म फलोंको भोग किया करता है। जीव कर्म्म फलमें रत और फलकी इच्छा करके जिस प्रकार जो जो गुणयुक्त कर्म्म करता है, उन्हीं गुणोंसे संयुक्त होकर उसही शुभाशुभ कर्म्मफलोंको भोग करता है। जलके सोतेमें पड़ी हुई मछलीकी तरह जीव पूर्व्वकृत कर्म्मोंको प्राप्त हुआ करता है; उसके बीच शुभकर्म्मोंमें सन्तुष्ट और अशुभ कर्म्मोंसे असन्तुष्ट होता है। जिससे यह सब जगत् उत्पन्न हुआ है, जिसे जानके चित्तको जीतनेवाले योगी लोग जगत्‌को अतिक्रम करके गमन करते है, मन्त्र पद जिसे प्रकाश नहीं कर सकते, उस परम पदार्थका विषय कहता हूं, सुनो। जो स्वयं रसहीन और बिबिध गन्धसे रहित है; जो शब्द नहीं, स्पर्श नहीं और रूपवान नहीं है; जो इन्द्रियोंसे अगोचर अव्यक्त, वर्णहीन और एक मात्र है; जिसने प्रजा समूहके प्रयोजनके निमित्त पांच प्रकार रस आदिकी सृष्टि की है, वह न स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसकही है, वह न सत् है, न असत् है और सदसत् भी नहीं है; ब्रह्मवित् मनुष्य जिसे ज्ञान-नेत्रसे देखते हैं, उसे ही क्षय रहित अक्षय पुरुष जानो।

२०१ अध्याय समाप्त।

मनु बोले, माया-सहाय अक्षर पुरुषसे आकाश उत्पन्न होता है, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल, जलसे पृथ्वी उत्पन्न होती है और पृथ्वीसे स्थावर जङ्गमयुक्त समस्त जगत् उत्पन्न हुआ करता है। अन्तमें सब शरीरधारी स्थावर जङ्गमात्मक इन सम्पूर्ण पार्थिव शरीरोंके जरिये लवणोदिककी भांति पहिले जलमें लीन होते, जलसे अग्नि, अग्निसे वायु और वायुसे आकाशमें जाके निवृत्ति लाभ करते हैं, जो लोग मुमुक्षु होते हैं, वे परम मोक्ष प्राप्त करते हैं, दूसरे लोग फिर आकाशसे लौट आते हैं। मोक्षका आश्रय परमात्मा न ठण्ढा है, न गर्म्म है, न कोमल है, न कठोर है, न खट्टा है, न कषैला है; न मीठा है, न तीता है; न वह शब्द युक्त है, न गन्ध बिशिष्ट है और न वह परम स्वभाव परमात्मा रूपवान है। अनात्मज्ञ मनुष्य सर्व्वशरीर-व्यापित्वकसे स्पर्शज्ञान, जीभसे रस, नाकसे गन्ध, कानसे शब्दका ज्ञान करते और नेत्रसे रूप दर्शन किया करते हैं; परन्तु उस परम पुरुषको नहीं जान सकते।

मनुष्य रसोंसे जिह्वा, गन्धसे नासिका, शब्दसे कान, स्पर्शसे त्वचा और रूपसे नेत्रको निवृत्त करनेपर स्व-स्वभाव आत्माका दर्शन करनेमें समर्थ होता है। जो कर्त्ता जो ज्ञान वा कर्म्मसे जो प्राप्त होता है, उसहीके लिये जिस देश वा समयमें निमित्तभूत सुख वा दुःखमें उसके अनुकूल यत्न आरम्भ करते और आरम्भ करके अदृष्ट अथवा ईश्वरेच्छा अवलम्बन करके उस आरम्भ कार्य्यके दर्शन-गमन

आदि कार्य्योंको सिद्ध किया करते हैं, मुनि लोग उन सबकोही कारण कहते हैं; इस लिये कर्त्ता, कर्म्म, करण, देश, काल, सुख, दुःख, प्रवृत्ति, यत्न, गमन आदि क्रिया, अनुराग और अदृष्ट आदि सबका जो कारण है, उस चिन्मात्रको स्वभाव कहा जाता है।

जो ईश्वरस्वरूपसे सर्व्वव्यापी और जो जीवरूपसे व्याप्त तथा कार्य्य साधक है, जो नित्य परमात्मा अकेला सब भूतोंमें निवास करता है। जलमें चन्द्रमाकी परछांईके समान जो एक होकर भी अनेक दीखता है; इस मन्त्रार्थके समान जो सदा जगत्में निवास करता है, जो सबका कारण है; जो अद्वितीय होके भी आपही सब कार्य्य कर रहा है वही कारण पद वाच्य है; उसके अतिरिक्त सब पदार्थही कार्य्य हैं। जैसे मनुष्य पूर्ण रीतिसे किये हुए पुण्य पापके जरिये शुभाशुभ पदार्थका फल पाता है, वैसे ही यह स्वभाव नामक परम कारण ज्ञान निज पुण्य पापकर्म्मोंके कारण शरीरमें फंसा करता है। जैसे दीपक अग्रभागकी सब वस्तुओंको प्रकाश करता है, वैसे ही पञ्च इन्द्रिय स्वरूप दीपक ज्ञानसे जलकर बाहरी सब वस्तुओंको प्रकाशित किया करते हैं। जैसे राजाके पृथक् पृथक् बहुतसे अमात्य एकत्रित होकर कार्य्य निर्णयके लिये प्रमाण निर्द्देश किया करते हैं, वैसे ही शरीरके बीच पांचों इन्द्रिय अलग अलग होने पर भी ज्ञानके अनुगत होती हैं; इसलिये ज्ञान स्वरूप स्वभाव इन्द्रियोंसे भी श्रेष्ठ है। जैसे अग्निकी अर्च्चि, पवनका वेग सूर्य्यकी किरण और नदियोंके जल आते जाते तथा चलते हैं, शरीर धारियोंका शरीर भी उसही प्रकार है। जैसे कोई मनुष्य कुल्हाड़ा लेकर काठको काटनेसे उसमें धूंआ वा अग्नि कुछ भी नहीं देखता, वैसे ही शरीरसे उदर और हाथ पांव आदि काटनेसे उसके अतिरिक्त दूसरी कोई भी वस्तु दिखलाई नहीं देती। उन सब काठोंके मथनेसे जैसे धूंआं और अग्नि दृष्टिगोचर होती है, वैसे ही उत्तम बुद्धिवाले विद्वान् पुरुष योगसे इन्द्रिय और बुद्धिमें ऐक्यज्ञान करते हुए उस कारण-स्वरूप स्वभावका दर्शन करते हैं। जैसे मनुष्य सपनेमें पृथ्वीपर पड़े हुए निज अङ्गको अपनेसे पृथक् देखता है। वैसे ही कान आदि दशों इन्द्रिय, इस पञ्चप्राण युक्त अत्यन्त बुद्धिमान मनुष्य स्थूल शरीरसे देहान्तर रूपी लिङ्गशरीरमें गमन किया करता है। आत्माकी उत्पत्ति, वृद्धि, ह्रास और मृत्यु नहीं है; सुख दुःखप्रद कर्म्म सम्बन्धके कारण यह आत्मा अलक्षित होकर स्थूल शरीरसे लिङ्गशरीरमें गमन करता है। मनुष्य नेत्रसे आत्माका रूप नहीं देख सकते, किसी प्रकार उसे स्पर्श करनेमें समर्थ नहीं होते, नेत्र आदि इन्द्रियोंसे कोई कार्य्य सिद्ध नहीं कर सकते, इन्द्रियें भी उसे देखनेमें समर्थ नहीं हैं; परन्तु वह उनको देखता है। जैसे निकटवर्त्ती अयःपिण्ड जलती हुई अग्निके सन्ताप जनित रूपको प्राप्त होता है, यथार्थमें जलाना और पिंगलल आदि दूसरे गुण तथा रूपको धारण नहीं करता, वैसेही शरीरमें आत्माका रूप चैतन्य मात्र दृष्टिगोचर होता है; यथार्थमें देह चेतन नहीं है। तथापि जैसे लोहगत चतुष्कोन आदि अग्निमें मालूम होते हैं, वैसेही देहसे दुःख आदि आत्मामें मालूम हुआ करते हैं। जैसे मनुष्य शरीर छोड़के दूसरे अदृश्य शरीरमें प्रवेश करता है, वैसे ही आत्मा पञ्च महाभूतोंको परित्याग करके देहान्तरके आश्रय अमूर्त्त रूप धारण किया करती है। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीमें सब तरहसे आत्मा स्थित है, कान आदि पञ्च इन्द्रिय अनेक गुणोंको अवलम्बन कर कर्म्मोंमें वर्त्तमान रहके शब्द आदि गुणोंका आश्रय किया करती हैं। श्रवणेन्द्रिय आकाशके शब्द गुणका आश्रय करती है, घ्राणेन्द्रिय पृथ्वीके गन्ध गुणको अव-

लम्बन करती हैं, दर्शनेन्द्रिय रूप ग्रहण करनेमें समर्थ होती है। जीभ जलाश्रय रसको अवलम्बन करती है स्पर्श इन्द्रिय वायुमय स्पर्श गुणका आश्रय किया करती है, अर्थात् कान आदि पांचो इन्द्रिय शब्द आदि बासनाके सहित कार्य्यमें रत होती हैं। पांचो इन्द्रियोंके अवि-ध्येय शब्द आदि, पञ्च महाभूतों और पांचो इन्द्रियोंमें निवास किया करते हैं। आकाश आदि महाभूत और इन्द्रियां मनके अनुगत होती हैं, मन बुद्धिका अनुगामी हुआ करता है और बुद्धिस्वभावका अनुसरण करती है; इसलिये यह सिद्ध होता है, कि विषयोंका कारण इन्द्रिय, इन्द्रियोंका कारण मन, मनका कारण बुद्धि और बुद्धिका कारण चिदात्मा है। निज कर्म्मोंसे प्राप्त हुए नवीन शरीरमें ऐहिक और पूर्व्वजन्मके जो कुछ शुभाशुभ कर्म्म रहते हैं, इन्द्रियां उन्हें भी फिर ग्रहण करती हैं। जैसे नौका अनुकूल स्रोतके अनुगत होती है, वैसे ही पूर्व्व संस्कारके कारण उत्तरोत्तर शरी-रोंके क्रियमाण कर्म्म मनका अनुवर्त्तन किया करते हैं। जैसे भ्रान्तिज्ञानसे अस्थिर वस्तुतत्व मालूम होता है, सूक्ष्म पदार्थ मन भी वैसे ही महत्‌रूपको तरह प्रकाशित हुआ करता है। जैसे दर्पण मुखके प्रतिबिम्बको मुखस्वरूपसे दर्शन कराता है, वैसे ही अज्ञान कल्पित बुद्धि-रूपी आइना एकमात्र प्रत्यक पदार्थको आलो-चना कराया करता है; इसलिये भ्रान्तिके अनादि होनेपर भी तत्वज्ञानके जरिये उसमें बाधा होती है; बाधा होनेसे फिर दूसरी बार उसके उठनेकी सम्भावना नहीं रहती; इससे भ्रान्तिज्ञान दूर करनेके निमित्त तत्वज्ञानके प्राप्त करनेमें अत्यन्त यत्न करना उचित है।

२०२ अध्याय समाप्त।

मनु बोले, मनके सहित इन्द्रियोंके जरिये उपहित जीव चैतन्य है, वह पहिले अनेक अनु-भूत विषयोंको स्मरण करता है, अर्थात् बाल्य-कालमें मैंने यह अनुभव किया था, इस प्रका-रके मनोरथके समय विषयेन्द्रिय सन्निकर्ष आदिके अभाव निबन्धनसे ध्येय ज्ञान ज्ञात बासनायुक्त बुद्धि ही सर्व्वात्मताको प्राप्त होकर साक्षी चैतन्यके जरिये प्रकाशित होती है। अन्तमें इन्द्रियां विलीन होनेपर ज्ञानस्वरूप परमात्माके रूपमें निवास करती हैं; इसलिये इसे अङ्गीकार करना पड़ेगा, कि बुद्धिसे स्वतन्त्र चैतन्य स्वरूप आत्मा अवश्य है। जो साक्षी चैतन्य जब एक समय, असमय और अनेक समयमें निकटवर्त्ती शब्द आदि इन्द्रिय विष-योंको उपेक्षा न करके प्रकाश किया करता है, तब वह साक्षी परस्पर व्यभिचारी तीनों अव-स्थाओंमें भ्रमण करता है इससे एक मात्र चैतन्य जीव ही परम श्रेष्ठ है। काठमें स्थित अग्नि काठको जलाती है जैसे वायु उस काठका जलानेवाला न होकर भी केवल अग्निको उद्दीपन किया करता है, वैसेही इन्द्रियनिष्ठ बुद्धि ही इन्द्रिय जनित सुख दुःख आदि भोग करती है; चैतन्य उस बुद्धिको सचेतन कर रखता है; परन्तु इन्द्रियजनित सुख दुःखोंको नहीं भोगता। इस ही दृष्टान्तके अनुसार सत, रज, तम गुणात्मक जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति, इन तीनों बुद्धिस्थानोंके परस्पर विरुद्ध होने-पर भी साक्षी चैतन्य उनमें जिस प्रकार निवास करता है, वैसे ही इन्द्रिय आदि भी स्थित हुआ करती हैं। नेत्रसे आत्माको देखा नहीं जाता और इन्द्रियोंके बीच जिसमें स्पर्श शक्ति है, उससे भी आत्माको स्पर्श नहीं किया जा सकता; आत्मा शब्द रहित है, इसलिये शब्दके जरियेभी वह नहीं जाना जाता; इससे जिस इन्द्रिय वा मनके जरिये आत्माको जाना जाता है, वह भी परिणाममें विनष्ट होती है। कान आदि इन्द्रियें जब आपही अपनेको नहीं देख सकतीं तब सर्व्वज्ञ सर्व्वदर्शी आत्माको

किस प्रकार देखेंगे। दृश्य और द्रष्टा, इस अभेद रूपसे जो सर्व्वज्ञ होकर सभी देख रहा है, और सब विषयोंको जानता है, वह आत्मा ही इन्द्रियोंको देखता है। आत्माके इन्द्रियोंसे अगोचर होनेसे उसके अस्तित्व विषयमें संशय नहीं किया जासकता; क्यों कि हिमालय पर्व्वत और चन्द्रलोकके पृष्ठभाग कभी मनुष्योंको नहीं दीखते, तो यह नहीं कहा जासकता, कि वे नहीं हैं; इसलिये सब भूतोंमें चैतन्य रूपसे स्थित सूक्ष्म ज्ञान स्वरूप आत्मा पहिले कभी किसीके दृष्टिगोचर नहीं हुआ, तोभी ऐसा नहीं कह सकते, कि वह नहीं है। दर्पण समान चन्द्रमण्डलमें जगत्की परछाईंको कलङ्क रूपसे देखकर जैसे मनुष्य यह अनुभव नहीं कर सकते, कि यह जगत्ही चन्द्र मण्डलमें दीख पड़ता है, वैसे ही आत्मज्ञान है, वह असत् प्रत्ययके विषय और प्रत्यगात्म रूपसे प्रसिद्ध होनेसे अपरोक्ष है; इसलिये न वह अत्यन्त अविषय है, और न उत्पन्न ज्ञान है; इससे वह आत्म ज्ञानही परम निवृत्तिका स्थान है, इसे जानके भी मनुष्य बुद्धि दोषसे उसे देखकर भी नहीं देखता। पण्डित लोग स्थूलदृष्टिसे रूपवान् वृक्षोंको आदि अन्तमें अर्थात् उत्पत्तिके पहिले और विनाशके बाद रूपहीनता निबन्धन बुद्धिबलसे रूपहीन रीतिसे देखते हैं; क्यों कि आदि और अन्तमें जो वस्तु नहीं रहती, वर्त्तमानमें भी वह वैसीही है; इससे जो लोग इस प्रकार देखते हैं, वे लोग दूरत्व दोष निबन्धन प्रत्यक्षके जरिये अग्रच्छमाण सूर्य्यकी गतिको देशान्तर प्राप्ति रूपी कारणसे अनुमानके सहारे अवलोकन करते हैं। इसी प्रकार दृश्यमान पदार्थोंका असत्व और अदृश्यमान वस्तुओंको अस्तित्व सिद्ध हुआ करती है। जैसे दूरदेशवर्त्ती सूर्य्यकी गतिका अनुमान किया जाता है, वैसेही अत्यन्त धीर लोग दुरस्थित ज्ञानसे मालूम होने योग्य ज्ञेय आत्माको बुद्धि, रूपी दीपकके सहारे देखते हैं, और उसे निकटवर्त्ती करनेमें प्रवृत्तिके वशमें हुआ करते हैं। बिना उपाय किये कोई कार्य्य सिद्ध नहीं होता, जैसे जलजन्तुजीवी मछुवाहे शनके सूतसे बने हुए जालके जरिये मछलियोंको बांधते हैं, स्वजातीय हरिनके सहारे हरिनोंको, पक्षीसे पक्षियों और हाथीसे हाथी पकड़े जाते हैं, वैसे ही ज्ञानसे ज्ञेय आत्माको जाना जासकता है। मैंने सुना है, कि सांपही सांपका पांव देखता है, वैसेही स्थूल देहके बीच लिङ्ग शरीरमें रहनेवाले ज्ञेय आत्माको ज्ञानके सहारेही देखा जाता है। जैसे इन्द्रियोंके जरिये इन्द्रियोंको जाननेके लिये कोई भी उत्साह नहीं करता, वैसे ही चरम बुद्धिवृत्ति शुद्ध बोध्य आत्माका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होती। जैसे अमावस्यामें सूर्य्यके सहवासके कारण उपाधिरहित चन्द्रमण्डल नहीं दीखता, परन्तु दृष्टगोचर न होनेसे जैसे चन्द्रमाके नाशकी सम्भावना नहीं है, शरीरधारी जीवको भी वैसाही जानो। जैसे अमावस्यामें क्षीण आवरण चन्द्रमा प्रकाशित नहीं होता वैसेही मुक्ति विमुक्तिजीवोंकी प्राप्ति नहीं होती। जैसे पूर्णमासीको फिर चन्द्रमाका प्रकाश होता है, वैसे ही जीव शरीरान्तरमें जाके फिर प्रकाशमान हुआ करता है। चन्द्रमण्डलकी तरह जन्म वृद्धि और क्षय, जो कि प्रत्यक्ष प्राप्त होती है, वह शरीरकाही धर्म्म है, जीवका नहीं। उत्पत्ति, वृद्धि और अवस्थाके परिमाणके अनुसार शरीरका भेद होनेपर भी "वह पुरुष यही है," इसी प्रकार जैसे शरीरके ऐक्य विषयमें प्रत्यभिज्ञा उत्पन्न होती है, वैसे ही अमावस्यामें अदृश्य चन्द्रमाही फिर मूर्त्तिमान् हुआ, "वही चन्द्रमा प्रकाशित होरहा है"— ऐसा ही ज्ञान हुआ करता है; इसलिये बाल्य आदि अवस्थान्तर प्राप्ति निबन्धनसे देहान्तर प्राप्त होनेपर भी शरीर चन्द्रमाकी भांति एक

ही है। जैसे देखा जाता है, कि अन्धकार चन्द्रमण्डलको स्पर्श करने वा परित्याग करनेमें समर्थ नहीं होता, जीव भी वैसाही है; शरीर और जीवका परस्पर सम्बन्ध न मालूम होनेपर तीनों कालोंमें भी उसका सम्भव नहीं है। शरीरके साथ आत्मा का सम्बन्ध रहनेसे ही वह प्रकाशित है। चन्द्रमा और सूर्य्यके सहित जैसे संयोगके कारण राहुको जाना जाता है, वैसे ही जड़ शरीरके साथ संयुक्त होनेसे चैतन्य स्वरूप आत्माको शरीर कहके मालूम किया जाता है। जैसे चन्द्रमा और सूर्य्यके सम्पर्कसे रहित होनेसे राहु मालूम नहीं होता, वैसेही शरीरसे रहित होनेपर जीवकी उपलब्धि नहीं की जासकती। जैसे चन्द्रमा अमावस्या तिथिमें गमन करनेसे नक्षत्रोंके सहित संयुक्त होता है, वैसेही शरीरसे छुटा हुआ जीव कर्म्मफल-भूत शरीरान्तरमें संयुक्त हुआ करता है; देहके अभावसे आत्माका अभाव नहीं होता, वह शरीरान्तर अवलम्बन किया करता है।

२०३ अध्याय समाप्त।

मनु बोले, शरीरके सहित आत्माका सम्बन्ध अपरिहार्य्य है, इसे सुनकर मुमुक्षु पुरुषोंके अन्तःकरणमें उद्वेगका सञ्चार हो सकता है; इसलिये उसके निवृत्तिसाधन योगका विषय कहता हूं सुनो। स्वप्नावस्थामें जैसे इन्द्रियोंके सहित इस स्थूल शरीरके निद्रित होनेपर चेतन मात्र विचरण किया करता है, उस ही प्रकार सुषुप्तिकालमें इन्द्रिय संयुक्त करके ज्ञान मात्र निवास करता है, यही संसार और मोक्षका निदर्शन अर्थात् जैसे सुषुप्तिकालमें इन्द्रियोंके सहित लिङ्ग शरीरके निद्रित होनेपर भी केवल ज्ञान स्थिति करता है, मोक्ष अवस्थामें भी वैसे ही ज्ञान मात्र स्थिति किया करता है। जैसे निर्म्मल जलमें नेत्रके सहारे रूप दीखता है, वैसेही इन्द्रियोंके प्रसन्न होने पर ज्ञेय आत्माको ज्ञानके सहारे देखा जाता है, अर्थात् इन्द्रियोंको जय करनेसे आत्मज्ञान उत्पन्न होनेपर मनुष्य उसहीके जरिये विमुक्त होसकता है। जलके चञ्चल होनेसे जैसे उसमें रूप दर्शन सम्भव नहीं होता, वैसेही इन्द्रियोंको विनाशमें किये बुद्धिसे ज्ञेय आत्मा नहीं जानी जाती अज्ञानसे अविद्या उत्पन्न होती है, अविद्यासे मन, राग आदि विषयोंमें आक्रान्त होता है, मनके दूषित होनेपर मन प्रधान कान आदि पांचो इन्द्रियें भी दूषित हुआ करती हैं; विषयोंमें अत्यन्त मग्न मोह-पूरित मनुष्य कभी तृप्त नहीं होता, जीव धर्म्म अधर्म्मके सहित शब्द आदि विषयभोगके निमित्त मरके फिर जन्म लेता इस लोकमें पापके हैं। कारण पुरुषोंकी तृष्णा नष्ट नहीं होती, जब पाप नष्ट होता है, तभी तृष्णा निवृत्त हुआ करती है। विषयोंके सन्सर्गसे नित्यत्वके संशय निबन्धन मनके सहारे सुख दुःख साधन दोनों उपायोंकी विपरीतताके कारण मनुष्य परम पदार्थ नहीं प्राप्त कर सकता। पाप कर्म्मोंके नष्ट होनेसे मनुष्यको ज्ञान उत्पन्न होता है, तब मनुष्य निर्म्मल दर्पण जलकी भांति आत्मासे ही आत्माका दर्शन करता है; इन्द्रियोंके विषयोंमें अनुगत होनेसे मनुष्य उसहीके जरिये दुःखभागी होता है और निग्रहीत इन्द्रियोंसे सुखी हुआ करता है; इसलिये इन्द्रियोंके विषयोंसे आप ही अपनेको नियमित करे अर्थात् इन्द्रियोंको संयम करके आत्माको निग्रहीत करना उचित है।

इन्द्रियोंसे मन श्रेष्ठ है, मनसे बुद्धि, बुद्धिसे जीव और जीवसे परमात्मा परमश्रेष्ठ है। शुद्ध चिन्मात्र अव्यक्तसे ज्ञान प्रकट होता है, ज्ञानसे बुद्धि और बुद्धिसे मन उत्पन्न हुआ करता है। वह मन श्रोत्रादि इन्द्रियोंके सहित संयुक्त होकर शब्द आदि विषयोंको भली भांति अनु-

भव करता है। जो लोग उन शब्दादि विषयों और हृदयाकाशमें भासमान शब्द आदिके आश्रयभूत आकाशादिको परित्याग करनेमें समर्थ होते हैं, और प्रकृतिसे समुत्थित ग्रामकी भांति अन्तःकरण पथिकके आश्रय स्थान स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरको परित्याग करते हैं, वेही केवल सुखभोग कर सकते हैं।

जैसे सूर्य उदय होनेके समय किरणमाला उत्पन्न करता है और अस्त होनेके समय उन सब किरणोंको अपनेमें ही संहार करता है। वैसे ही अन्तरात्मा शरीरमें प्रकट होके इन्द्रिय रूपी किरणोंके जरिये पञ्च इन्द्रियोंके भोग्य विषय रूप आदिको भोग करते हुए अस्तरूपी स्वरूपमें निवास किया करता है। जीव अपने किये हुए कर्म्मोंसे नीयमान होकर बार बार शरीर धारण किया करता है; प्रारब्ध कर्म्मोंके फलको भोगनेके लिये प्रवृत्ति प्रधान पुण्य और पापकर्म्मोंका फल प्राप्त होता है। विषय भोगसे रहित जीवका विषयाभिलाष विशेष रूपसे निवृत्त होता है, परन्तु उसको वासनाका रस निवृत्त नहीं होता, जिन्होंने परमात्माका दर्शन करके समस्त कामनाका फल पाया है। उनकी ही वासना चय हुआ करती है।

जब बुद्धि विषयासक्तिसे रहित होकर मन प्रधान "त्वं" पदार्थमें अर्थात् "अस्मिता" मात्रमें निवास करती है, तब मन भी ब्रह्ममें लीन होकर ब्रह्मत्व लाभ किया करता है। जो स्पर्श इन्द्रियसे रहित होनेसे स्पर्शन क्रियाका आश्रय नहीं है, श्रवणेन्द्रियसे हीन होनेसे श्रवण आदि क्रियासे रहित है; नेत्रेन्द्रियसे रहित होनेसे दर्शन क्रियाका अनाश्रय है, घ्राणेन्द्रियसे रहित होनेसे आघ्राणका आश्रय नहीं है और जो अनुमानसे अगम्य है, उसही परमात्मामें बुद्धि प्रवेश किया करती है। मनके सङ्कल्पजनित घटपट आदि सब वाह्यवस्तु मनमें निमग्न होती हैं, मन बुद्धिमें लीन हुआ करता है, बुद्धि चैतन्यस्वरूप जीवमें लयको प्राप्त करती है और जीव परब्रह्ममें मिलित होजाता है। इन्द्रियोंके जरिये मनकी सिद्धिलाभ नहीं होती मन बुद्धिको नहीं जान सकता, बुद्धि व्यक्त जीवको जाननेमें समर्थ नहीं होती; परन्तु सूक्ष्मस्वरूप चिदात्मा इन सबकोही देखता है।

२०४ अध्याय समाप्त।

मनु बोले, शरीरिक वा मानसिक जिन दुःखरूपी विघ्नोंके उपस्थित होनेपर योगसाधनमें यत्न नहीं किया जा सकता, वैसे दुःखविषयक चिन्ता न करे अर्थात् चिन्ता न करके ही वैसे दुःखोंको त्यागना उचित है; ऐसे दुःखोंकी चिन्ता न करनी ही उसके विनाशका महौषध है; दुःखको चिन्ता करते रहनेसेही वह आवे उपस्थित होता है और उपस्थित होनेपर बार बार बढ़ता रहता है। बुद्धिसे मानसिक और औषधोंसे शरीरिक दुःखोंका नाश करे; विज्ञानकी सामर्थ यही है—कि दुःख शान्ति किया करता है; इसलिये इसे जानके कोई बालकके समान व्यवहार न करे। रूप, यौवन, जीवन, द्रव्य सञ्चय आरोग्यता और प्रिय सहवास, ये सब ही अनित्य हैं; इससे पण्डित पुरुष उन विषयोंको आकांक्षा न करें। सब जनपदवासी साधारण लोगोंको जो दुःख हुआ करता है, उसके लिये इकबारगी शोक करना उचित नहीं है; यदि प्रतिकारका उपाय देखा जाय, तो दुःखके लिये शोक न करके उसके प्रतिकारमें प्रवृत्त होना उचित है। जीवित अवस्थामें सुखसे अधिक निःसन्देह दुःखही उपस्थित होता है। इन्द्रियोंके निमित्त सुख भोगमें अनुरक्त मनुष्योंको छोड़के कारण मरना अप्रिय बोध होता है। जो मनुष्य सुख दुःख दोनोंको त्यागता है, वह परब्रह्मके अत्यन्त निकटवर्त्ती होता है। जिन सब पण्डितोंने परब्रह्मकी समीपता लाभ

की है, वे कभी शोक नहीं करते। सब अर्थ दुःख योग कर देते हैं, अर्थ पालनसे भी सुख-सम्पत्ति नहीं होती बहुत दुःखसे अर्थ प्राप्त हुआ करता है, तौभी मनुष्य अर्थनाशकी चिन्ता नहीं करता। ज्ञानस्वरूप परब्रह्म अहङ्कार आदि घटपट पर्य्यन्त बाह्य वस्तुके सहित अभेद-रूपसे अविद्याके सहारे अभिहित होता है; इस लिये कनकका धर्म्म कटकको भांति है, मनको ज्ञानका धर्म्म जानना चाहिये वह मन जब ज्ञानेन्द्रियके सहित संयुक्त होता है, तब विषयाकार बुद्धि वृत्तिरूपसे प्रकाशित हुआ करती है जबतक बुद्धि कर्म्मकेनिमित्त सन्स्कारके सहित सम्मिलित होकर जननात्मक चित्त वृत्तिमें निवास करती है, तबतक ध्येयाकार प्रत्यय सन्तति युक्त समाधिके सहारे परब्रह्मको जाननेमें समर्थ होती है।

पहाड़के शिखरसे जल निकलनेकी तरह ये इन्द्रियादि युक्त बुद्धि अज्ञानसे प्रकट होके रूप आदि विषयोंमें वर्त्तमान रहती हैं; और अज्ञान नाश होनेके समय अज्ञानके कारण ध्यानसे निर्गुण परमात्माके निकटवर्त्ती होती है, उस समय कसौटी स्थित सुवर्णकी रेखाके समान बुद्धि ब्रह्मकी विशेषरूपसे जान सकती है। मन इन्द्रियोंके विषय रूप आदिका प्रदर्शक होकर पहले अखण्ड प्रकाशके जरिये तिरोभूत होता है, अन्तमें इन्द्रियोंके विषयोंकी अपेक्षा न करके रूप आदिसे रहित निर्गुण ईश्वरका प्रदर्शक हुआ करता है। जीव सब इन्द्रिय द्वारोंको विधानपूर्व्वक सङ्कल्प मात्र मनमें निवास करता है, फिर सङ्कल्पकोभी बुद्धिमें लीन करके एकाग्रताके सहारे परब्रह्मको पाता है। जैसे अपञ्चीकृत भूत संज्ञक शब्दतन्मात्र आदिके सुषुप्ति कालमें चय होनेपर पञ्चीकृत पञ्चमहाभूत विनष्ट होते हैं वैसे ही अहङ्कारमें फंसी हुई बुद्धि निज कार्य्य इन्द्रियोंको ग्रहण करके मनमें लय होती है, वह अहङ्कार चारिणी बुद्धि निश्चयात्मिका होकर जब मनमें निवास करती है, तब वह लवणोदक वा मधुर जलकी भांति अथवा रूपान्तर प्राप्त कुण्डलके स्वर्णाल सदृश मनही हुआ करता है।

ध्यानके जरिये सर्व्व उत्कर्षशाली अहङ्कारात्मक मन जब रूप आदि विशिष्ट विषयोंके सहित सत्वादिगुण युक्त होता है, तब सर्व्व-गुणात्मक अव्यक्तको अवलम्बन करके निर्गुण परब्रह्मको प्राप्त हुआ करता है। परन्तु न सत् है, न असत् है; इसलिये उसके विज्ञान विषयमें प्रकृत प्रमाण नहीं है। जिसे वचनसे भी नहीं कहा जा सकता। कौन पुरुष वैसे विषयको प्राप्त करनेमें समर्थ होगा। इससे आलोचनासे ध्यान जनित साक्षात्कार, मनन नामक बुद्धिका अनुसन्धान, शम, दम आदि गुणागुण, जातिके अनुसार स्वधर्म्म प्रतिपालन और वेदान्त वाक्य सुननेसे शुद्ध अन्तःकरणके जरिये परब्रह्मको जाननेकी इच्छा करे। परमात्मा गुण रहित है, इसलिये उसके प्राप्तिके उपायको भी बाह्यमें गुणहीन भावसे अनुसरण करे; वह स्वाभाविक निर्गुण है, इससे वह तर्कके जरिये नहीं जाना जाता। काष्ठमें स्थित अग्निकी भांति विषयोंमें गमन करनेवाली बुद्धिके विषयहीन होनेपर परब्रह्मको प्राप्ति होती है, विषययुक्त होनेसे ब्रह्मके सन्निधानसे निवृत्ति लाभ किया करती है। जैसे सुषुप्ति कालमें इन्द्रियां निज निज कर्म्मोंसे रहित हुआ करती हैं, वैसेही परमात्माप्रकृतिसे अत्यन्त विमुक्त होरहा है।

इसी प्रकार प्रकृतिसे चिदाभास संज्ञक सब जीव कर्म्म फलके अनुसार उत्पन्न और विनष्ट होते हैं, कालक्रमसे अज्ञानकी निवृत्ति होनेपर वे स्वर्गमें गमन करते हैं। जीव, प्रकृति, बुद्धि, सब विषय, इन्द्रियां, अहङ्कार और अभिमान, इन सबका अवश्य विनाश होता है, इसीसे इनकी भूत संज्ञा हुई है। अप्राकृत अव्यक्तसे पहिले इन भूतोंकी सृष्टि हुआ करती है,

अनन्तर बीजांकुर-न्यायके अनुसार पञ्चमहाभूत रूप विशेष पदार्थ पञ्चतन्मात्र, एकादश इन्द्रिय और अहङ्कार प्रकृतिके जरिये अभिव्यक्त होते हैं। धर्मसे उत्तम कल्याण और अधर्मसे अकल्याण हुआ करता है; रागवान् पुरुष लयके समय प्रकृतिको प्राप्त होते और विरक्त मनुष्य ज्ञानवान् होके विमुक्त होते हैं।

२०५ अध्याय समाप्त।

मनु बोले, जिस समय पञ्च इन्द्रिय शब्द आदि विषयों और मनके सहित संयुक्त होकर निग्रहीत होती हैं, तब धागेमें पड़ी हुई मनियोंकी तरह ब्रह्मका दर्शन करनेमें समर्थ हुआ करती हैं। जैसे सूत सुवर्ण मालाके बीच वर्त्तमान रहता है, वैसे ही मुक्ता, प्रवाल, मृण्मय और रजतमय मालामें भी उपस्थित है; इसी दृष्टान्तके अनुसार जीव निज कर्म्म फल द्वारा गऊ, घोड़े, मनुष्य, हाथी, मृग, कीट और पतङ्ग आदिमें आसक्त हुआ करता है। जीव जिन जिन शरीरोंसे जो जो यज्ञ आदि कर्म्म करता है, उसही शरीरसे उन कर्म्म फलोंको भोग किया करता है। जैसे एक रसा-भूमि सब औषधियोंकी प्रयोजन-अनुसारिणी होती है, वैसे ही कर्म्मानुगामिनी बुद्धि अन्तरात्माको दर्शन करती है। बुद्धिपूर्व्वक लिप्सा होती है, लिप्सा होनेसे अभिसन्धि उत्पन्न होती है, अभिसन्धि पूर्व्वक कर्म्म और कर्म्ममूलक फल हुआ करते हैं; इसलिये फलको कर्म्मात्मक, कर्म्मको ज्ञेयात्मक, ज्ञेय वस्तुको ज्ञानात्मक और ज्ञानको चित् और जड़ रूपसे सदसदात्मक जाने। चित् और जड़ ग्रन्थिरूप फल, बुद्धि रूप ज्ञेय और सञ्चित कर्म्मोंके नष्ट होने पर जो फल हुआ करता है, वही दिव्य फल और ज्ञेय वस्तुमें प्रतिष्ठित ज्ञान स्वरूप है। योगी लोग जिसे देखते हैं, वह नित्य सिद्ध महत्तत्वही परम श्रेष्ठ है, विषयासक्त बुद्धिवाले मूर्ख मनुष्य उस बुद्धिस्थ महत् पदार्थको देखनेमें समर्थ नहीं होते।

पृथ्वीके रूपसे जलका रूप बड़ा है, जलसे अग्नि महत् है, अग्निसे पवन महान् है, पवनसे आकाश वृहत् है, मन उससे भी श्रेष्ठ है, मनसे बुद्धि बड़ी है, बुद्धिसे काल महान् हुआ करता है, कालसे वह भगवान विष्णु बड़े हैं; यह समस्त जगत् जिसने बनाया है। उस देवका आदि मध्य और अन्त कुछ भी नहीं है। वह भगवान् अनादि, मध्यहीन और अनन्त हैं। इसही कारण वह अव्यय अर्थात् अपचय रहित हैं, उन्होंने सब दुःखोंको अतिक्रम किया है। दुःखही ज्ञातव्य विभागवत्-अन्तयुक्त कहके वर्णित हुआ है। जो हो, वह भगवान परब्रह्म कहके वर्णित हुए हैं, उनका आश्रयही परम पद है; इसे जानकर अनित्य दुःखमय कालके विषयसे विमुक्त पुरुष मुक्ति अवलम्बन किया करते हैं। ये सब शुद्ध चिदात्म स्वरूप पुरुष प्रमाण प्रमेय व्यवहार, रूप और सब गुणोंमें प्रकाश लाभ करते हैं; परब्रह्म निर्गुणत्व निवन्धन प्रागुक्त गुणोंसे परम श्रेष्ठ है; शम, दम, उपरमादि रूप निवृत्ति लक्षण निर्व्विकल्पक धर्म्म मालूम होनेपर मोक्ष हुआ करती है। ऋक्, यजु और समस्त सामवेद लिङ्ग शरीरको आश्रय करके जिह्वाग्रमें वर्त्तमान रहते हैं, ये यत्न साध्य होके भी विनाशी होते हैं; परन्तु ब्रह्म शरीर अवलम्बन करके उत्पन्न होनेपरभी यत्नसाध्य नहीं है; क्यों कि उसका आदि मध्य और अन्त नहीं है। ऋक्, यजु और साम आदि सबकी आदि कही हुई है और जिनकी आदि है, उनका अन्तभी देखा जाता है, परन्तु ब्रह्मको आदि किसीने भी स्मरण नहीं की है। ब्रह्मका आदि अन्त नहीं है, इसीसे वह अव्यय और अनन्त हैं; अव्यय होनेसेही उसमें दुःख नहीं है, और दुःख न रहनेसेही उसे मान

अपमान आदि कुछ भी नहीं है। जिस मार्गसे परब्रह्मके समीप गमन किया जा सकता है। मनुष्य लोग अदृष्ट, अनुपाय और कर्म्मके प्रतिबन्धन निबन्धनसे उस मार्गको देखनेमें समर्थ नहीं होते। विषयोंके सन्सर्ग और योगस्थल स्थित योगीके सङ्कल्प मात्रसे उपस्थित पदार्थोंके दर्शन निबन्धनसे अविरक्त योगी मनही मन जो ऐश्वर्य्य सुखका अभिलाष करते हुए परब्रह्मका दर्शन नहीं कर सकता। दूसरे लोग विषय दर्शन करनेसे ही उसे उपभोग करनेकी अभिलाषा करते हैं; इसलिये विषयाभिलाषी लोग परब्रह्मको निर्व्विषय कहके उसे जाननेकी इच्छा नहीं करते। जो पुरुष मूढ़ताके कारण वाह्य विषयोंमें अत्यन्त आसक्त होता है, वह यागियोंको प्राप्त होने योग्य विषयको कैसे प्राप्त कर सकता है। इसलिये धुएंके जरिये अग्निका अनुमान करनेकी तरह सत्य कामत्व आदि आन्तरिक गुणोंके सहारे अनुमानसे परब्रह्मको जानना योग्य है, हम लोग ध्यान निर्म्मल शुद्धबुद्धिके जरिये परब्रह्मको जान सकते हैं, परन्तु बचनसे उसे कहनेमें समर्थ नहीं होते; क्योंकि उपादान ब्रह्मके अभेदके कारण विषयाकारसे परिणत दर्शनका दर्शनसे ज्ञान उत्पन्न होता है ब्रह्माकार चित्तवृत्ति रूप ज्ञानके जरिये शरीर आदिमें आत्मभ्रमके निमित्त कलुषित बुद्धिको निर्म्मल अर्थात् सब संशयोंसे रहित करके बुद्धिके जरिये मन और मनके सहारे इन्द्रियोंको निर्म्मल करके क्षयरहित चैतन्यमात्र परब्रह्मका दर्शन प्राप्त हुआ करता है। ध्यान परिपाक समुत्थित बुद्धिहीन मनुष्य विचारात्मक मनके सहारे समूह अर्थात् श्रवण मनन विशिष्ट अप्राप्त प्रार्थनारहित निर्गुण आत्माको प्राप्त होते और जैसे वायु काष्ठान्तर्गत अग्निको उद्दीपित न करके उसे परित्याग करता है, वैसेही अप्राप्त प्रार्थनाके जरिये व्याकुलचित्त मनुष्य लोग आत्माको जाननेमें असमर्थ होकर उसे परित्याग करते हैं। सब विषयोंके आत्मामें लीन होनेपर मन बुद्धिसे भी श्रेष्ठ ब्रह्मको जाननेमें समर्थ हो जाता है; और पृथक् रूपसे सब विषयोंका ज्ञान होनेपर मन सब समयमें ही बुद्धि कल्पित ब्रह्मलोक पर्य्यन्त ऐश्वर्य्य और अनैश्वर्य्य प्राप्तिका निमित्त हुआ करता है। इसलिये आत्मामें सब विषयोंके प्रविलापन विधानसे जो लोग प्रवृत्त होते हैं, वे सब विषयोंके नष्ट होनेसे ब्रह्म शरीरमें लीन होते हैं। मन बचनसे अगोचर अव्यक्त पुरुष निर्लिप्त होकर भी देहादि उपाधि सम्बन्ध निबन्धन कर्म्म समवायीकी भांति दीखता है, फिर अन्त समयमें वह अव्यक्तत्व प्राप्त हुआ करता है। यह आत्मा बुद्धिशील ग्लानियुक्त प्रसिद्ध इन्द्रियोंके सहित असंसृष्ट रहके संस्वष्टकी तरह स्वशरीरमें निवास करता है, यह चिदाभास सब इन्द्रियोंके सहित संयुक्त तथा लिङ्ग शरीर पाके स्थूल देहाकारसे परिणत पञ्च भूतोंका आश्रय करता है; परन्तु विश्वभूत अव्यय अन्तर्य्यामीके सम्पर्कसे हीन होनेपर असमर्थके कारण गमन आदि कार्य्य करनेमें समर्थ नहीं होता। मनुष्य इस पृथ्वीका अन्त देखनेमें समर्थ नहीं होते, परन्तु यह जाना जाता है। कि इसका अन्त अवश्य ही है। जैसे समुद्रकी नौका वायुके सहारे इधर उधर डगमगाकर वायुके जरिये ही किनारे लगती है; वैसे ही कर्म्मके जरिये उह्यमान संसार सागरमें जीवको सब कर्म्म ही चित्त शुद्धि आदि उपायके सहारे परम पारमें उतार देते हैं। जैसे सूर्य्य किरणोंके जरिये जगत् व्याप्तित्व गुण प्राप्त करके अन्त समयमें किरणमण्डलके नष्ट होनेपर निर्गुण होता है, वैसे ही जीव इस लोकमें मननशील और सुख दुःखमें निर्व्विशेष होकर गुणरहित अव्यय ब्रह्ममें प्रवेश करता है। मनुष्य संसार मण्डलमें पुनरावृत्ति रहित, सुकृतशालियोंकी परमगति, जगत्की उत्पत्ति और प्रलयके कारण, अवि-

नाशी, आदि मध्य और अन्त रहित, अपरिणामी विचलन विवर्ज्जित स्वयम्भू परब्रह्मका दर्शन करके परम मोक्ष पाता है ।

२०६ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे भरत श्रेष्ठ महा प्राज्ञ पितामह ! आकाश आदि पञ्चभूतोंकी उत्पत्ति और लयके कारण कार्य्य मात्रके कर्त्ता, उत्पत्ति रहित, सर्व्वव्यापी, देह धर्म्म जरा आदिसे अपराजित, पृथ्वी पालक, इन्द्रिय विजयी, समुद्रके जलमें शयन करनेवाले पुण्डरीक लोचन केशवका स्वरूप मैं प्रकृत रूपसे सुननेकी इच्छा करता हूं ।

भीष्म बोले, हे तात युधिष्ठिर ! जमदग्निपुत्र राम, महर्षि नारद और कृष्णद्वैपायनके मुखसे मैंने इस विषयको सुना था । असित, देवल, महातपस्वी बाल्मीकि और मार्कण्डेय मुनि श्रीकृष्णके विषयमें उत्तम, महत् और अद्भुत कथा कहा करते हैं । हे भरतश्रेष्ठ ! षड़ैश्वर्य्य पूर्ण सर्व्वव्यापी केशव हो अन्तर्य्यामी रूपसे सबके नियन्ता है, वह विभुही सर्व्वमय पुरुष है, यह अनेक प्रकारसे सुना जाता है ; परन्तु लोकके बीच ब्राह्मण लोग महात्मा माधवके जिन सब कार्य्योंको जानते हैं, वह अनन्त होने पर भी उसमेंसे कुछ महात्म्य कहता हूं सुनो । हे राजन् ! पुराण जाननेवाले पुरुष गोविन्दके जिन सब कर्म्मोंको कहा करते हैं, इस समय मैं उसेही कहूंगा । सर्व्वभूतमय महात्मा पुरुषोत्तमने वायु, अग्नि, जल, आकाश और पृथ्वी इन पञ्च महाभूतोंकी सृष्टि की है । उस सर्व्वभूतेश्वर महानुभाव प्रभु पुरुषोत्तमने पृथ्वीकी सृष्टि करके जलके बीच शयन किया था । मैंने सुना है, सर्व्वतेजोमय पुरुषोत्तमने जलके बीच शयन करके सब जीवोंके आश्रय तथा सर्व्वभूतोंके अग्रज अहंकारको मनके सहित उत्पन्न किया ; वह अहंकार ही सर्व्वभूतों तथा भूत भविष्यत् दोनोंकोही धारण कर रहा है ।

हे महाबाहो ! अनन्तर उस महानुभाव अहंकारके प्रकट होनेपर भगवान्‌की नाभीसे सूर्य्यके समान एक दिव्य पद्म उत्पन्न हुआ । हे तात ! सब लोकोंके पितामह भगवान ब्रह्मा सब दिशाओंको प्रकाशित करते हुए उसही कमलसे उत्पन्न हुए । हे महाबाहो ! उस महात्मा ब्रह्माके उत्पन्न होने पर तमोगुणसे प्रथम कार्य्यभूत योग-विघातक मधु नाम महा-असुरने जन्म लिया, वह प्रचण्डमूर्त्ति और उग्रकर्म्म करनेवाला महा असुर ब्रह्माको मारनेके वास्ते उद्यत हुआ, तब चिदात्मा पुरुषोत्तमने ब्रह्माको उन्नति साधन करते हुए उस दानवका बध किया । उस असुरके बध करनेके कारण उसही समयसे सब देवता, दानव, और मनुष्य लोग योगियोंमें श्रेष्ठ भगवानको "मधुसूदन" कहा करते हैं । अनन्तर ब्रह्माने मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और दक्ष, इन सात मानस-पुत्रोंको उत्पन्न किया । हे तात ! अग्रज मरीचिने कश्यप नाम ज्येष्ठ मानस पुत्र उत्पन्न किया । हे भारत ! ब्रह्माने अंगूठेसे मरीचि नामक जिस जेठे पुत्रको उत्पन्न किया था, उनसे भी जो अधिक तेजस्वी और ब्रह्मवित् हुए, उन्हींका नाम दक्ष प्रजापति हुआ । हे भारत ! उन दक्ष प्रजापतिके पहिले तेरह कन्या उत्पन्न हुईं, उनके बीच दिति सबसे जेठी है । सब धर्म्मोंको विशेष रूपसे जाननेवाले पवित्र कीर्त्ति महा यशस्वी मरीचि-पुत्र कश्यप उन सबकीही स्वामी हुए । महाभाग धर्म्मज्ञ दक्ष प्रजापतिने उक्त कन्याओंके अतिरिक्त और दश कन्या उत्पन्न करके धर्म्मको प्रदान की । हे भारत ! वसुगण, अत्यन्त तेजस्वी रुद्रगण, विश्वदेव, साध्य और मरुद्गण धर्म्मके पुत्र हैं । प्रजापति दक्षके उक्त तेईस कन्याओंके अतिरिक्त और सत्ताईस कन्या उत्पन्न हुईं,

महाभाग चन्द्रमाने उन सबकाही पाणिग्रहण किया । कश्यपकी दूसरी स्त्रियोंने गन्धर्व्व तुरग, पशु, पक्षी, किम्पुरुष, मत्स, उद्भिज और बनस्पतियोंको प्रसव किया अदितिसे महाभाग देवताओंने जन्म ग्रहण किया, भगवान् विष्णु वामन रूपधारण करके उन लोगोंके नियन्ता हुए । उनके विक्रमके प्रभावसे देवताओंकी श्रीवृद्धि और दितिपुत्र असुर तथा दनुनन्दन दानवोंकी पराजय हुई थी । दनुने बिप्रचित्ति आदि दानवोंको उत्पन्न किया ; दितिसे महाबलवान असुरोंने जन्म ग्रहण किया । मधुसूदन विष्णुने ऋतुके अनुसार दिन रात्रिका बिभाग, पूर्व्वान्ह और अपरान्ह आदि उत्पन्न किया, उन्होंने आलोचना करके बादल और स्थावर जङ्गम जीवोंसे युक्त अखण्ड भूमण्डलकी सृष्टि की । हे भरत-श्रेष्ठ युधिष्ठिर ! अनन्तर महाभाग प्रभु मधुसूदनने फिर मुखसे अनगिनत ब्राह्मण, भुजासे असंख्य क्षत्रिय, ऊरुसे सैकड़ों वैश्य और दोनों पावोंसे बहुतसी शूद्र जाति उत्पन्न की । वह महा तपस्वी भगवान् इसी प्रकार चारों वर्णोंको स्वयं उत्पन्न करके बिधाताको सर्व्वभूतोंके अध्यक्ष पदपर अभिषिक्त किया । उन्होंनेही वेदविद्या बिधाता अमित तेजस्वी ब्रह्माको और सब भूतों तथा मातृगणोंके अध्यक्ष बिरूपाक्षकी उत्पन्न किया था । सर्व्व भूतात्मा मधुसूदनने पापात्मा पुरुषोंके शासन करनेवाले प्रेतराजको, निधिरक्षाके लिये कुबेरको और जलजन्तुओंके स्वामी बरुणको उत्पन्न किया तथा इन्द्रको सब देवताओंके अध्यक्ष पदपर नियुक्त किया । मनुष्योंको देहधारणके निमित्त जिन्हें जैसी अभिलाष थी; वे उस ही प्रकार जोवित रहते थे ; उन लोगोंको यमका भय नहीं था ।

हे भरतश्रेष्ठ ! उस समय उन लोगोंमें मैथुन धर्म्म नहीं था, संकल्पसेही सन्तान उत्पन्न होती थी । हे प्रजा नाथ ! अनन्तर त्रेतायुगमें स्त्री पुरुषोंके परस्पर स्पर्शसे सन्तान उत्पन्न होते थे, उन लोगोंमें भी मैथुन धर्म्म नहीं था । हे राजन् ! फिर द्वापरयुगमें प्रजाके बीच मैथुनधर्म्म प्रवृत्त हुआ और कलियुगमें मनुष्य इन्द्रूपसे मिलित हुए हैं । हे तात नरश्रेष्ठ कुन्तीपुत्र ! यह भगवान् ही भूतपति और सर्व्वाध्यक्ष रूपसे वर्णित हुए हैं । जो लोग गृह न बनाकर उदासीन भावसे निवास करते थे, अब उनका विषय कहता हूं सुनो । दक्षिण पथमें उत्पन्न हुए समस्त अन्ध्रक, गुह उपाधिधारी चाण्डालजाति बिशेष, पुलिन्द, शबर, चुचुक और मद्रकजातिके लोग पहिले उदासीनभावसे निवास करते थे । दूसरे जो लोग उत्तरओर उत्पन्न हुए थे, उनका भी विषय कहता हूं सुनो । यवन, काम्बोज, गान्धार, किरात और बर्व्वर जाति, ये सब पापाचारी होकर इस पृथ्वीपर भ्रमण किया करते हैं । हे नरनाथ ! इन लोगोंके धर्म्म चाण्डाल, कौए और गिद्धोंके समान हैं । हे तात भरतश्रेष्ठ ! ये लोग सत्ययुगमें इस भूमण्डलपर बिचरण नहीं करते थे, त्रेतायुगसे ये लोग बृद्धिशील हुए हैं । अनन्तर त्रेता और द्वापर युगके महाघोर सन्धिकाल उपस्थित होनेपर राजा लोग परस्पर मिलित होकर युद्ध बिग्रहमें अत्यन्त आसक्त हुए थे । हे कुरुवर ! महात्मा बिष्णु नित्यसिद्ध होनेपर भी इस ही प्रकार उत्पन्न हुए थे । सर्व्व-लोकदर्शी देवर्षि नारदने भगवान् बिष्णुके बिषयमें इस ही प्रकार कहा है । हे भरतश्रेष्ठ महाबाहु नरनाथ ! महर्षि नारदने भी श्रीकृष्णके परम नित्यत्वको माना है । यह महाबाहु सत्यबिक्रम पुण्डरीकाक्ष केशव इस ही प्रकार अचिन्तनीय हैं ; ये साधारण मनुष्य नहीं हैं ।

२०७ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ ! पहिले कौन कौनसे प्रजापति थे, और कौन कौनसे महा-

भाग प्रत्येक ऋषि किन किन दिशाओंमें वास करते थे।

भीष्म बोले, हे भरतश्रेष्ठ! इस लोकमें जो लोग प्रजापति थे और जो सब ऋषि जिन दिशाओंमें वास करते थे, यह विषय जो कि तुम मुझसे पूछते हो, उसे सुनो। एक मात्र आदि पुरुष भगवान् ब्रह्मा स्वयम्भू और सनातन हैं; उन महात्मा स्वयम्भु ब्रह्माके सात पुत्र हुए, उनका नाम मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और स्वयम्भूके समान महाभाग वशिष्ठ, ये सातो प्रजापति कहके पुराणमें वर्णित हुए हैं। इनके अनन्तर जो सब प्रजापति थे, उनका विषय कहता हूं। अत्रिवंशमें सनातन ब्रह्मयोनि भगवान् प्राचीनवर्हि उत्पन्न हुए थे, उनसे दश प्रचेता उत्पन्न हुए; दक्ष नाम प्रजापति उन दशोंके एक मात्र पुत्र हैं, लोकके बीच उनका दक्ष और कश्यप यह दो नाम कहे गये हैं। मरीचिके पुत्र कश्यप हैं, उनका दो नाम है, कोई कोई उन्हें अरिष्टनेमि और कोई कश्यप कहते हैं। जिन्होंने दिनके परिमाणसे सहस्र युग पर्य्यन्त उपासना की थी, वह वीर्य्यवान श्रीमान् राजा सोम अत्रिके औरससे पुत्र हैं। भगवान् अर्य्यमा आदि जो सब कश्यपके पुत्र है, वे सबही जगत स्रष्टा और आत्मपयिता है। हे अच्युत! शशबिन्दके दश हजार भार्य्या थीं, उन एक एक भार्य्यासे एक एक हजार पुत्र उत्पन्न हुए थे; इसही प्रकार उस महात्माके एक लाख सन्तान हुईं। उन्होंने उन पुत्रोंके अतिरिक्त दूसरे किसीको भी प्रजापति करनेकी इच्छा नहीं की। प्राचीन ब्राह्मण लोग प्रजा समूहको शशबिन्दवी कहा करते हैं; प्रजापतिके उस महावंशसे वृष्णिवंश उत्पन्न हुआ है। ये सब यशस्वी पुरुष प्रजापति रूपसे वर्णित हुए हैं। इसके अनन्तर जो सब देवता लोग त्रिभुवनके ईश्वर हैं, उनका विषय कहता हूं सुनो। भग, अंश, अर्य्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, महाबल, विवस्वान त्वष्टा; पूषा, इन्द्र और विष्णु, ये द्वादश आदित्य कश्यपके पुत्र हैं। दोनों अश्विनीकुमार नासत्य और दस्र नामसे वर्णित होते हैं, ये महात्मा अष्टम मार्त्तण्डके पुत्र हैं। पहिले वे लोग और विविध देवता लोग भी पितृगण कहके वर्णित हुए हैं। महायशस्वी श्रीमान् विश्वरूप त्वष्टाके पुत्र हैं। अज, एकपाद, अहिर्व्रध्न, विरूपाक्ष, रैवत, बहुरूप हर, सुरेश्वर, त्र्यम्बक, सावित्र, जयन्त और अपराजित पिनाकी, ये सब महाभाग पहले अष्टवसु कहके वर्णित हुए हैं। इसी प्रकार सब देवता प्रजापति मनुके पुत्र हैं; ये लोग पहिले देवता और पितृगण, इस दो प्रकारके रूपसे निर्द्दिष्ट हुए हैं सिद्ध और साध्य, इन दोनोंके बीच एक शील निबन्धन, दूसरे यौवनके कारण ऋतुगण और मरुद्गण नामसे देवताओंके आदिगण कहके गिने गये हैं। येही विश्वदेवगण और दोनों अश्विनी तनय वर्णित हुए; उनके बीच आदित्यगण क्षत्रिय, मरुद्गण वैश्य और उग्र तपस्यामें अभिनिविष्ट दोनों अश्वनीकुमार शूद्र रूपसे स्मृत हुए हैं, और यह निश्चित है, कि अङ्गिराके पुत्र देवता लोग ब्राह्मण हैं; यही सब देवताओंके चातुर्व्वर्ण्य कहे गये। जो लोग प्रातःकालमें उठकर इन सब देवताओंका नाम लेते, वे स्वकृत वा अन्यकृत सब पापोंसे छूट जाते हैं; यवक्रीत, रैभ्य, अर्व्वावसु, परावसु, उषिज, काक्षीवान् और बल, ये कई एक अंगिराके पुत्र हैं। महर्षि कण्व और वर्हिषद मेधातिथिके पुत्र हैं। हे तात! वे लोकभावन सप्तर्षि लोग पूर्व्वदिशामें निवास करते हैं। उन्मूच, विमूच, वीर्य्यवान् स्वस्त्यात्रेय, प्रमुच, दृढ़व्रत, भगवान् इध्मवाह और मित्रावरुणके पुत्र प्रतापवान अगस्त्य, ये सब ब्रह्मर्षि लोग सदा दक्षिण दिशामें वास किया करते हैं। उषङ्ग कवष, धौम्य, वीर्य्यवान् परिव्याध, महर्षि एकत, द्वित,

त्रित और अत्रिके पुत्र भगवान् निग्रहानिग्रह समर्थ सारस्वत, ये सब महात्मा पश्चिम दिशामें निवास करते हैं। आत्रेय, वसिष्ठ महर्षि कश्यप, गौतम, भरद्वाज, कुशिक पुत्र विश्वामित्र और महात्मा ऋचीकके पुत्र भगवान् जमदग्नि, ये सातो ऋषि उत्तर दिशाका आश्रय कर रहे हैं। जिस दिशामें जो लोग निवास कर रहे हैं, वे सब तीक्ष्ण तेजस्वी ऋषि लोग वर्णित हुए। ये सबही जगत्की सृष्टि करनेमें समर्थ, महात्मा और साक्षी स्वरूप हैं, इसही प्रकार ये महात्मा लोग प्रत्येक दिशाओंका आश्रय करके स्थित हैं। मनुष्य इन लोगोंका नाम लेनेसे सब पापोंसे छूट जाते हैं; ये लोग जिस जिस दिशामें निवास कर रहे हैं, मनुष्य उसही दिशाके शरणागत होनेसे सब पापोंसे मुक्त और स्वस्तिमान् होकर निज गृहमें लौटते हैं।

२०८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे सत्यपराक्रमी महाप्राज्ञ पितामह! मैं अव्यय ईश्वर श्रीकृष्णका माहात्म्य विस्तारके सहित सुननेकी इच्छा करता हूं। हे पुरुषप्रवर! श्रीकृष्णका जैसा रूप महत् तेज और जिस प्रकार इनके पूर्व्वकृत कर्म्म हैं, वह सब आप प्रकृत रूपसे वर्णन करिये। हे महाबल! भगवान्ने तिर्य्यग् योनिमें अवतार लेके किन कार्य्योंके निमित्त कैसा रूप धारण किया था, उसे भी आप वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, पहले समयमें मैंने मृगयाके निमित्त यात्रा करके मारकण्डेय मुनिके आश्रममें निवास किया था, वहां उपस्थित होके सहस्रों मुनियोंको बैठे हुए देखा। अनन्तर उन्होंने मधुपर्कसे मेरा अतिथिसत्कार किया; मैंने उनके उस सत्कारको ग्रहण करके ऋषियोंको प्रणाम किया। उस ही स्थानमें महर्षि कश्यपके जरिये चित्त प्रसन्न करनेवाली यह दिव्य कथा कही गई थी; तुम एकाग्रचित्त होकर उस कथाको सुनो। पहिले समयमें क्रोध लोभसे युक्त बलदर्पित नरक आदि सैकड़ों दानवश्रेष्ठ सब महासुर और दूसरे युद्ध-दुर्म्मद बहुतेरे दानव लोग देवताओंकी परम समृद्धि देखकर असहिष्णु हुए थे। हे राजन्! देवता और देवर्षि लोग दानवोंसे पीड़ित होकर इधर उधर स्थित होनेपर भी सुखलाभ करनेमें समर्थ नहीं हुए। देवताओंने घोररूप महाबलवान दानवोंसे परिपूरित पृथ्वीको अत्यन्त पीड़ित देखा। पृथ्वीको उस समय भारसे अत्यन्त आक्रान्त, अप्रहृष्ट और दुःखित होकर डूबती हुई देखकर अदितिनन्दन देवता लोग अत्यन्त भयभीत होकर ब्रह्माके निकट जाके यह वचन बोले, हे ब्रह्मन्! हम लोग दानवोंका दारुण पीड़न किस प्रकार सहेंगे?

स्वयम्भू ब्रह्मा देवताओंका वचन सुनके उन लोगोंसे बोले, हे देवता लोगो! मैंने इस विषयमें विधि प्रदान की है; वरके प्रभावसे बलसे मतवाले अत्यन्त मूढ़ दानव लोग देवताओंके भी अधर्षणीय वराहरूपी भगवान् अव्यक्तदर्शन विष्णुको नहीं जानते वे सब सहस्रों महाघोर अधम दानवलोग भूमिके अन्तर्गत होकर जिस स्थानमें वास कर रहे हैं, ये वराहरूपी विष्णु वेगके प्रभावसे वहां जाके उन सब दानवोंका संहार करेंगे। देवता लोग ब्रह्माका ऐसा वचन सुनके परम हर्षित हुए। अनन्तर महातेजस्वी विष्णु वराहमूर्त्ति धारण करके भूगर्भमें प्रवेश करके दितिपुत्रोंकी ओर दौड़े। कालमोहित दैत्य लोग बलपूर्व्वक सहसा इकट्ठे होकर उस अमानुषबलको देखकर स्थिरभावसे खड़े रहे। अनन्तर उन सब लोगोंने एक बारही क्रुद्ध होकर सम्मुख जाके उस वराहको धारण किया और चारों ओर खींचने लगे। हे राजन्! महावीर्य्यबलसे उन्मत्त वे सब महाकाय दानवेन्द्रगण उस समय उसका कुछ भी न कर

सके। अन्तमें वे सब दानवेन्द्रगण भयभीत और विस्मित हुए तथा सहस्र बार अपनेको संशय-युक्त समझा।

हे भरत सत्तम! अनन्तर योगसहाय योगात्मा देवोंकेदेव भगवान्ने योग अवलम्बन करके दैत्य दानवोंको चोभित करते हुए ऊंचे स्वरसे निनाद किया, उस शब्दसे सब लोक और दशों दिशा अनुनादित हुईं उस शब्दसे सब लोगोंके अन्तःकरणमें चोभ उत्पन्न हुआ; इन्द्र आदि देवता लोग अत्यन्त भयभीत हुए स्थावर जङ्गमात्मक समस्त जगत् उस शब्दसे मोहित होकर अत्यन्तही निश्चेष्ट हुआ। अनन्तर सब दानव लोग उसही शब्दसे भीत, विष्णुके तेजसे विमोहित और चेतरहित होकर गिर पड़े, वराहरूपी भगवान्ने रसातलमें जाकर भी खुरसे देवताओंके शत्रुदानवोंका मांस, मेद और अस्थियोंकी विदारण किया। वह भूतराट्, भूताचार्य्य महायोगी पद्मनाभ विष्णु उस महानादसे सदा भक्तोंके ऊपर कृपा करनेके लिये चेष्टा करते हैं, इसहीसे सनातन नामसे वर्णित हुए हैं। अनन्तर सब देवताओंने जगत्पतिसे कहा, हे देव! हे प्रभो! यह निनाद कैसा है, हम इसे जाननेमें समर्थ नहीं हैं, यह क्या शब्द है। यह किसका शब्द है, जिससे जगत् विह्वल होरहा है। सब देवता और दानव इस शब्दके प्रभावसे मोहित होरहे हैं। हे महावाहो! इतनेही समयमें वराहरूपधारी विष्णु महर्षियोंसे स्तुतियुक्त होकर रसातलसे उत्थित हुए, पितामह बोले, यह महाकाय, महाबल, महायोगी, भूतात्मा, भूत भावन, सर्व्वभूतेश्वर, आत्माके भी आत्मा, मननशील दानवारि कृष्णने मुख्य मुख्य दानवोंका वध करके सब विघ्नोंका नाश किया है; इससे तुम सब कोई स्थिर होजाओ। यह अपरिमित प्रभावयुक्त, महाद्युति महाभाग, महायोगी, भूतभावन, महात्मा पद्मनाभ दूसरेसे न होने योग्य साधु कार्य्य सिद्ध करके स्व-स्वभावसे समागत हुए हैं। हे सुरसत्तमगण! इसलिये तुम लोगोंको शोक सन्ताप अथवा भय करनेकी आवश्यकता नहीं है। येही विधि, येही प्रभाव और यही सत् चयकारक काल स्वरूप हैं; इन्हीं महानुभाव भगवान्ने सब लोकोंको धारण करते हुए शब्द किया था; सब भूतोंके आदिभूत सब लोकोंके नमस्कृत वह महावाहु पुण्डरीकाक्ष अच्युत ईश्वर यही विद्यमान हैं।

२०८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! आप मेरे समीप मोक्ष-विषयके परमयोगको वर्णन करिये। हे वक्तृवर! मैं उक्त विषयक यथार्थ रीतिसे जाननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, गुरुके सहित शिष्यका मोक्ष-वाक्य संयुक्त जो वार्त्तालाप हुआ था प्राचीन लोग उस पुराने इतिहासका इस विषयमें प्रमाण दिया करते हैं। परम मेधावी अत्यन्त सावधान किसी शिष्यने तेजस्वी सत्यसन्ध जितेन्द्रिय ऋषिसत्तम महानुभाव सुखसे बैठे हुए किसी आचार्य्य ब्राह्मणका चरण छूके हाथ जोड़के खड़ा होकर कहा। हे भगवन्! यदि आप मेरी उपासनासे प्रसन्न हुए हों, तो मुझे जो कुछ महा संशय है, मेरे समीप उस विषयकी वर्णन करना आपको उचित है। हे द्विजसत्तम! मैं किस उपादान और कौन निमित्त कारणसे उत्पन्न हुआ हूं, आप भी किस उपादान वा निमित्त कारणसे उत्पन्न हुए हैं? उस परम कारणके स्वरूपको पूर्ण रीतिसे कहिये और उपादान कारण पञ्चभूतोंके समान होने पर भी किस लिये चय और उदय विषम रूपसे दीख पड़ता है। वेद और लोकमें जो व्याप्य।व्यापक भावसे बर्त्तमान है, आप वह सब विषय प्रकृत रूपसे वर्णन करिये।

गुरु बोला, हे महाप्राज्ञ शिष्य ! सब विद्या और समस्त प्रागमोंकी जो सम्पत्ति है, जो वेदके बीच परम गुह्य भावसे वर्णित है, वह अध्यात्म विषय कहता हूं सुनो। भगवान् वासुदेव सब वेदोंके आदिभुत प्रणव हैं; वेही सत्य, ज्ञान, यज्ञ, तितिक्षा और आर्ज्जव स्वरूप हैं। वेद जाननेवाले पण्डित लोग जिस सनातन पुरुषको विष्णु कहके जानते हैं, वही सृष्टि और प्रलयके कर्त्ता अव्यक्त शाश्वत ब्रह्म हैं; उसही ब्रह्मने विष्णिवंशमें अवतार लिया है, इस विषयका इतिहास मुझसे सुनो। अपरिमित तेजसे युक्त देवदेव विष्णुका महात्म्य ब्राह्मण लोग ब्राह्मणोंको, क्षत्रिय लोग क्षत्रियोंको, वैश्य वैश्योंको और महामना शूद्र शूद्रोंको सुनावें। तुम परम कल्याणकारी कृष्णके उपाख्यानको सुननेके योग्य पात्र हो, इसलिये उसे सुनो।

हे पुरुषप्रवर ! आदि और अन्तहीन जो परम श्रेष्ठ कालचक्र है, उसे ही पण्डित लोग अक्षय, अव्यय अमृत, शाश्वत ब्रह्म चैतन्य रश्मिके जरिये सर्व्वव्यापी अन्नमय आदि पञ्च पुरुषसे श्रेष्ठ कहा करते हैं। उत्पत्ति और प्रलय लक्षण इस त्रैलोक्य चक्रारूढ़ पिपीलिकाकी भांति वह सर्व्वभूतेश्वरमें सब तरहसे वर्त्तमान हैं। उस परिणामरहित परम पुरुषने फिर सृष्टिके आरम्भमें महदादि कार्य्योंके लयस्थान प्रकृतिको निर्म्माण करके पितरगण, देवता, ऋषि, यक्ष, राक्षस, पन्नग, असुर, और मनुष्योंको उत्पन्न किया है, तथा वेदशास्त्र और शाश्वत लोक धर्म्मका विधान किया है। जैसे ऋतुकालमें पर्य्यायक्रमसे अनेक प्रकार ऋतुचिन्ह दीख पड़ते हैं, अर्थात् प्रतिवर्ष वसन्तकालमें आमके वृक्ष,ग्रीष्मकालमें मल्लिका और वर्षाके समय कदम्बके वृक्ष नियमपूर्व्वक फूलते हैं, वैसे ही युगके आरम्भमें जीवसमूह अपने अपने पूर्व्वलक्षणोंको धारण किया करते हैं, आदि युगमें काल सम्पर्कके कारण जो जो प्रकाशित होता है, लोकयात्रा विधानके लिये वही ज्ञान उत्पन्न हुआ करता है। पूर्व्वयुगमें जो कुछ था, युगके आरम्भमें महर्षियोंने पहिले स्वयम्भूकी आज्ञानुसार तपस्याके सहारे इतिहासके सहित उन्हीं सब वेदोंको प्राप्त किया था।

वेद जाननेवाले, भगवान् ब्रह्मा देव और बृहस्पतिने सब वेदाङ्गोंको जाना था; असुराचार्य्य भार्गवने जगत्के हितकर नीतिशास्त्र कहा, महर्षि नारदने गन्धर्व्वविद्या, भरद्वाजने धनुर्व्विद्या गर्गने देवर्षिचरित और कृष्णात्रेयने चिकित्सा-शास्त्र जाना था। ऋषियोंने परस्पर बिवादमान होकर जो न्याय, सांख्य, पातञ्जल, वैशेषिक, वेदान्त और मीमांसा दर्शन बनाये हैं, उनके बीच युक्ति, वेद और प्रत्यक्ष प्रमाणोंसे ऋषियोंके जरिये जो ब्रह्मवर्णित हुआ है, उसकी ही उपासना करनी चाहिये। देवता वा ऋषि लोग उस आदि कारणसे रहित परब्रह्मको नहीं जानते थे, सर्व्व शक्तिमान जगत्‌विधाता एक मात्र नारायण ही उसे जानते थे। नारायणसे ऋषियों और मुख्य मुख्य सुरासुरों तथा प्राचीन राजर्षियोंने उस दुःखराशिके महौषध स्वरूप परब्रह्मको जाना था।

जब प्रकृति पुरुषके आलोचित महदादि कार्य्योंके प्रसवोन्मुखी होती है उसके पहिले धर्म्माधर्म्म युक्त जगत् सब तरहसे वर्त्तमान रहता है। जैसे तलवत्ती आदि कारणसे एक दीपकसे सहस्रों दीपक प्रज्वलित हुआ करते हैं, वैसे ही प्रकृति पूर्व्वदृष्ट युक्त महदादि कार्य्य उत्पन्न करती है। अहङ्कारसे शब्द तन्मात्र आकाश, आकाशसे वायु; वायुसे अग्नि, अग्निसे जल और जलसे पृथ्वी उत्पन्न हुई है। ये आठो मूल प्रकृति हैं, जगत् इन सबमें ही स्थित है। पुरुषाधिष्ठित अष्टमूल प्रकृतिसे पञ्च ज्ञानइन्द्रिय पञ्चकर्म्म-इन्द्रिय आदि पञ्च विषय और एकमात्र मन उत्पन्न होता है, इन षोड़श पदार्थोंको षोड़श बिकार कहते हैं कान, त्वचा, नेत्र,

जीभ और नासिका, ये पांचो ज्ञान इन्द्रिय हैं। पद पायु, उपस्थ, हाथ और वाक्य ये पांचो कर्म्म इन्द्रिय हैं; शब्द स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, ये पांचो ज्ञानेन्द्रियके विषय हैं। चित्त इन सबमें व्यापकभावसे स्थित है और मन उन शब्द आदि समस्त विषयोंमें श्रोत्रादि रूपसे स्थित होरहा है इसे जानना योग्य है।

इस ज्ञानके विषयमें यह मनही जिह्वास्वरूप होता है और शब्द प्रयोग विषयमें मन ही वाक्यस्वरूप हुआ करता है, मन विविध इन्द्रियोंके सहित संयुक्त होकर महदादि घट पर्य्यन्त सब व्यक्त पदार्थोंका स्वरूपत्व लाभ करता है, दशों इन्द्रिय, मन और पञ्चभूत, इन षोड़श पदार्थोंको विभागके अनुसार देवता करके जाने। मनुष्य शरीरके बीच अध्यासीन ज्ञानकर्ताकी उपासना किया करते हैं। जलका कार्य्य जिह्वा, पृथ्वीका कार्य्य नासिका, आकाशका कार्य्य कान, अग्निका कार्य्य नेत्र और वायुका कार्य्य त्वचा है, इन्हें सब भूतोंमें सर्व्वदा विद्यमान जानना चाहिये। पण्डित लोग मनको सत्वका कार्य्य कहा करते हैं; सत्व प्रकृतिसे उत्पन्न हुआ है परन्तु सब भूतोंके आत्म भूत ईश्वरमें उपाधि रूपसे निवास करता है; इसलिये बुद्धिमान मनुष्य उस विषयका ज्ञान किया करते हैं। ये सब सत्व आदि पदार्थ स्थावर जङ्गमात्मक जगत्को आश्रयपूर्व्वक धारण कर रहे हैं, जो देव प्रकृतिसे भी परम श्रेष्ठ है, पण्डित लोग उसे सर्व्व प्रवृत्ति रहित कूटस्थ कहा करते हैं। शब्द आदि विषयोंसे युक्त, ज्ञानेन्द्रिय पञ्चक बुद्धि, मन, देह और प्राण इस नवद्वार पवित्र पुर आक्रमण करके जीवात्मा शयन कर रहा है, इसही कारण उसे पुरुष कहा जाता है। वह अजर और अमर है, वेद उसे मूर्त्त और अमूर्त्त, इन दोनो रूपोंसे वर्णन किया करते हैं; वह सर्व्व व्यापक और सर्व्वज्ञत्वादि गुणोंसे युक्त है। वह सूक्ष्म और सब भूतों तथा सत्वादि गुणोंका आश्रय है। उपाधिके कारण छुद्रही हो, वा महान ही होवे; पर जैसे दीपक वाह्य पदार्थोंको प्रकाशित किया करता है, ज्ञान स्वरूप पुरुषको भी सब जीवोंमें उसही प्रकार जानो। जिसके रहनेसे कान शब्द सुननेमें समर्थ होते हैं, वही सुनता और वही देखता है, यह शरीर उन शब्दादि ज्ञानका निमित्त कारण मात्र है, वही सब कर्म्मोंका कर्त्ता है। काठमें छिपी हुई अग्नि जैसे काठके काटनेसे नहीं दीखती, वैसेही शरीरमें रहनेवाली आत्माको देह विदीर्ण करनेपर भी नहीं देखा जाता। उपायके सहारे जैसे काठको मथनेसे उसमेंसे अग्नि दीख पड़ती है, वैसेही योगरूप उपायके जरिये शरीरस्थ आत्माको इस शरीरसेही देखा जा सकता है; जैसे नदियोंमें जल और सूर्य्यमण्डलमें किरण सदा संयुक्त रहती हैं, वैसे ही जीवोंके शरीर आत्माके सहित संयुक्त हैं, योगाभावसे देह सम्बन्ध विच्छिन्न नहीं होता। पञ्चइन्द्रिय युक्त स्वप्न-कालकी भांति मरनेके अनन्तर शरीर त्यागके देहान्तरमें गमन करता है; यह शास्त्र दृष्टिके सहारे मालूम हुआ करता है। जीव पहले अपने किये हुए बलवान् कर्म्मोंसे प्रेरित होकर जन्म लेता है, और कर्म्मोंसेही देहान्तरमें गमन किया करता है। जैसे मनुष्य शरीर त्यागके एक शरीरके अनन्तर दूसरा शरीर पाता है, वैसेही निज कर्म्मके अनुसार जन्म लेनेवाले दूसरे जीव भी एक शरीरसे देहान्तरमें गमन करते हैं, इसे फिर कहूंगा।

२१० अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, पण्डित लाग स्थावर जङ्गमात्मक चार प्रकारके उत्पन्न हुए जीवोंको अव्यक्तप्रभव और अव्यक्त निधन कहा करते हैं, अर्थात् जीवोंकी देहान्तर प्राप्ति और पूर्व्वदेहका वियाग गृहसे गृहान्तरमें गमनकी तरह विस्पष्ट

नहीं है। आत्मा अव्यक्त है, मन उसही अव्यक्त आत्माका स्वरूप है, अर्थात् दूसरे चन्द्रमाकी भांति आत्मामेंही कल्पित है, इससे मनका लक्षण भी विस्पष्ट नहीं है; इसलिये यह जानना चाहिये, कि मन कल्पित उत्पत्ति निधन और अव्यक्त है। जैसे अश्वत्थ बीजके अन्तर्गत अत्यन्त छोटे अंशके बीच बृहत् वृक्ष अन्तर्भूत रहता है। फिर कुछ समयके लिये वह व्यक्त रूपसे दीखता है, अव्यक्तसे दृश्य-वस्तु मात्रका सम्भव भी वैसाही है। जैसे अचेतन लोहा अयस्कान्त अर्थात् चुम्बक पत्थरकी ओर दौड़ता है, वैसेही पूर्व्व संस्कारके कारण कर्म्म-जनित धर्म्माधर्म्म तथा अज्ञान आदि भी अभि-व्यक्त शरीरके अनुगत हुआ करते हैं। प्रागुक्त न्यायके अनुसार अविद्याजनित काम कर्म्मवा-सना देह और इन्द्रिय आदि अचेतन पदार्थ सब तरहसे संहत होकर कारण स्वरूप चेतयिता परब्रह्मका कारणत्व लक्ष्य किया करते हैं, और कारण रूप परब्रह्मके निकटसे सत्व, चित्त और आनन्दत्व आदि आत्मधर्म्म सब तरहसे शरीरमें सङ्गत होते अर्थात् देहान्तर प्राप्ति होनेपर आत्मानात्म गुणसमूह पहलेकी भांति संहत हुआ करते हैं, भूमि, आकाश, स्वर्ग, भूतगण, सब प्राण, शम और काम आदि अथवा इन सबके अतिरिक्त दूसरे कोई पदार्थ जगत्की उत्पत्तिके पहिले कुछ भी न थे, अन्तमें भी अज्ञान उपाधि संहत जीवमें सङ्गत होनेमें समर्थ न होंगे अर्थात् भूमि आदि सब पदार्थ नित्यसिद्ध जीवके सहित कभी सङ्गत नहीं हो सकते। अनादि नित्य सर्व्वगत मनके कारण अनिर्व्वचनीय आत्माको जो मनुष्य पशु आदि शरीरोंमें तदात्म प्रतीति हुआ करती है, वह माया कार्य्य कहके वेदमें वर्णित है। जीव पूर्व्व वासनाके वशमें होकर कर्म्ममें प्रवृत्त होता है, वासनासे कर्म्म और कर्म्मसे वासना, यह जो सदा प्रवहमान अनादिनिधन महत् चक्र संग्र-हके जरिये वर्त्तमान है, जीव स्वरूप आत्मा वासना समूहमें संयुक्त होकर उन कार्य्योंको संग्रह कर रहा है। अव्यक्त बुद्धिवासनासमूह जिसकी नाभी अर्थात् नाभीकी भांति अन्तरङ्ग, व्यक्त देहेन्द्रिय आदि जिसके अर अर्थात् नाभी और नेमिके सन्धानकारक काष्ठोंकी तरह वहि-रङ्ग, ज्ञात क्रिया विकार आदि जिसकी नेमि अर्थात् नेमिकी भांति व्यापक, रञ्जनात्मक रजोगुण जिसका अक्ष अर्थात् पहियेकी तरह चलनेवाला है, वही जन्म मरण प्रवाहरूप संघातचक्र क्षेत्रज्ञके जरिये अधिष्ठित होकर अविचलित रूपसे वर्त्तमान है। जैसे तिलको पेरनेवाले तेली लोग प्रीतिपूर्व्वक तिलोंको चक्रके बीच आक्रमें दुःख सब भोग रजोगुणके आक्रमण निवन्धनसे इस संघात चक्रमण करके पेरते हैं, वैसेही अज्ञानसे समस्त जगज्जनोंको निष्पीड़न कर रहा है। वह संघातस्वरूप चक्र फल तृष्णाके कारण अभिमानसे परिगृहीत होकर कर्म्म करता है, कार्य्य और कारण, इन दोनोंके संयोग उपस्थित होनेसे वह कार्य्य ही कारण रूपसे समर्थित होता है। रस्सीमें सर्पभ्रमकी भांति कार्य्यकारणकी विषमसत्तासे कारणमें कार्य्य और कार्य्यमें कारण प्रवेश संघ-टित नहीं होता। कार्य्योंके अभिव्यक्त निमित्त अदृष्टादि सहाययुक्त काल ही हेतु रूपसे समर्थ हुआ करता है। कर्म्मयुक्त पहले कही हुई अष्ट प्रकृति और षोड़श विकार पुरुषके अधि-ष्ठानसे सदा संहत हुए रहते हैं। जैसे वायुके जरिये धूलि उड़ती है, वैसे ही पूर्व्व देहसे विभ्रष्ट जीव, राजस वा तामस संस्कारयुक्त और कर्म्म तथा पूर्व्व प्रज्ञासे संयुक्त होकर क्षेत्रज्ञको लक्ष्य करते हुए लोकान्तरमें गमन किया करता है। जैसे निरजस्क वायु सरजस्क नहीं होता, रज, सत, तमोगुणसे देहेन्द्रिय भूत सूक्ष्म भावनिवह पूर्व्वोक्त कर्म्म और पूर्व्व प्रज्ञा आदि आत्माको स्पर्श करनेमें समर्थ नहीं होतीं। महान् आत्म-

कर्त्तं कभी उक्त सब भाव स्पष्ट नहीं होते अर्थात् जैसे रजोहीन वायुमें सरजस्कत्वकी भ्रान्ति हुआ करती है, आत्मामें देह आदि सङ्ग भी उसही प्रकार भ्रान्तिके कार्य्य हैं। विद्वान् पुरुष वायु और धूलिके पृथक् भावकी तरह जीव वा पृथक् भाव जानकर भी देहादिके आत्माके सहित आत्माके तदात्म ज्ञानके अभ्यासके कारण शुद्ध स्वरूप आत्मको जाननेमें समर्थ नहीं हैं। आत्मा विभु होकर भी स्वभावमें वह इत्यादि रूपसे उत्पन्न हुए सब सन्देह "पुरुष असङ्ग" इत्यादि मन्त्र वर्णसे विच्छिन्न आत्मा देह तिरिक्त है। इसे जानके भी साम्राज्य कामी राजा जैसे राजसूय यज्ञके जरिये शरीरमें कृत्रिम मूर्द्धाभिषिक्त लक्षणकी उपेक्षा करते हैं, वैसेही मुमुक्षु मनुष्य विद्या साधनके समय कर्त्तृत्वादि विशेषणकी अपेक्षा करते हैं, किन्तु समय पर उसे परित्याग किया करते हैं। जैसे अग्निमें जले हुए बीज फिर नहीं जमते, वैसेही अविद्या आदि क्लेशोंके ज्ञान रूपी अग्निसे जलनेपर आत्मा फिर शरीर ग्रहण नहीं करती।

२११ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, जिस प्रकार कर्म्मनिष्ठ मनुष्योंको प्रवृत्ति लक्षण धर्म्म अभिलषित है, वैसेही विज्ञाननिष्ठ पुरुषोंको विज्ञानके अतिरिक्त दूसरे विषयोंमें रुचि नहीं होती। वेदोक्त अग्निहोत्र आदि कार्य्य और शम, दम आदि विषयोंमें निष्ठावान् वेद विद्याशाली पुरुष अत्यन्त दुर्लभ हैं, अत्यन्त बुद्धिमान् पुरुष महत् प्रयोजनके कारण स्वर्ग और मोक्ष, इन दोनोंके बीच श्रेष्ठ मोक्षकीही कामना किया करते हैं। कर्म्मत्यागरूप व्यवहार साधुओंके आचरित कहके गर्हित नहीं है, निवृत्ति लक्षणवाली बुद्धिको अवलम्बन करनेसे मनुष्य मोक्ष पाते हैं। शरीराभिमानी मनुष्य मोहके कारण रजोगुण और तमोगुण जनित क्रोध लोभ आदिके सहित संयुक्त होकर सब विषयोंको ग्रहण किया करता है; इसलिये जो लोग शरीरके सङ्ग सम्बन्धकी अभिलाष करें उन्हें अशुद्ध आचरण करना उचित नहीं है। कर्म्मके जरिये आत्मज्ञानका द्वार बनाते हुए मनुष्य कर्म्म जनित स्वर्ग आदि शुभ लोकोंके सुख सम्भोगको स्वीकार न करे। जैसे लोहमिश्रित पाकहीन सुवर्ण शोभित नहीं होता, वैसेही जिस पुरुषने राग आदि दोषोंको जय नहीं किया, उसमें विज्ञान प्रकाशित नहीं होता। जिस पुरुषने धर्म्मपथको अवलम्बन करके काम क्रोधका अनुसरण करते हुए लोभके वशमें होकर अधर्म्म आचरण करता है, वह मूलके सहित विनष्ट होता है, इसलिये धर्म्मपथको कारण अवलम्बन करनेवाले मनुष्य रागाधिक्यके शब्द स्पर्श आदि विषयोंमें आसक्त न होवें। क्रोध, हर्ष और विषाद, रज, सत और तमोगुणसे उत्पन्न हुआ करते हैं; सत, रज और तमोगुणके कार्य्यभूत पञ्चभूतात्मक शरीरमें जीव किसकी क्या कहके स्तुति करेगा। मूढ़ लोगही स्पर्श, रूप, रस आदि विषयोंमें आसक्त हुआ करते हैं, वे उलटी बुद्धिके कारण देहको पृथ्वीका विकार नहीं समझते। जैसे महीमय गृह मृत्तिकासे लिप्त होता है, वैसेही यह पार्थिव शरीर मट्टीके विकार अन्नादिका उपयोग करके जीवित रहता है। मधु, तेल, दूध, घृत अनेक प्रकारके मांस, नमक, गुड़ अनेक तरहके धान्य और फल मूल सजल मृत्तिकाके विकार मात्र हैं। जैसे कान्तारवासी सन्नग्रासी मिष्टान्नादिके भोजनमें अनुराग न करके देहयात्रा निर्व्वाहके निमित्त अस्वादिष्ट ग्राम्य आहार किया करता है, वैसेही संसार कान्तारवासी मनुष्य परिश्रममें तत्पर होकर वेद आदि श्रवण निर्व्वाहके निमित्त रोगीके औषध सेवन

करनेकी तरह आहार करे, इन्द्रियोंकी प्रीति-करी वस्तुको भोजन करनेमें अनुरक्त न होवे। यथार्थ वचन, अन्तर्वाह्य शौच, सरलता, वैराग्य, अध्ययनजनित तेज, मनको जय करनेमें पराक्रम, सन्तोष, क्षमा, वेद सुननेसे बुद्धि और मनके जरिये क्रियमाण साधु और असाधु आलोचना रूपी तपस्याके सहारे सब विषयमय भावोंको अवलोकन करके उदार चित्त होकर शान्तिकी इच्छा करते हुए इन्द्रियोंको संयत करे। सब जन्तु सत, रज और तमोगुणसे मोहित होके अज्ञानके वशमें होकर चक्रकी तरह भ्रमण किया करते हैं; इसलिये अज्ञान सम्भव दोषोंकी पूर्ण रीतिसे परीक्षा करके अज्ञान प्रभव दुःख अहंकारको परित्याग करे। सब महाभूत, इन्द्रियां, सत, रज, तम, गुण, जीवके सहित तीनो लोक और कर्म्म अहंकारमें प्रतिष्ठित हैं, अर्थात् ये सब अहंकार-कल्पित हैं। जैसे इस लोकमें नियमित काल ऋतुगुणको प्रदर्शित करता है, वैसेही अहंकारको भी भूतगुणमें कर्म्म प्रवर्त्तक जानो। अहंकारकी तरह अप्रकाश अज्ञान सम्भव तमोगुण सम्मोहजनक, सत्वगुण प्रीति जनक और रजोगुण दुःखजनक है, इसी प्रकार तीनों गुणोंको जानना योग्य है। सत, रज और तमोगुणके कार्य्यभूत विशेष गुणोंको सुनो। प्रमाद, हर्ष-जनित प्रीति, निःसन्देह, धृति और स्मृत, इन सबको सतोगुण जाने; और काम, क्रोध, प्रमाद, लोभ, मोह भय, क्लम, विषाद, शोक अनुराग, अभिमान, दर्प, अनार्य्यता, इन्हें राजस और तामस गुण जानना चाहिये। इसही प्रकार दोषोंके गौरव और लाघवकी परीक्षा करके अपनेमें इनके बीच कौन कौनसे दोष हैं, कौन कौन दोष नष्ट हुए हैं और कौनकौनसे दोष बाकी हैं, उन्हें एक एक करके सदा आलोचना करे।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! प्राचीन मुमुक्षु मनुष्योंने किन किन दोषोंको मनसे परित्याग किया था, किन किन दोषोंकी बुद्धि-बलसे शिथिल किया था; कौन कौनसे दोष अपरिहार्य्य हैं, कौन कौनसे दोष उपस्थित होकर भी निष्फल होते हैं, और विद्वान् पुरुष किन किन दोषोंके बलाबलकी बुद्धि और युक्तिके सहारे आलोचना करें? इस विषयमें मुझे सन्देह उत्पन्न हुआ है, इसलिये आप मेरे समीप उस विषयको वर्णन करिये।

भीष्म बोले, शुद्ध चित्तवाले मनुष्य मूलच्छेदनके सहित दोषोंका नाश करें। जैसे वास्यधारा लोहनिगड़को काटके स्वयं विनष्ट होती है, वैसेही ध्यान संस्कृता बुद्धि सहज तामस दोषोंसे उत्पन्न हुई वस्तु मात्रकाही विनाश करते हुए स्वयं नष्ट हुआ करती है। राजस, तामस और कामरहित शुद्धात्मक, सत्व, ये सब गुण शरीरधारियोंके देह-प्राप्ति विषयमें बीज स्वरूप हैं; परन्तु जितचित्त लोगोंको ब्रह्मप्राप्तिका उपाय सत्वमात्र है; इसलिये चित्त विजयी मनुष्योंको रजोगुण और तमोगुण त्यागना उचित है। रजोगुण और तमोगुणसे निर्मुक्त बुद्धिही निर्म्मलताको प्राप्त होती है अथवा बुद्धि वशीकरण निमित्त विहित मन्त्रयुक्त यज्ञादि कर्म्मोंको कोई कोई दुष्कृति कहा करते हैं, अर्थात् यज्ञादि कर्म्मोंमें जीवहिंसा रहनेसे वह दुरदृष्ट विधायक कहके किसी किसी मतावलम्बी मनुष्योंने उसे निन्दित कार्य्य रूपसे गिना है, यथार्थमें वे मन्त्रयुक्त कार्य्यही वैराग्यके निमित्त हुआ करते हैं और शुद्ध धर्म्म स्वरूप शम दम आदिकी रक्षाके विषयमें यज्ञादिही धर्म्म रूपसे विहित है; यज्ञादिके अतिरिक्त पशुहिंसाही अनर्थका कारण हुआ करती है, विधि विहित हिंसामें वैसी अनर्थ हेतुता न रहनेपर भी यदि हिंसासे कुछ बुराई उत्पन्न हो, तो वह सामान्य प्रायश्चित्तसे दूर की जाती है। जिसका यज्ञ आदिकोंसे बहुतसा पुण्यसञ्चय हुआ है, उसका थोड़ा पाप

प्राय: उससे दूर हो सकता है। सुखसमुद्रमें मग्न मनुष्य अल्पदुःख सहनेमें अवश्यही समर्थ हुआ करते हैं। हिंसाविहारमें सदा अनुरक्त तन्द्रा और निद्रायुक्त मनुष्य रजोगुणके जरिये अर्थ-युक्त कार्य्योंको प्राप्त करते और समस्त कामोंको सेवा करते तथा तमोगुणके सहारे लोभयुक्त क्रोधज कार्य्योंको सेवन किया करते हैं। सतो-गुण अवलम्बी श्रद्धा और विद्यायुक्त पवित्रचि-त्तवाले श्रीमान् मनुष्य बुद्धिसे सात्विक भावकी आलोचना किया करते हैं; इसलिये वैदिक कर्म्मोंमें काम, क्रोध आदिके हेतुभूत राजस और तामस भाव परित्याग हैं, और सात्विक भाव अवश्य सेवन करने योग्य हैं।

२१२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे भरतश्रेष्ठ! रज और तमो-गुणसे आत्मासे भिन्न आत्मज्ञान स्वरूप मोह उत्पन्न होता है, मोहसे क्रोध, लोभ, भय और दर्प प्रकट होते हैं, इन सबको नष्ट करतेही मनुष्योंका अन्तःकरण शुद्ध होता है। प्राचीन लोग अविनाशी ह्रासहीन सर्व्वाश्रय देवसत्तम पञ्चकोशातीत अव्यक्त विभु परमात्माको विष्णु कहके जानते थे, अब भी शुद्धचित्तवाले पुरुष उसे वैसाही जानते हैं। उसही विष्णुकी मायासे जिनकी इन्द्रियां विकृत हुई हैं, वे सब मनुष्य ज्ञान भ्रष्ट हैं; इसलिये कर्त्तव्याकर्त्तव्य विवेकसे रहित होकर बुद्धिकी विपरीततासे विक्षिप्त-चित्त होते हैं; विक्षिप्तचित्तता क्रोधका धर्म्म है; क्रोधसे काम उत्पन्न होता है, कामसे धीरे धीरे लोभ, मोह अभिमान, उच्छृङ्खलता और अहंकार प्राप्त होता है अहंकारसे जन-नादि सब कार्य्य स्वीकार किये जाते हैं, जन-नादि क्रियासे स्नेह सम्बन्ध उत्पन्न होता है, स्नेह होनेसे ही अन्तमें शोक उत्पन्न हुआ करता है और जन्म मरण लक्षण सुख दुःख कार्य्यका आरम्भ होता है। जन्मके कारण शुक्र शोणितसे उत्पन्न पुरीष, मूत्र, क्लेदयुक्त शोणित समूहमें आविल गर्भवास हुआ करता है। उस समय जीव तृष्णामें फंसके और क्रोध आदिसे बद्ध होकर उससे पार होनेके लिये योषितगणको संसार पटका कारण समझता है।

स्त्रियां स्वाभाविक ही सन्तानोत्पत्तिके क्षेत्रभूत हैं पुरुष क्षेत्रज्ञ हैं, इससे मनुष्य यत्न-पूर्व्वक स्त्रियोंका संसर्ग परित्याग करे। शत्रुको मारनेके लिये मन्त्रमयी शक्तिकी तरह घोर-रूपिणी ये स्त्रियेंही मूर्ख लोगोंको मोहित करती हैं, इन्द्रियोंके जरिये कल्पित यह सना-तनी मूर्त्ति मृत्तिकाके बीच घड़ेकी भांति सूक्ष्म-रूपसे रजोगुणमें अन्तर्हित होरही है; इस लिये तृष्णात्मक रागरूप बीजसे सब जन्तु उत्पन्न होते हैं। जैसे पुरुष स्वदेज, मनुष्य संस्कारहित अनात्मसुकजातीय कीटोंको परि-त्याग किया करते हैं, वैसे ही मनुष्य नामधारी अनात्म, सुतसंज्ञक कीड़ोंको परित्याग करे। रेत और स्वेदरूप स्नेह हेतुसे स्वभाव वा कर्म्म योग निबन्धनसे जन्तुगण देहसे उत्पन्न होते हैं, बुद्धिमान पुरुष उनकी उपेक्षा करे। प्रवृत्ति और प्रकाशात्मक रजोगुण सतोगुण अज्ञाना-त्मक तमोगुणमें लीन हुआ करते हैं, उसही अज्ञानका निवासस्थल ज्ञानमें अज्ञान अध्यस्त होकर बुद्धि और अहङ्कारका व्यापक होता है। बुद्धिमान लोग ज्ञानमें अध्यस्त उस अज्ञानको ही देहधारियोंका बीज कहा करते हैं और उस बीजका ही नाम देही है वह देही कालके अनुसार कर्म्मसे इस संसारमें सब प्रकारसे वर्त्त-मान है।

जैसे जीव सपनेमें देहधारीकी भांति मनही मन क्रीड़ा करता है, वैसेही कर्म्म गर्भगुणके जरिये जननीके जठरमें क्रीड़ा करता है। मांस-पिण्डमय शरीरमें जीव प्रकट होके पूर्व्ववासनासे जिन जिन विषयोंको धारण करता है, रागयुक्त

चित्तसे अहङ्कारके जरिये उनकी उन्हीं विषयोंकी ग्रहण करनेवाली इन्द्रियां उत्पन्न होती हैं। आश्रमरूपसे उत्पन्न हुए जीवके शब्दवासनाके कारण श्रवणेन्द्रियरूप वासनासे दर्शन इन्द्रिय, गन्ध ग्रहणकी इच्छासे घ्राणेन्द्रिय और स्पर्श वासनासे त्वगिन्द्रिय उत्पन्न होती है, और जीवकी देहयात्रा निर्व्वाहके निमित्त प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान, ये पञ्चवायु शरीरको आश्रय करती हैं। मनुष्य शरीर और मानस दुःखके आदि, मध्य और अन्तके सहित पूरी तरहसे निष्पन्न श्रोत्रादि युक्त शरीरसे पूरित होकर जन्म ग्रहण किया करता है। गर्भमें देह और इन्द्रिय आदिका अङ्गीकार तथा उत्पन्न होनेके अनन्तर अभिमानसे देहकी तरह दुःखकी वृद्धि होती है, और मरनेके अनन्तर भी दुःखवर्द्धित हुआ करता है। इन सब कारणोंसे दुःखका निरोध करना उचित है जो दुःखको रोकना जानते हैं, वे मुक्त होते हैं।

जरीगुणसे ही इन्द्रियोंकी उत्पत्ति और प्रलय हुआ करती है अर्थात् रजोरूप प्रवृत्ति निरोधके जरिये इन्द्रिय-निरोधके कारण दुःखकी शान्ति होती है। विद्वान् पुरुष शास्त्र दृष्टिसे विधिपूर्व्वक इसकी परीक्षा करके सन्सारमें विचरें। ज्ञान इन्द्रिय सब इन्द्रियोंके विषयोंको प्राप्त होनेपर भी तृष्णारहित पुरुषके निकट नहीं जा सकती। इन्द्रियोंके क्षीण होनेपर जीव फिर देह सन्सर्ग ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं होता।

२१२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे राजन्! मैं शास्त्र दर्शनके सहारे यथा क्रमसे इन्द्रिय जय विषयका उपाय कहूंगा, उसे जानके मनुष्य दम आदिका अनुष्ठान करनेसे परम गति पावेंगे। सब जीवोंके बीच मनुष्यको श्रेष्ठ कहा जाता है, मनुष्योंके बीच ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, द्विजोंके बीच मन्त्र जाननेवाले ब्राह्मणको श्रेष्ठ कहते हैं, वेदशास्त्र जाननेवाले ब्राह्मणोंने सर्व्व भूतोंके आत्मभूत सर्व्वज्ञ सर्व्वदर्शी और यथार्थ वस्तुके निश्चयको जाना है, इसीसे वे सबसे श्रेष्ठ है। जैसे नेत्रहीन मनुष्य अकेले अत्यन्त क्लेश पाता है, वैसेही ज्ञानहीन मनुष्य भी इस सन्सारमें अनेक दुःख पाते हैं। इसलिये ब्रह्मवित् पुरुष ही सबसे श्रेष्ठ हैं। धर्म्मकी इच्छा करनेवाले मनुष्य शास्त्रके अनुसार इष्टपूर्त्त आदि धर्म्मोंकी उपासना किया करते हैं, परन्तु ये लोग इन सब धर्म्मोंके फल स्वरूप मोक्षाख्या निरतिशय धर्म्मके अतिरिक्त पीछे कहे हुए गुणोंकी उपासना नहीं करते, धर्म्मज्ञ लोग प्रवृत्ति निवृत्ति स्वरूप सब धर्म्मोंमेंही वा .य शरीर और मनकी पवित्रता, क्षमा, सत्य, धृति और स्मृति, इन सबको शुभ गुण कहा करते हैं। ब्रह्मचर्य्य जोकि ब्रह्मका रूप कहके स्मृत हुआ है, वही सब धर्म्मोंसे श्रेष्ठ है; क्योंकि मनुष्य उससे परम गति पाता है। जो पञ्चप्राण मन, बुद्धि और दशो इन्द्रिय इस सत्तरह अवयवात्मक लिङ्ग शरीरके संयोगसे रहित है, जो शब्द और स्पर्शहीन है, जिसे कानसे सुना नहीं जाता, और नेत्रसे देखा नहीं जाता, वही शुद्ध अनुभव स्वरूप परब्रह्म है; निर्व्विकल्प अवस्थाके सहारे उस परब्रह्मको जान सकते हैं। और वाक्शक्ति जिसे कहनेमें समर्थ नहीं है, जो विषयेन्द्रियोंसे रहित होकर केवल मनमें निवास करता है, वह पाप स्पर्शसे रहित सविकल्पक अवस्थाके सहारे जानने योग्य ब्रह्मको श्रवण मनन युक्त बुद्धिसे निश्चय करे। जो पूर्ण रीतिसे ब्रह्मचर्य्यकर सकते हैं, वे मोक्ष लाभ करते हैं, मध्यम भावसे ब्रह्मचर्य्य करनेवाले मनुष्य सत्य लोकमें गमन करते हैं और जो लोग कनीयसी वृत्ति अवलम्बन करते हैं; वे ब्राह्मण विद्वान् होते हैं। ब्रह्मचर्य्य अत्यन्त दुष्कर व्रत है, इसलिये उस विषयमें जो उपाय

है वह मेरे समीप सुनो। ब्रह्मचारी ब्राह्मण उत्पन्न और सम्वर्द्धित काम, क्रोध आदिको निग्रह करे; योषित सम्बन्धीय कथाको न सुने, वस्त्र हीन स्त्रियोंको ओर न देखे, स्त्रियोंके तनिक भी दृष्टि पथको अतिथि होनेपर अजितेन्द्रिय मनुष्योंके अन्तःकरणमें राग उत्पन्न हुआ करता है। स्त्रियोंके विषयमें अनुराग उत्पन्न होनेपर कृच्छ्रव्रतका आचरण करे अर्थात् तीन दिन सबेरे, तीन दिन सामको और तीन दिन अयाचित भोजन करे; फिर तीन दिन तक, अनाहारी रहे; तीन दिन जलके बीच प्रविष्ट करे। सपनेमें यदि वीर्य्य स्खलित हो, तो जलमें डूबके मनहो मन तीन बार अघमर्षण मन्त्रका जप करे। बुद्धिमान् ब्रह्मचारी इसी प्रकार ज्ञानयुक्त श्रेष्ठ मनके जरिये अन्तर्भूत रजोमय पापोंको एकबारही जला दे। जैसे शरीरके भीतर मलवाहिनी नाड़ी दृढ़रूपसे बन्धी है, वैसेही शरीरके बीच आत्माको देहबन्धनसे दृढ़बद्ध जाने। सब रस नाड़ियोंके जरिये मनुष्योंके बात पित्त, कफ, रक्त, त्वचा, मांस, नसें, हड्डी और मज्जायुक्त देहको तृप्ति करते हैं इस शरीरमें पञ्चइन्द्रियोंके निज निज विषयोंको ग्रहण करनेवाली दश नाड़ी हैं, उनसे दूसरी सहस्रों नाड़ियोंका सम्बन्ध है। जैसे वर्षाकालमें नदियां समुद्रको पूर्ण करती हैं, वैसे ही ये सब रसरूपी जलसे युक्त नाड़ीरूपी नदियां देह समुद्रको तृप्त किया करती हैं। हृदयके बीच एक मनोवहा नाड़ी है, वह नाड़ी मनुष्योंके सर्व्वशरीरसे संकल्पजनित शुक्रको चलाकर उपस्थको ओर लाती है। सब शरीरको सन्तापित करनेवाली नाड़ियां उस मनोवहा नाड़ीके अनुगत होकर तैजस गुणको ढोती हुई दोनों नेत्रोंके निकटवर्त्ती होती हैं। जैसे दूधके बीच स्थित मक्खन मथानीसे मथा जाता है, वैसेही देहके सङ्कल्प और इन्द्रिय जनित स्त्रियोंके दर्शन तथा स्पर्शनसे शुक्र मथित हुआ करता है। सपनेमें योषित-संग न रहने पर भी जब मन स्त्री विषयक संकल्पसे अनुराग लाभ करता है, तब मनोवहा नाड़ीके जरिये देहसे संकल्पके कारण शुक्र झरने लगता है। महर्षि अत्रि भगवान् उस शुक्रके उत्पत्ति विषयको विशेषरूपसे जानते हैं; अन्न रस, मनोवहा नाड़ी और संकल्प, ये तीनों शुक्रके बीज हैं, और इन्द्र इनका अधिष्ठाता है, इसही निमित्त इन्हें इन्द्रिय कहते हैं। जो लोग जीवोंके शुक्रके उद्रेकके कारण अनुलोम और प्रतिलोम गमनसे सङ्करकारिणी गतिका विषय विचार करते हैं, वे विचारपूर्व्वक विराग और वासना हीन होकर पुनर्जन्म नहीं पाते। जो लोग शरीरके निर्व्वाहके लिये कर्म्म किया करते हैं, वे मनके सहारेही सुषुम्ना नाड़ी मार्गसे योगबलसे तीनों गुणोंकी समता लाभ करके अन्तकालमें जीवन परित्याग करके मुक्त होते हैं। विश्वासमय मनका ज्ञान होगा क्यों कि मनही सब विषयाकारसे जन्म ग्रहण करता है। महात्माओंके प्रणव मन्त्रके उपासना-सिद्ध मन नित्य रजोगुण रहित और ज्योतिष्मान् है; इसलिये उस मनके विनाशके लिये पाप रहित निवृत्त लक्षण कर्म्मका अनुष्ठान करना उचित है। इस लोकमें रजोगुण और तमोगुणको परित्याग करनेसे मनुष्य इच्छानुसार गति लाभ किया करते हैं, तरुण अवस्थामें जो ज्ञान प्राप्त हुआ है, वह जरा अवस्थामें निर्व्वल होजाता है, जो कच्चबुद्धिवाले मनुष्य कालक्रमसे संकल्पको संहार करते हैं, वे दुर्गम मार्गको भांति देहेन्द्रिय बन्धनको अतिक्रम करके दोष दर्शनके अनुसार उसे परित्याग कर अमृत भोग किया करते हैं।

२१४ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, दुःख दायक इन्द्रिय विषयोंमें अनुरक्त मनुष्य अवसन्न हुआ करते हैं, और जो

सब महात्मा उस विषयमें अनासक्त रहते हैं, वे परम गति पाते है; बुद्धिमान् मनुष्य सब लोगोंको जन्म, मृत्यु, जरा, दुःख और आधि-व्याधिसे युक्त देखकर मोक्ष साधनमें यत्नवान होवें। ज्ञानवान् मनुष्य मन, वचन और शरीरसे पवित्र रहके अहंकार रहित, प्रशान्त और निरपेक्ष होकर भिक्षा करते हुए अनायासही विचरे। जीवोंके ऊपर दयाके कारण यदि मनके बन्धनको देखें, तो जगत्को कर्म्मफल भोगका निमित्त जानके उस विषयमें भी उपेक्षा करें।

जो कुछ पुण्य वा पापकर्म्म किया जाता है, उसकाही फल भोग करना पड़ता है; इस-लिये मन, वचन और कर्म्मसे शुभ कर्म्मोंको सिद्ध करे। अहिंसा, सत्य वचन, सर्व्व भूतोंके विषयमें सरल व्यवहार क्षमा और सावधानता, ये सब जिनमें विद्यमान हैं, वेही सुखी होते हैं, इससे शास्त्रालोचनासे पवित्र बुद्धिके जरिये मन स्थिर करके सर्व्वभूतोंमें धारणा करे। जो सब प्राणियोंके सुखदायक इस अहिंसा आदि परम धर्म्मको दुःख रहित जानते हैं, वे सर्व्वज्ञ पुरुषही सुखी होते हैं; इसलिये शास्त्रसे शुद्ध हुई बुद्धिके जरिये मनको स्थिर करके सर्व्वभूतोंमें धारणा करे; दूसरेके अनिष्टका विचार न करे, अपने अयोग्य राज्य आदिकी अभिलाषा न करे, नष्ट वा भावी स्त्री पुत्रादिके लिये चिन्ता न करे; अव्यर्थ प्रयत्नके सहित मनको ज्ञान साधन और श्रवण मनन आदि विषयोंमें लगावे। वेदान्त वाक्य सुनने और अमोघ परिश्रमके सहारे वही मन उस समय आत्मस्वरूपके निकटवर्त्ती होगा। सत्य वचन कहनेकी अभिलाषा करनेवाले सूक्ष्मदर्शी पुरुष हिंसा रहित अप-वादहीन सत्य वचन कहें। अविक्षिप्त चित्तवाले पुरुषोंको शठता और निठुरता त्यागके अनृशंस वा पिशुनतारहित सत्य वचन कहना भी उचित है। सब ऐहिक विषय वचनसे ही बद्ध हैं, वैराग्यके कारण यदि कुछ कहना पड़े, तो प्रसन्न मन और बुद्धिके जरिये अपने हिंसा आदिक तामस कर्म्मोंको प्रकाश करे, क्यों कि पुण्य वा पाप निज मुखसे प्रकाशित करनेसे नष्ट हुआ करते हैं। मनुष्य प्रवृत्ति परतन्त्र इन्द्रियोंके जरिये कर्म्ममें प्रवृत्त होनेपर इस लोकमें महा दुःख पाकर अन्त समय नरकमें गमन करते हैं; इसलिये मन, वचन और शरीरसे जिस प्रकार आत्माकी धीरज हो वैसा ही आचरण करे। जैसे चुराये हुए मांसभार ढोनेवाले चोर जानेके मार्गोंको राजपुरुषोंके जरिये रुकनेकी आशङ्कासे मांसके बोझेको त्यागके प्रतिकूल दिशामें गमन करके बन्धनसे अपनी रक्षा करते हैं, वैसेही मूर्ख मनुष्य कर्म्म-भार ढोते हुए कामादिके सम्मुख होकर संसार भयसे कामादिको त्यागनेपर बन्धनसे छूटते हैं। जैसे चोर लोग चोरीकी वस्तुओंको परित्याग करके बाधारहित दिशामें गमन करते हैं, वैसे ही मनुष्य रजोगुण और तमोगुणके सब कार्य्योंको त्यागके सुखलाभ किया करते हैं। जो चेष्टारहित, सर्व्वसङ्ग विमुक्त, निर्ज्जन स्थानमें बास करनेवाले, थोड़ा भोजन करनेवाले, तपस्वी और संयतेन्द्रिय हैं, ज्ञानसे जिनके सब क्लेश भस्म होगये हैं, जो योगाङ्गोंके अनुष्ठान विषयमें अनुरक्त हैं, वेही बुद्धिमान् मनुष्य चित्त वृत्ति निरोधके जरिये अवश्यही परम पद पाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। धैर्य्यशाली बुद्धि-मान् मनुष्य "मैं ब्रह्म हूं" इस वचनके निमित्त बुद्धिवृत्तको निःसन्देह रूपसे निग्रह करे, बुद्धिके जरिये संकल्पात्मक मन और मनसे मनरूपी शब्दादि विषयोंको निग्रह करनेमें यत्नवान होवे; और जो इन्द्रियोंको निग्रहीत तथा मनको वशमें करता है, इन्द्रियां उसके समीप प्रकाशित होतीं और आनन्दित होके उस योगीश्वरमें प्रवेश करती है। इन सब इन्द्रियोंके संङ्ग जिसका मन संयुक्त हुआ है,

उसके समीप वह परब्रह्म प्रकाशित होता है और उन सब इन्द्रियोंके अपगत होनेपर स्थूल-भावमें स्थित आत्मा ब्रह्मरूपसे कल्पित हुआ करता है। अथवा योगी यदि योग ऐश्वर्य्यसे आत्माको न जान सके, तो चित्तवृत्ति-निरोध आदि मुख्य योगतत्त्वोंके सहारे उसे जाननेका उपाय करे, योगका अनुष्ठान करते करते जिस प्रकार चित्तवृत्ति शुद्ध होवे, उसका ही आचरण करना उचित है। योगी पुरुष केवल योग ऐश्वर्य्यको ही उपजीव्य न करके पर्य्यायक्रमसे भिक्षासे प्राप्त हुए चावलोंके किनके कुलथ्य माष, तिलकल्क, अनेक तरहके शाक, उष्णोदपक्व यव चूर्ण, सत्तू और फलमूल आदि भोजन करके जीवन धारण करें; देशकालके अनुसार उसमें भी जैसे नियमकी प्रवृत्ति हो, परीक्षा करके उसमें अनुवर्त्तन करना योग्य है। प्रारब्ध कर्म्मोंको अन्तरायके जरिये उपरोध करना उचित नहीं, अग्निकी भांति धीरे धीरे ज्ञानकी उद्दीपन करना चाहिये ज्ञानसे प्रदीप्त ज्ञानस्वरूप पर-ब्रह्म सूर्य्यकी तरह प्रकाशित होता है ज्ञाना-धिष्ठान अज्ञान जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति, इन तीनों कालोंमें स्थित रहता है, और बुद्धिके अनुगत ज्ञान अज्ञानसे अर्थात् आत्मभिन्न आत्मरूप विपर्य्ययसे आकृष्ट हुआ करता है। आत्मा जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, इन तीनों अवस्था-ओंसे प्रतीत होनेपर भी असूय पुरुष पृथकत्व और संप्रयुक्तत्व निबन्धनसे आत्माको दूषित करते हुए उसे जाननेमें समर्थ नहीं होते, वे लोग पृथकत्वकी अपृथकत्व सीमा जानके रागरहित होनेसे मुक्त होसकते हैं। कालविजयी मनुष्य जरा मृत्युको जीतके अव्यय अविनाशी अमृत-स्वरूप सनातन ब्रह्मको जान सकते हैं।

२१५ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, जो निष्काम ब्रह्मचर्य्य आचरण करनेकी सदा अभिलाष किया करते हैं, उन स्वप्नदोषदर्शी योगियोंको सब प्रकारकी निद्रा परित्याग करना योग्य है, क्यों कि जीव स्वप्न-कालमें रजोगुण और तमोगुणसे युक्त होता है, तथा निष्पृह होकर देहान्तर प्राप्त होनेकी तरह आचरण किया करता है। ज्ञानाभ्यास निबन्धन जाननेके लिये पहले वह स्मरण हुआ करता है। अनन्तर विज्ञानमें अभिनिवेशके कारण योगी पुरुष सदा जाग्रत रहते हैं। इस विषयमें कोई कोई यह वितर्क किया करते हैं, कि स्वप्नकालमें जीव यथार्थमें विषययुक्त न होकर भी जो विषय विशिष्टकी तरह दीखता है, और प्रलीन इन्द्रियोंसे रहित देहवानकी भांति वर्त्तमान रहता है, इसका क्या भाव है? इस विषयके सिद्धान्त पक्षमें प्राचीन लोग कहा करते हैं, योगीश्वर हरिही स्वप्नके यथार्थ तत्वको जानते हैं, और वह जिस प्रकार जानते हैं, उसीही युक्ति संगत मानके महर्षि लोग वर्णन किया करते हैं। पण्डित लोग कहते हैं, इन्द्रियोंके श्रमसे सर्व्वप्राणि प्रसिद्ध स्वप्न हुआ करता है; स्वप्नकालमें इन्द्रियोंकी उपरति होने पर भी संकल्पस्वभाव मनका विश्राम नहीं होता, इसलिये स्वप्न विषयमें वही प्रसिद्ध प्रमाण है, यह फिर प्रकाशित होता है।

जाग्रत अवस्थामें कार्य्योंमें आसक्त चित्तवाले मनुष्योंका जैसा सङ्कल्प होता है, वैसाही स्वप्न-कालमें मनोगत मनोरथ ऐश्वर्य्य भोग हुआ करता है, इसलिये मनोरथवृत्तिकी तरह स्वप्न-वृत्ति भी शरीरका सङ्कल्पमात्र है, तब जाग्रत अवस्थामें इन्द्रियोंके जरिये विक्षेपके कारण पूर्ण रूपसे विषयज्ञान नहीं होता, स्वप्नमें उसके अभाव विशेष रूपसे विषय ज्ञान हुआ करता है, इसमें इतनाही प्रभेद है। पूर्व्वके अनन्त जन्मोंके संस्कारोंसे विषयासक्त चित्तवाला पुरुष उन स्वप्न आदि ऐश्वर्य्योंको भोग करता और वह उत्तम पुरुष मनमें अन्तर्हित सब विषयोंको प्रकाशित किया करता है। सत, रज और

तमोगुणमेंसे जो गुण पूर्व्व कर्म्मके जरिये उपस्थित होते हैं, वही गुण कर्म्मसे संस्कृत मनको योषिद्गणोंके आकार आदि स्वप्नमें नियुक्त करता है; फिर रूप दर्शनके अनन्तरही जिस प्रकार सुख आदिके अनुभव होते हैं, उसहीके अनुसार राजस, तामस और समस्त सात्विकभाव उस पुरुषके निकट उपस्थित हुआ करते हैं। अनन्तर पुरुष अज्ञानसे राजस और तामस भावके जरिये वात, पित्त और कफ प्रधान शरीरका दर्शन करता है, पूर्व्व वासनाकी प्रबलताके कारण, वह देह दर्शन पुरुषके विषयमें योगके अतिरिक्त अपरिहार्य्य है, ऐसा प्राचीन लोग कहा करते हैं। मन प्रसन्न इन्द्रियोंके सहित जिन जिन विषयोंका सङ्कल्प करता है, स्वप्न समय उपस्थित होने पर मनोदृष्टि होकर उन्हीं विषयोंको देखा करता है। मन उपादानके कारण सर्व्वभूतोंमें व्यापक और प्रतिघात रहित होकर वर्त्तमान है, वह अपने प्रभावसेही आत्माको जान सकता है, आत्मामेंही आकाश आदि सब भूत प्रतिष्ठित हैं। स्वप्न दर्शनका द्वारभूत स्थूल देह मनमें अन्तर्हित होता है, सदसदात्मक साक्षी स्वरूप मन उसही शरीरको अवलम्बन करके उसहीमें सोता है, और आत्मामें जाके प्रवेश करता है, सर्व्वभूतोंका आत्मभूत अहङ्कार आत्मामें प्रतिबिम्ब रूपसे निवास करता है, इसलिये पण्डित लोग आत्माको अहंकार गुणसे अस्पृष्ट समझते हैं; परन्तु सुषुप्तिकालमें साक्षी चैतन्यके शुद्ध अवस्थामें निवास करनेसे अहंकार आदि सब लयको प्राप्त होते हैं। मनके सहारे सङ्कल्पसे जो लोग ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य्य आदि ऐहिक गुणोंके अन्यतमकी अभिलाषा करते हैं, वे चित्तप्रसाद जनित शुद्ध मनको वैसाही जानें, मनमेंही आकाश आदि निवास करते हैं। इसही प्रकार विषय आदिकी आलोचनारूपी तपयुक्त मन अर्कको तरह अज्ञान अन्धकारके पारमें निवास किया करता है। देहधारी जीव त्रैलोक्य प्रकृतिका कारण ब्रह्मरूप और वह जीव ही कारणीभूत अज्ञानके नष्ट होनेपर महेश्वर अर्थात् शुद्ध ब्रह्म भूत हैं। देवता लोग अग्निहोत्र आदि तपस्याके अधिष्ठान और असुर लोग तपोघ्न अन्धकार अर्थात् दम्भ दर्प आदिके अवलम्बन हैं। रज और तमोमय देवासुरोंके निमित्त प्रजापतिने इस ज्ञानस्वरूप परब्रह्मको गुप्त कर रखा है। पण्डित लोग कहा करते हैं, सत, रज और तमोगुण देवता तथा असुरोंमें विद्यमान हैं, उनमेंसे सत्वको देवगुण और रज तमको असुरगुण जानना चाहिये। जो सब पवित्र चित्तवाले मनुष्य सात्विक और असात्विक भावोंसे श्रेष्ठ, ज्ञानस्वरूप, अमृतस्वरूप, स्वप्रकाश और सर्व्वव्यापी परब्रह्मको जानते हैं; वे परमगति पाते हैं। तत्वदर्शी पुरुष ईश्वर सगुण वा निर्गुण है, इसे ही युक्तियुक्त रूपसे कह सकते हैं और सब विषयोंसे इन्द्रियोंको खींचकर अक्षर ब्रह्मको जाननेमें समर्थ होते हैं।

२१६ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, परम ऋषि नारायणके जरिये व्यक्त और अव्यक्त भावसे जिसका तत्व वर्णित हुआ है, जो लोग स्वप्न, सुषुप्ति और सगुण निर्गुण ब्रह्मभावको नहीं जानते, वे उस परब्रह्मको नहीं जान सकते। जन्म ग्रहण करके मृत्युके मुखमें पड़नाही व्यक्त है और मोक्षपदको अव्यक्त जानना चाहिये; परम ऋषि नारायणने यह कहा है, कि देहेन्द्रिय अहङ्कारादिका निवृत्तिलक्षण धर्म्म ही अव्यक्त शाश्वत ब्रह्म है। उस ब्रह्ममें स्थावर जङ्गमात्मक सब जगत् स्थित है, प्रजापतिने प्रवृत्तिलक्षण धर्म्मका विषय कहा है, पुनरावृत्तिका नाम प्रवृत्ति और परम गतिको निवृत्ति कहते हैं; निवृत्ति परायण मननशील मनुष्य उस ही परम

गतिको पाते हैं; जो लोग मुक्ति और संसारको निश्चय रूपसे देखनेकी अभिलाषा करते हैं, वे सदा आत्मतत्व विचारमें अनुरक्त होवें; वक्ष्यमाण रीतिसे प्रकृति और पुरुष इन दोनोंको जो जानना उचित है, प्रकृति और पुरुषसे भिन्न महत् ईश्वर है, बुद्धिमान पुरुष विशेष रूपसे क्लेशादिकोंसे अपरामृष्ट उस परमात्माको देखें इस प्रकृति और पुरुषको आदि और अन्त नहीं है, तथा इन दोनोंको प्रमाणान्तरोंके जरिये नहीं जाना जा सकता। वे दोनों ही नित्य अविचलित और महत्से भी महत् हैं, दोनोंके इस ही प्रकार सामर्थ कहे गये, अब इनका वैधर्म्म विषय कहता हूं। सृष्टिकार्य्यसे व्याप्त त्रिगुणात्मिका प्रवृत्तिसे पुरुषका विपरीत लक्षण जानने अर्थात् पुरुष सृष्टिकार्य्यमें निर्लिप्त और निर्गुण है, वह निर्गुण होनेसे प्रकृति तथा महदादि विकारोंके कार्य्योंको देखता है, पर स्वयं दृश्य नहीं है। क्षेत्रज्ञ अर्थात् पुरुष और ईश्वर दोनोंही चिद्रूप हैं; इसलिये ज्ञापक गुणादि विहित और अत्यन्त विविक्त होनेसे उसे नहीं जाना जा सकता। जो अविद्याके जरिये कर्म्म जनित बुद्धि गृहीत होती है, वह अविद्या ही ज्ञान ज्ञेय सम्बन्धमें ज्ञापक आविर्भाव लाभ करके कर्त्तव्य रूपसे इन्द्रिय आदिके जरिये जिन जिन कार्य्योंको करती है, उसही योनिप्रद कर्म्मोंके सहित संयुक्त हुआ करती है और यह कर्त्ता व्यवहारमें तृतीय होनेपर भी परमार्थ ज्ञान स्वरूप होता है, अस्मद् प्रत्ययसे कौन हूं, ये कौन हैं इत्यादि व्यवहार मात्र होते हैं। जैसे कर्णने अपनेको कौन्तेय न जानकर सूर्य्यसे पूछा, कि कौन्तेय कौन है? शेषमें सूर्य्यके कहनेसे अपनेको ही कौन्तेय जाना था, वैसेही अज्ञानी लोग "ब्रह्म कौन है?" ऐसाही पूंछा करते हैं, ज्ञानवान् पुरुष "मैंही ब्रह्म हूं" ऐसा ही जानते हैं। जैसे उष्णोग्रयुक्त पुरुष तीनों वस्त्रोंसे परिपूरित होता है, वैसे ही यह देही सात्विक, राजसिक और तामसिक भावोंसे परिपूरित हुआ करता है; इसलिये पहले कहे हुए अनादि अनन्तत्व, चिज्जड़ता असंहतत्व और कर्तृत्व इन चारों कारणोंसे प्रकृति पुरुषके साधर्म्य वैधर्म्य, और जीव तथा ईश्वरके साधर्म्य, वैधर्म्य, इन चारोंको जानना उचित है। जो लोग उक्त विध ज्ञानको अतिक्रम नहीं करते, वे सिद्धान्तके समयमें मोहित नहीं होते। जो लोग हृदयाकाशमें स्थित ब्राह्मी श्रीकी कामना करते हैं, वे अन्तर्बाह्यमें पवित्र होकर शौच, सन्तोष, तपस्या, वेदाध्ययन और ईश्वर प्रणिधान आदिक शारीरिक तथा मानस नियमोंके जरिये निष्काम योगका आचरण करें। प्रकाशयुक्त अन्तर्भूत योगबलके सहारे तीनों लोक व्याप्त हो रहे हैं; योगबलके जरिये हृदयाकाशमें सूर्य्य और चन्द्रमा प्रकाशित हुआ करते हैं; योगका विकाशही ज्ञानका कारण है, यह लोकमें विख्यात है, कि योगी लोग सनातन भगवान्का दर्शन करते हैं। जो कर्म्म रज और तमोगुणका नाशक है, वही योगका असाधारण लक्षण है। ब्रह्मचर्य्य और अहिंसाको शारीरिक योग कहा जाता है, और वचन तथा मनको पूर्ण रीतिसे निग्रह करना मानस योग कहके वर्णित हुआ करता है। विधि जाननेवाले द्विजातियोंके समीपसे अन्न ग्रहण करनाही योगियोंके विषयमें श्रेष्ठ है, आहारनियमके जरिये राजस पाप शान्त हो जाते हैं। युक्त अन्न खानेवालोंकी इन्द्रियें शब्द आदि विषयोंमें वैमनस्य अर्थात् वैराग्य लाभ करती हैं, इसलिये जब तक आहारका प्रयोजन हो, तबतक अन्न ग्रहण करना चाहिये। इसही प्रकार योगयुक्त मनके जरिये धीरे धीरे जो ज्ञान उत्पन्न होता है, अन्तकालमें पुण्यक्षेत्रमें वास करते हुए अत्यन्त यत्नके सहित उसही ज्ञानको सिद्ध करे।

यह जीव बाह्यइन्द्रिय-प्रवृत्तिसे रहित और

समाधि समयमें स्थूल शरीरको परित्याग करके भी देहवान् होके शब्दादिविशिष्ट सूक्ष्म शरीरसे विचरता है, अनन्तर कार्य्योंके जरिये अव्याहतचित्त और वैराग्यके कारण सूक्ष्म भोग भी निस्पृह होकर प्रकृतिमेंही लय होजाते हैं। देह त्यागके समयसेही असावधानता आदिके अभाव निबन्धनसे स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरकी बाधाके सबब जीव तत्क्षणही मुक्त होता है, मूल अज्ञानका नाश न होनेसे जीवोंके जन्म मृत्यु हुआ करते हैं। शुद्ध ब्रह्मके साक्षात्कार विषयमें धर्म्माधर्म्म अनुसरण नहीं करते; जो लोग आत्मासे भिन्न आत्मज्ञान किया करते हैं, उनकी बुद्धि महदादि पदार्थोंके नाश और दोनोंकी आलोचना करती है, वे मोक्ष साधनमें समर्थ नहीं होते। योगी लोग आसन आदिके स्खलनके सहारे देह धारण करते हुए बुद्धिके जरिये मनको सब विषयोंसे हटाके नेत्र आदि इन्द्रिय-गोलकोंसे प्रच्युत प्राण और इन्द्रिय आदिकी सूक्ष्मताके कारण उनको आत्मस्वरूपसे उपासना करते हैं। योग शोधित बुद्धिवाले कोई मनुष्य आगमोंके अनुसार अर्थात् इन्द्रियोंसे विषय श्रेष्ठ हैं, विषयोंसे मन श्रेष्ठ है, इत्यादि वेद वचनके अनुसार चरम सीमामें निज महिमासे प्रतिष्ठित परब्रह्मको बुद्धिके जरिये जानके शास्त्र और आचार्य्यके उपदेशसे उसमें एकाग्रचित्त हुआ करते हैं। कोई कोई धारणाके विषय मूर्त्तब्रह्म कृष्ण, विष्णु, आदिके सहित तदात्म-सम्बन्धसे अथवा सेव्य सेवक भावसे निबद्ध आत्माकी उपासना करते हैं। दूसरे लोग उपनिषत् प्रसिद्ध बिजलीके प्रकाशकी तरह सकृत्विभात परिणामहीन निर्गुण परब्रह्मका बार बार अनुभव किया करते हैं। अविमुक्त उपासनासे जिनके पाप जल गये हैं, वे अन्तकालमें ब्रह्मत्व लाभ करते हैं, और वेही सब महानुभाव उपासक लोग परम गति पाते हैं। सोपाधिक ब्रह्मके व्यावर्त्तक विशेषणकी शास्त्रदृष्टिके सहारे हेयरूपसे देखे। अव्यक्तही ब्रह्मका चरम विशेषण है, उसे स्थूल देहके अध्यासरहित और अपरिग्रह अर्थात् सर्व्व आसक्तिसे विमुक्त जाने। धारणा सक्त मानस योगीके हृदयाकारसे आरम्भ करके उससे पृथक् सूत्रात्मा रूपसे मालूम करे। जिन लोगोंका चित्त स्वरूप परब्रह्ममें संयुक्त हुआ है वे मर्त्यलोकसे विमुक्त होते और ब्रह्मस्वरूप होकर परम गति पाते हैं।

वेद जाननेवाले पुरुष इसी प्रकार धर्म्मको ब्रह्मप्राप्तिका एकमात्र उपाय कहा करते हैं। चाहे कोई किसी प्रकारसे जानके ईश्वरकी उपासना क्यों न करें, सभी परम गति प्राप्त किया करते हैं। जिन्हें, रागादिरहित अचल अर्थात् दृढ़ शास्त्रीय और परोक्ष ज्ञान उत्पन्न हुआ है, वे श्रेष्ठ लोकोंमें गमन करते और वैराग्यके अनुसार मुक्त होते हैं। आशाहीन ज्ञानतृप्त और पवित्रचित्तवाले योगी लोग सब ऐश्वर्य्योंसे युक्त, जन्मरहित, अव्यक्तसंज्ञक, दिव्यधाम-स्थित, सर्व्वव्यापी ब्रह्मके निकटवर्त्ती हुआ करते हैं। वे अविनाशी महानुभाव पुरुष हरिको शरीरस्थ पञ्चकोशके अन्तर्गत जानके फिर दूसरी बार उससे निवृत्त नहीं होते; वे लोग उस अव्यय अविनश्वर परमधाम पाके निरवच्छिन्न आनन्द अनुभव करते हैं। रस्सीमें सर्पभ्रमकी तरह यह जगत् है वा नहीं इत्यादि रूपसे अनिर्व्वचनीय जगत्का मिथ्यापन जानना उचित है; परन्तु समस्त जगत् तृष्णामें बद्ध होकर चक्रकी तरह परिवर्तित होता है। जैसे मृणालसूत्र कमलके डांडीके बीच सर्व्वत्र वर्त्तमान रहता है, वैसेही आदि और अन्तरहित तृष्णाके तागे सदा देहमें विद्यमान हैं। जैसे सीनेवाला सुईके सहारे वस्त्रोंमें तागा चलाता है, वैसेही तृष्णासूचीसे संसारसूत्र निबद्ध होरहा है। जो लोग महदादि विकाररूप कार्य्यमें होमल कारण प्रकृति और कार्य्य-

निर्लिप्त सनातन पुरुषको विधिपूर्व्वक जानते हैं, वेही तृष्णारहित पुरुष मुक्त होते हैं। जगत्की गति भगवान् नारायण ऋषिने जीवोंके ऊपर कृपा करके इस मोक्ष साधन विषयकी स्पष्ट करके कहा है।

२१७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे व्यवहार दर्शिन्! मिथिलापति जनकवंशीय मोक्षवित् जनदेवने किस प्रकारके व्यवहारोंके जरिये मनुष्योंके भोगने योग्य भोगोंको परित्याग करके मुक्तिलाभ की थी?

भीष्म बोले, व्यवहारदर्शी जनदेवने जिस प्रकार व्यवहारके सहारे मोक्षलाभकी थी, उस विषयमें प्राचीन लोग यह पुराना इतिहास कहा करते हैं। मिथिलानगरीमें प्रजानाथ जनदेव शरीर त्यागनेके अनन्तर जिस प्रकार निर्गुण ब्रह्म प्राप्ति होती है, उस ही प्रकार धर्म्म विषयोंकी चिन्तामें तत्पर थे। उनके स्थानमें अनेक प्रकारके उपासनामार्ग-प्रदर्शक और लोकायत पाषण्डियोंके तिरस्कार करनेवाले सैकड़ों आचार्य्य सदा निवास करते थे। उन सब पाषण्डियोंके बीच कोई कोई देह नाश निबन्धनसे आत्माका नाश स्वीकार करते थे, कोई शरीरको ही अविनाशी कहके स्थिर करते थे, इसही प्रकार विविध विषयोंमें ऐक्यमत न रहने तथा परलोक, पुनर्जन्म और आत्मतत्व विषयमें विशेष निश्चय न होनेसे वह शास्त्रदर्शी राजा उन लोगोंके विषयोंमें विशेष रूपसे सन्तुष्ट नहीं था। अनन्तर कपिलापुत्र पञ्चशिख नाम महामुनि समस्त पृथ्वी पर्य्यटन कर एकत्र वास न करके उस मिथिला नगरीमें उपस्थित हुए। वह समस्त सन्न्यासधर्म्मके तत्वज्ञान निश्चय विषयके जो सब प्रयोजन हैं, उन्हें पूर्ण रीतिसे निर्णय कर सकते थे; उन्हें सुख दुःख आदि कुछ न था और सब संशय नष्ट हुए थे। पण्डित लोग उन्हें ऋषियोंमें अद्वितीय कहते थे; वे यदृच्छाक्रमसे मनुष्योंके बीच निवास करते और अत्यन्त दुर्लभ नित्यसुखकी खोजमें तत्पर रहते थे। सांख्य मतावलम्बी दार्शनिक पण्डित लोग जिसे परम ऋषि प्रजापति कपिल कहा करते हैं, बोध होता है, वही पञ्चशिख रूपसे लोगोंको विस्मययुक्त करते थे। प्राचीन लोग जिसे आसुरीके प्रथम पुत्र और चिरजीवी कहते हैं; जिन्होंने हजार वर्ष सम्पाद्य मानसयज्ञका अनुष्ठान किया था, जिन्होंने आसुरीके निकट समासीन कपिल मतावलम्बी मुनिमण्डलीके समीप उपस्थित होकर अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय पञ्चपुरुष जिसमें निवास करता है और जिन्होंने स्वयं हाथ और मस्तक आदि अवयवोंसे रहित कहके अव्यक्त और अवाङ्मनस निबन्धन परमार्थ स्वरूप उस परब्रह्म विषयक ज्ञानका विस्तार किया था। जिन्होंने आत्मज्ञानके निमित्त आसुरीके निकट बार बार प्रश्न किया था, उससे आसुरीने शरीर और जीवकी स्पष्टता समझके दिव्यदृष्टि लाभ की थी; वेद और लोकमें प्रसिद्ध जो एक मात्र अविनाशी ब्रह्म अनेक रूपसे दीखता है, आसुरीने उस ही मुनिमण्डलीके बीच उस अव्यय पुरुषको जाना था। पञ्चशिख उस ही आसुरीके शिष्य थे वह किसी मानुषीका दूध पीकर बर्द्धित हुए थे कपिलानामी कोई कुटम्बिनी ब्राह्मणी थी, वह उसहीका पुत्रत्व स्वीकार करके उसके स्तनका दूध पीते थे, उसहीसे उनका कापिलेय नाम हुआ और उन्होंने नैष्ठिकी बुद्धि लाभकी। भगवान् मारकण्डेयने इसही प्रकार मेरे समीप उनकी उत्पत्ति, कापिलेय नामका कारण और असाधारण सर्व्वज्ञत्वका विषय कहा था। धर्म्मज्ञ पञ्चशिखने परमश्रेष्ठ ज्ञानलाभ करके मिथिलाधिपतिके आचार्योंकी समबुद्धि जानके

युक्तिधाराकी वर्षाके सहारे सैकड़ों आचार्य्योंको मोहित किया। राजा कापिलेयको देखनेसे ही उनपर भक्तिके कारण अनुरक्त होकर पूर्व्वोक्त आचार्य्योंको परित्याग करके उनहीके अनुगामी हुए, कपिलापुत्र पञ्च इन्द्रियोंके प्रवाहयुक्त मनोनिग्रहमें निष्ठावान थे; पञ्चरात्रनाम विष्णुत्व प्रापक यज्ञ विषयके जाननेवाले थे अर्थात् समस्त कर्म्मोंका अनुष्ठान किया था। अन्नमय प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय इन पञ्चकोषके विषयको विशेष रूपसे जानते थे, अन्नमय आदि पञ्चकोषोंके आश्रय आत्माकी उपासना करते थे; शान्त, दान्त, उपरत, तितिक्षु और सावधान होकर आत्मासे ही आत्माका दर्शन करते थे; इसीसे शान्त आदि पञ्चगुणोंसे युक्त थे; इसहीसे वह पञ्च-शिख नामसे प्रसिद्ध हुए।

जनक बोले, हे द्विजश्रेष्ठ! लोक और वेदमें प्रसिद्ध जो अद्वितीय अविनाशी ब्रह्म अनेक रूपसे दीखता है, आप मेरे समीप उसका विषय वर्णन करिये, आपने ही उसे यथार्थ रूपसे जाना है।

भीष्म बोले, महर्षि पञ्चशिख धर्म्मपूर्व्वक विनययुक्त और तत्व ज्ञानके उपदेश धारण करनेमें अत्यन्त समर्थ उस मिथिलापतिसे सांख्य शास्त्रमें कहे हुए परम मोक्षका विषय कहने लगे; उन्होंने पहले उनके समीप जन्म विषयक सब दोषोंको प्रदर्शित करके यागादि कर्म्मोंके दोष कहे और यागादि कर्म्मोंके दोष कहके ब्रह्मलोक पर्य्यन्त सब लोकोंके दोष वर्णन किये। जिसके लिये कर्म्मकी सृष्टि और सब कर्म्मोंके फलकी आकांक्षा होती है, वह अविश्वसनीय मोह विनाशी अस्थिर और सत्य वा असत् रूपसे निश्चित नहीं है, यह भी कहा।

लोकायत नास्तिकोंका यह मत है, कि सर्व्वलोकसाक्षी देहरूपी आत्माका नाश प्रत्यक्ष दीखने पर भी शास्त्र प्रमाणके कारण देहसे पृथक् आत्मा है, ऐसा जो वादी कहा करता है, वह पराजित होता है। आत्माका मृत्यु स्वरूप नाश और दुःख जरा रोग आदिसे आंशिक नाश है; जैसे गृहके निर्ब्बल अवयवोंके धीरे धीरे नष्ट होनेपर गृह नष्ट होता है, वैसेही इन्द्रिय आदिके विनाशके जरिये शरीरकाही नाश हुआ करता है। ऐसा होने पर भी जो लोग मोहके वशमें होकर आत्माको देहसे पृथक् अन्य पदार्थ समझते हैं, उन लोगोंका मत समीचीन नहीं है। 'लोकमें जो नहीं है' यह यदि सिद्ध हो, तो वन्दीगण जो राजाको अजर अमर कहके स्तुति किया करते हैं, वह भी सिद्ध हो सकता है। असत् पदार्थ है, वा नहीं, ऐसा संशय उपस्थित होनेपर मनुष्य कौनसा कारण अवलम्बन करके लोकयात्राका निश्चय करेगा? अनुमान और शास्त्र-प्रमाणका मूल प्रत्यक्ष है, उस प्रत्यक्षके जरिये शास्त्र बाधित हुआ करता है और अनुमान तुच्छ प्रमाण है; देहसे पृथक् स्वतन्त्र आत्मा नहीं है; इस विषयकी चिन्ता करनी वृथा है, नास्तिकोंके मतमें जीव शरीरसे स्वतन्त्र नहीं है। पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु, इन चारों भूतोंका संयोग होने पर जैसे बट-बीजके क्षुद्र भागके बीच पत्ते, फूल, फल, छाल, रूप और रस आदि अन्तर्हित रहते हैं, वैसेही रेत "वीर्य्य" के बीच मन, बुद्धि, अहंकार चित्त, शरीरका रूप और गुण आदि अन्तर्हित रहके उत्पन्न होते हैं, अथवा जैसे एक मात्र गोभुक्त तृणोदकसे विभिन्न स्वभाव दूध और घी उत्पन्न होता है, अथवा अनेक वस्तुओंसे मिला हुआ कल्कके दो तीन रात्रि पकने पर जैसे उसमेंसे मदशक्ति उत्पन्न हुआ करती है, वैसेही पहले कहे हुए चारों तत्वोंके संयोगसे रेतसे चैतन्य उत्पन्न होता है। जैसे दो काष्ठोंके घिसनेसे अग्नि प्रकट होती है, वैसेही चारों भूतोंके संयोगसे उसका प्रकाशक चैतन्य जन्म ग्रहण किया

करता है। जड़ पदार्थोंसे चैतन्यकी उत्पत्ति असम्भव नहीं है, तार्किक मतसे आत्मा और मन जड़ होने पर भी दोनोंके संयोगके कारण जैसे स्मरणादि रूप ज्ञान उत्पन्न होता है, इस विषयमें भी वही प्रमाण है। जैसे अयस्कान्त-मणि लोहेको आकर्षण करती है, वैसेही उक्त रूपसे उत्पन्न हुआ चैतन्य इन्द्रियोंको चलाया करता है। जैसे सूर्य्यकान्तके संयोगद्वारा सूर्य्य किरणसे अग्नि प्रकट होती है, वैसेही भोक्तृत्व और अग्निका जलशोषकत्व संघातके जरियेही सिद्ध होता है; इसलिये देहसे पृथक जीव नहीं है, यह युक्तिसङ्गत है। लोकायत नास्तिकोंका जो युक्तियुक्त मत वर्णित हुआ, वह अत्यन्त दूषित है, क्यों कि शरीरके मृत होने पर भी आत्माका विनाश नहीं होता; देहसे अतिरिक्त आत्माके अस्तित्वमें यही प्रमाण है, कि यदि देह चेतन हो, तो मृत शरीरमें भी चैतन्यकी प्राप्ति हो सकती है, जब कि ऐसा नहीं दीखता है, तब चैतन्य अवश्यही देह धर्म्म नहीं है। जिसके वर्त्तमान् रहनेसे शरीर नष्ट नहीं होता और जिसके न रहने पर देह नष्ट होता है, वह अवश्यही शरीरसे स्वतन्त्र है; और लोकायत नास्तिक लोग शीत, ज्वरकी निवृत्तिके लिये मन्त्रप्रतिपाद्य देवताके निकट प्रार्थना किया करते हैं, वह देवता यदि भूतमयी हो, तो घट पट आदिकी तरह दृष्टिगोचर होसके, परन्तु लोकान्तर गमन करने योग्य सूक्ष्म शरीरको स्वीकार न करनेसे उनके मतमें देवताकी सिद्धिही सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त जिस समय जो शरीर भूतान्तरमें आविष्ट होता है, उस समय उस शरीरकी पीड़ासे देहका मुख्य अधिष्ठाता पीड़ित नहीं होता; परन्तु जो आविष्ट हुआ है, उसीही उस देहके अभिमान निबन्धनसे पीड़ा हुआ करती है; अविष्टके अपगमसे मुख्य शरीरही वाधित होता है; इसलिये दृष्ट-विरोधके कारण देहकी आत्मा नहीं कहा जाता; मृत होनेपर कर्म्मकी निवृत्ति होती है, इससे कृत कर्म्मोंका नाश और अकृत कर्म्मोंके आगमरूप दोषको विशिष्ट रूपसे स्वीकार करना होता है, अर्थात् जिस शरीरसे जो दोष करता है उस देहके नष्ट होनेपर उसके किये हुए कर्म्म भी नष्ट होते हैं, और नवीन शरीर उत्पन्न होनेपर अकृत कर्म्मोंका फल भोग हुआ करता है, इससे लोकायतिक मत अत्यन्तही युक्तिविगर्हित है। मूर्त्त पदार्थसे अमूर्त्त ज्ञानकी उत्पत्ति होनेसे पृथ्वी आदि चारों भूतोंसे आकाशकी उत्पत्ति होसकती है; इसलिये अमूर्त्तके सहित मूर्त्तकी सदृशता कभी सम्भव नहीं है।

सौगत-मतावलम्बी नास्तिक लोग अविद्या, कर्म्म, वासना, लोभ, मोह और दोषनिसेवणको पुनर्जन्मका कारण कहा करते हैं। वे लोग लोकायत नास्तिकोंके अभिमत चारों भूतोंके वाह्यसङ्घातसे आध्यात्मिक सङ्घातरूप, विज्ञान, वेदना, संज्ञा संस्काराख्या पञ्चस्कन्धात्मक ऐहिक और पारलौकिक व्यवहारास्पद जीव स्वीकार करते हैं; इसलिये उनके मतमें देहके नाशसेही आत्म विनाशरूप दोषकी सम्भावना नहीं है। यद्यपि ये लोग दूसरेकी तरह स्थिर भोक्ता वा प्रशासिता चेतन स्वीकार नहीं करते हैं, तोभी अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नाम, रूप, षड़ायतन अर्थात् चित्तका आश्रय शरीर, स्पर्श, पीड़ा, तृष्णा, उपादान, जन्म, जाति, जरा, मृत्यु, शोक, परिदेवना, दुःख और मनस्ताप, इन अठारहों दोषोंको कभी कभी संक्षेपसे कभी विस्तारके सहित वर्णन किया करते हैं। ये लोग घटायन्त्रकी भांति आवर्त्तमान होकर सङ्घातको स्वाश्रयत्व रूपसे अधिक्षेप करते हैं; उसही सङ्घातोत्पत्तिके कारण लोकयात्रा निर्व्वाह होनेसे स्थिर आत्माकी सत्ताको स्वीकार नहीं करते। उनके मतमें पूर्व्वकृत कर्म्म और तृष्णाजननस्नेह, अविद्या क्षेत्र शरीरके वार वार उत्पत्तिका

बीज और कारण रूपसे वर्णित हुआ है। उस अविद्या आदि कलापके सुषुप्ति प्रलयके संस्कार-स्वरूपमें निमित्तभूत होके स्थिति करने और एकमात्र मरण धर्म्मयुक्त देहके जलने वा नष्ट होनेपर अविद्या आदिसे दूसरा शरीर उत्पन्न होता है, सौगत लोग इसेही सत्वसंचय अर्थात् मोक्ष कहा करते हैं।

इस विषयमें यही आपत्ति है, कि मुक्ति होनेपर भी क्षणिक विज्ञान आदिके स्वरूप, जाति, पाप-पुण्य और बन्ध मोक्षसे जबकि पृथकत्व होता है, तब किस प्रकार इस विज्ञानसे वह विज्ञान प्रत्यभिज्ञान होसकता है। एक पुरुष मुमुक्षु, दूसरा साधनाविष्ट है और अन्यपुरुष मुक्त हुआ, यह अत्यन्त ही असंगत वचन है। ऐसा होनेसे दान, विद्या, तपस्या और बलके निमित्त लोगोंकी प्रवृत्ति न होती; क्यों कि एक पुरुषके दानादि कर्म्मोंके अनुष्ठान करनेपर फल भोगके समय उसके अभावमें दूसरे फल भोग करने लगे यह कभी सम्भव नहीं है। यह सम्भव होनेसे एकके पुण्यसे दूसरे सुखी और दूसरेके पापसे अन्य पुरुष दुःखी हो सकते है; इसलिये ऐसे दृश्य विषयोंके जरिये अदृश्य विषयोंका निर्णय करना युक्तिसंगत नहीं होता है। एकका ज्ञान दूसरेके ज्ञानके समान नहीं होता; इसलिये जिसमें वैजात्यके जरिये ये सब दोष उत्पन्न न हों, उसके लिये यदि क्षणिक विज्ञानवादी नास्तिक लोग ज्ञानधाराकी स्वजातीयता कहनेकी इच्छा करें, तब उत्पाद्यमान सदृश ज्ञानका उपादान क्या है? इस प्रश्नका उत्तर देनेके पहिले ज्ञानको वे लोग सिद्धान्त पक्षमें निक्षेप करनेमें समर्थ नहीं हैं, क्यों कि उन लोगोंके मनमें ज्ञानका क्षणिकत्व निबन्धन उत्तर ज्ञानके उत्पादन विषयमें समर्थ नहीं है। यदि उस ज्ञानकाही नाश हो, तो मूषलके जरिये नष्ट हुए शरीरसे दूसरा शरीर उत्पन्न होसके। ऋतु, सम्वत्सर, युग सर्दी, गर्म्मी प्रिय और अप्रिय आदि जैसे अतीत होके फिर उत्पन्न होते देखे जाते हैं, वैसेही ज्ञानधारकी अनन्तताके कारण ऋतु आदिकी भांति मोक्ष बार बार आगत और निवृत्त होती है, इसलिये क्षणिक-विज्ञानवाद अनेक दोषोंसे ग्रस्त होनेसे युक्तिसंगत नहीं है। जरा और मृत्युके जरिये आक्रान्त अनित्य धर्म्माश्रय दुर्ब्बल शरीर गृहकी भांति नष्ट होता है।

इन्द्रियां, मन, प्राण, मांस, रुधिर, हड्डी आदि आनुपूर्व्विक नष्ट और असम्मिलित हुआ करती हैं, लोकयात्रामें व्याघात और दानधर्म्मादि फलकी अप्राप्ति होनेपर उसही कारणसे आत्म-सुखार्थ सब लौकिक और वैदिक व्यवहार भी नष्ट होते हैं। मनमें अनेक प्रकारके तर्क उत्पन्न हुआ करते हैं; तर्क उत्पन्न होनेपर युक्तिके सहारे देहसे पृथक् दूसरा कौन आत्मरूपसे निर्द्धारण किया जासकता है। जो लोग अभिनिवेश-पूर्व्वक विचार करते हैं, उनकी बुद्धि किसी अनिर्व्वचनीय वस्तुमें निविष्ट होती है, निविष्ट होनेपर उसमें ही वृक्षकी तरह जीर्ण हुआ करती है। इसही प्रकार इष्ट और अनिष्टके जरिये सब जन्तु ही दुःखित होरहे हैं। जैसे हाथीवान हाथियोंको आकर्षण करता है, वैसे ही दुःखोपहत जीवसमूह शास्त्रके जरिये वशीभूत हुआ करते हैं। बहुतेरे मनुष्य अत्यन्त सुखयुक्त विषयोंको अभिलाष करके शुष्क होते हैं; अन्तमें महत् दुःख भोगते हुए विषय परित्याग करके मृत्युके वशमें हुआ करते हैं। जिसका अवश्य ही विनाश होगा और जीवनका निश्चय नहीं है, उसे बन्धु बान्धव और विभिन्न परिवार समूहका क्या प्रयोजन है। जो सबको परित्याग करके गमन करते हैं, वे क्षणकालके बीच लोकान्तरमें पहुंचके फिर दूसरी बार नहीं लौटते। पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि और वायु, ये पञ्चभूत सदा शरीरका प्रतिपालन करते हैं, इसलिये इस पञ्चभूतात्मक शरीरके तत्वकी

जाननेसे किसमें अनुराग होगा? इस विनाशी शरीरमें तनिक भी सुख नहीं है। राजा जनदेवने यह भ्रम प्रमादसे रहित अकपट आत्मसाची वचन सुनके विस्मययुक्त होकर फिर पूर्व्वपच करनेकी इच्छा की।

२१८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, जनकवंशीय जनदेवने पञ्चशिखका वचन सुनके मरनेके अनन्तर फिर जन्म और मोच होती है वा नहीं। फिर उस विषयमें प्रश्न किया।

जनकदेव बोले, हे भगवन्! यदि मरनेके बाद किसीको सुषुप्ति वा मूर्च्छावस्थाकी तरह विशेष विज्ञान न रहे, तो ज्ञान वा अज्ञानमें कुछ विशेष नहीं रह सकता। हे दिजोत्तम! देखिये यम और नियम आदि सभी आत्मनाश पर्य्यवशायी अर्थात् आत्मनाश होनेसेही सब नियमादि नष्ट हुआ करते हैं; इसलिये चाहे मनुष्य प्रमत्त हो वा अप्रमत्त हो हो, उसमें विशेष क्या है। मोच होनेसे यदि दिव्याङ्गना आदिका सन्सर्ग होनेपर भी वह स्वर्गादिकी तरह बिनाशी हो, तब किस निमित्त कर्म्म करे और क्रियमाण कार्य्यकी घटना ही किस प्रकार होगी, इस विषयमें यथार्थ रूपसे क्या निश्चय है।

भीष्म बोले, अतिक्रान्तदर्शी महर्षि पञ्चशिखने अज्ञानाच्छन्न बिभ्रान्त आतुरकी भांति राजाको फिर बचनसे धीरज देके कहने लगे। इस सन्सारमें देह नाश होनेसेही पर्य्यवसान नहीं होता और देह विशेषके नाश होनेसे जो शेष हुआ, वह भी नहीं है; परन्तु अविद्याके सहारे आत्मामें आरोपित बुद्धि और इन्द्रिय आदि केवल रस्सीमें सर्पभ्रमकी तरह मालूम होती है, ऐसे अनर्थकी निवृत्ति और कण्ठमें पड़े हुए बिस्मृत कण्ठहारकी भांति स्वरूपानन्दकी प्राप्ति होनेसे ही कृत कृत्यता हुआ करती है। यह प्रत्यच दृश्यमान् देह इन्द्रियों और चित्तके मिलनजनित सङ्घातसे एक दूसरेका आश्रय करके कार्य्यमें वर्त्तमान रहता है। जिसमें सब कार्य्य लीन होते हैं, उसे उपादान कहते हैं, वह उपादान पांच प्रकारका है; जल, आकाश, अग्नि, वायु और पृथ्वी; सांख्य मतके अनुसार ये पांचो उपादान स्वभावसे ही स्थिति करते हैं और स्वभावसे ही पृथक् हो जाते हैं। ये आकाश आदि पांचो उपादान संयुक्त होकर शरीराकारसे परिणत हुआ करते हैं, अर्थात् शरीरके अन्तर्गत जो आकाशका भाग है वही आकाश है; जो प्राण है, वही वायु है; जो उष्मा है, वही अग्नि है, जो रक्तरस आदि स्नेहवत् पदार्थ हैं, वही जल और जो अस्थि आदि कठोर पदार्थ हैं, वही पार्थिव अंश हैं; यह शरीर जरायुज आदि भेदोंसे अनेक प्रकारका है। ज्ञान, जठराग्नि और प्राण ये त्रिविध-पदार्थ सर्व्वकर्म्म संग्राहक हैं; इन्द्रिय और इन्द्रियोंके शब्द स्पर्श आदि विषय प्रकाशक स्वभाव-विशिष्ट हैं, घटाकार वृत्ति चेतनाही संकल्पादि रूप मन है, यही ज्ञानके कार्य्य हैं, वायुके कार्य्य प्राण आदि पञ्चवायु हैं, खाने और पीनेकी वस्तुओंको परिपाकके जरिये इन्द्रियादिका उपचय करना जठराग्निका कार्य्य है। इससे ज्ञान, अग्नि और वायुसे इन्द्रिय आदि प्रकट हुई हैं। कान, त्वचा, जीभ, नेत्र और नासिका, ये पांचो इन्द्रिय चित्तगत गुण लाभ किया करती हैं। सुख, दुःख, सुखाभाव और दुःखाभाव स्वरूपोंसे विज्ञानयुक्त चेतनावृत्ति विषयोंकी उपादेयत्व, हेयत्व और उपेक्षणीयत्व भेदसे तीन प्रकारकी है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, ये पांचो विषय मूर्त्तिके सहित संयुक्त होकर मृत्यु काल पर्य्यन्त ज्ञान सिद्धिके निमित्त षड्-विषय कहके प्रसिद्ध हुआ करते हैं। कान आदि इन्द्रियोंसे सम्प्राप्त निबन्धनसे जिन सब विषयोंमें अर्थ निश्चय होता है, उसेही पण्डित

लोग मोक्षका बीज और मोक्षप्रदत्व हेतु अव्यय महत् बुद्धि कहा करते हैं। इन आत्मातिरिक्त विषयोंको जो लोग आत्मभावसे देखते हैं, उनका असम्यक दर्शनसे अनन्त दुःख शान्त नहीं होता "यही" इत्यादि रूपसे जो दीखता है, वह आत्मा नहीं है, क्यों कि दृश्य वस्तु कभी द्रष्टाकी आत्मा नहीं होसकती। इस कारण 'मैं और मेरा' इत्यादि वचन भी सिद्ध नहीं होते; तब अहंकार देहेन्द्रिय आदि जो आत्मामें अभेद रूपसे मालूम होती हैं, वह सीपमें रौप्यबुद्धिके समान भ्रम मात्र है। "यही मैं अन्धा हूं, मैं गोर वर्ण हूं" इत्यादि वचनमें जब आत्माका सम्बन्ध नहीं है, तुम "मेरे पुत्र, मेरीस्त्री।," ये सब वचन भी मिथ्या हैं; इसलिये जो दुःखसन्तति मालूम होरही है, उसका अवलम्ब क्या है, क्यों कि आत्मा असङ्ग और अहंकार मिथ्या है, इससे रस्सीमें सर्पभ्रमकी भांति निरधिष्ठान दुःखसन्तति भी अवश्यही अहङ्कारकी तरह सत्य नहीं है; अब जो वक्ष्यमाण त्याग प्रधान शास्त्र तुम्हारे मुक्ति विषयके निमित्त होगा, वह परमश्रेष्ठ सांख्यशास्त्र सुनो। मुक्तिके लिये सदा उद्यत पुरुषोंको सब कर्म्म और विभव आदिको परित्याग करनाही नित्यकर्म्म है, और जो लोग त्यागको स्वीकार न करके शान्तिपरायण होते हैं, पण्डित लोग उन लोगोंके अविद्या आदि क्लेशोंका दुःखदायक समझते हैं। सुखकी सामग्रियोंको परित्याग करनेसे सब कर्म्म सिद्ध होते हैं, भोग त्याग करनेसे व्रतकी सिद्धि हुआ करती है, सुख त्याग करनेसे तपस्या और योग उपदेश प्राप्त हो सकता है, और समस्त परित्याग करनेसे त्यागकी पराकाष्ठा हुई। दुःखोंको नाश करनेके लिये उस सर्व्वत्यागका ईश्वरहित मार्ग प्रदर्शित होता है। त्याग स्वीकार न करनेसे दुर्गति हुआ करती है। बुद्धिमें विद्यमान मनके सहित पञ्च ज्ञानेन्द्रियोंका विषय कहके प्राणके सहित पञ्च कर्म्मेन्द्रियोंका विषय कहता हूं।

दोनों हाथ कर्म्मेन्द्रिय, दोनों पाव गमनेन्द्रिय और शिश्न सन्तानोत्पादन तथा आनन्द जननेन्द्रिय, वायु पुरीष (मल) परित्याग आदिकी इन्द्रिय और वाक्य शब्दविशेष उच्चारणकी इन्द्रिय है, मन इन पांचो कर्म्मेन्द्रियोंमें संयुक्त है। इसही प्रकार मनके सहित कर्म्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों इन ग्यारहोंको बुद्धिके सहारे शीघ्रही परित्याग करे; मनको परित्याग कर सकनेसे ही विषययुक्त कर्म्मेन्द्रियों परित्यक्त होती हैं; और बुद्धिको परित्याग करनेसे ही मनके सहित ज्ञानेन्द्रियोंका परित्याग सिद्ध हुआ करता है। शब्द क्रियाको सिद्ध करनेके लिये दोनों कान कण्ठ, शब्द विषय और चित्त कर्त्तृ रूपसे कहा जाता है; स्पर्श, रूप, रस और गन्धका विषय भी इसही प्रकार है। इसी भांति शब्दादि विषयोंकी अभिव्यक्तिके लिये सत्व आदि तीनों गुण, सब विषय और कारणको समनस्क करें, जो अनुभवको अभिव्यक्तिके निमित्त सात्विक राजसिक और तामसिक भाव पर्य्यायक्रमसे उपस्थित होते हैं, वह अनुभव ही प्रहर्ष आदि सब सात्विक प्रभृति कार्य्योंका साधन किया करता है। प्रहर्ष, प्रीति, आनन्द, सुख और शान्त-चित्तता, ये सब सात्विक गुण वैराग्यके कारण वा स्वाभाविक ही चित्तसे उत्पन्न होते हैं। असन्तोष, परिताप, शोक, लोभ और क्षमाहीनता, ये सब रजोगुणके चिन्ह हैं, कभी कारणसे और कभी बिना कारणके ही दिखाई देते हैं। अविवेक, मोह, प्रमाद, स्वप्न और तन्द्रा आदि विविध तामसगुण कारण वा बिना कारणके ही वर्त्तमान रहते हैं। जो शरीर और मनको प्रीतियुक्त करे, उसेही सात्विक गुण समझना चाहिये। जो विषय आत्माके असन्तोष और अप्रीतिकर हैं, उन्हें ही रजोगुणसे उत्पन्नहुए समझना चाहिये, और शरीर वा मनसे जो मोहयुक्त होके मालूम होता है, उसेही अवितर्क और अविज्ञेय तमोगुणका

कार्य्य निश्चय करे। आकाशके आश्रित श्रोत्र आकाशसे भिन्न नहीं हैं और श्रोत्राश्रित शब्द भी परस्परके सम्बन्धसे आकाशसे स्वतन्त्र नहीं होसकता, जब ऐसा हुआ, तब शब्दज्ञान होनेपर आकाश और श्रोत्र ये दोनों ही विज्ञानके विषय नहीं होते, क्यों कि जिसे शब्दज्ञान होता है, उसे शब्दज्ञानके समयमेंही श्रोत्र और आकाश विषयका ज्ञान समान नहीं होसकता, इससे ऐसा निश्चय नहीं है, कि श्रोत्र और आकाश अज्ञात ही रहे। एकका विज्ञान होनेसे दूसरेका ज्ञान नहीं होता, यह वचन कभी भी युक्तिसङ्गत नहीं है। श्रोत्र और आकाशसे शब्द कभी स्वतन्त्र नहीं होसकता। इसलिये श्रोत्रादिके प्रविलापनसे शब्द और आकाश आदिका प्रविलापन युक्तियुक्त है; शब्द और आकाशादि स्मरणात्मक चित्त स्वरूप है; चित्त भी अव्यवसायात्मक मनसे भिन्न नहीं, इसलिये मनके लग्न होनेसे सभी लीन होते हैं। इसी प्रकार त्वचा, नेत्र, जिह्वा नासिका, स्पर्श, रूप, रस और गन्धके सहित अभिन्न होकर चित्तभी मनःस्वरूप होता है; मनके लय होनेसे ये सब लीन होते हैं। इन्द्रियोंके विषय सुनना, छूना, देखना आदि कार्य्य एक समयमें ही सिद्ध होनेसे पञ्चज्ञानेन्द्रिय और पञ्चकर्म्मेन्द्रिय, इन दशोंके अनुगत मन ग्यारहवां होकर स्थिति करता है और बुद्धि ऊपर कही हुई दशों इन्द्रिय तथा ग्यारहवें मनको अनुगत होकर बारहवें रूपसे निवास किया करती है, जो लोग यह अङ्गीकार करते हैं, कि एक समयमें अनेक ज्ञान नहीं होता, उनका अनुभव युक्तिविरुद्ध है; क्यों कि गङ्गाजलमें शरीरका अर्द्ध भाग डूबनेपर आधेहिस्से में सूर्य्यकिरणकी गर्म्मी और आधे भागमें शीतलता दोनों ही स्पष्ट मालूम होती हैं। प्रागुक्त पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्म्मेन्द्रिय, मन और बुद्धि इन बारहोंको युगपत् भाव न होनेपर भी निन्द्रा रूप तमोमय सुषुप्ति-कालमें भी आत्माका नाश नहीं है, आत्माका अयोगपद्यही वास्तवल है, युगपद्भाव केवल सपनेकी भांति ज्ञानकृत है; इसलिये आत्माका जो युगपद्भाव है, वह लौकिक व्यवहार मात्र है। पारलौकिक नहीं है, स्वप्नदर्शी पुरुष पूर्व्वानुभव बासनासे सूक्ष्म इन्द्रियोंके विषय सङ्गतकी चिन्ता करते हुए सत, रज और तमोगुणसे युक्त होकर कामनाके अनुसार निज शरीरमें बिचरते हैं। जो तमोगुणसे अभिभूत और जो प्रवृत्ति प्रकाशात्मक आत्माको शीघ्र ही संहार करके पहले कहे हुए युगपद्भावको अनिश्चित नाश करता है, पण्डित लोग उसेही तामससुख कहा करते हैं। वह अज्ञान प्रधान तामससुख इस शरीरमेंही सुषुप्तिकालमें मालूम हुआ करता है; जो सुख आनन्द स्वरूप परब्रह्म इत्यादि वेदबोधित रूपसे विख्यात् है उसमें तनिक भी द्वैत सुख न दीख पड़ने और अव्यक्त अनृत तमोगुणको सत्ता न रहनेपर भी उसका अस्तित्व उपपन्न होता है। इन अहंकार आदिकोंको घटपट पर्य्यन्त दृश्यमान भोग्य बस्तुओंके निज कर्म्मके कारण उत्पत्ति प्रख्यात् हुआ करती है। कोई कोई अविद्यायुक्त पुरुषोंका अज्ञान वज्रपञ्जरकी तरह बर्द्धित होता है, और कोई कोई विद्वान् पुरुषोंके समीप वह अज्ञान तीनों कालमें भी आगमन करनेमें समर्थ नहीं होता। अध्यात्म बिचारमें तत्पर पण्डित लोग संघात बीजभूत मनके बीच जो सत्ता है, उसे ही चैतन्य कहा करते हैं। अनादि अविद्या कर्म्मसे सत्य और मिथ्याका आत्म और आत्मभिन्न एकत्रीकरण निबन्धन व्यवहारमें वर्त्तमान चतुर्व्विध भूतोंके बीच शाश्वत आत्मा किस प्रकार नाशयुक्त होसकता है। आत्मा सर्व्वव्यापी नित्य पदार्थ है, उसका कभी नाश नहीं हो सकता; इसलिये पहिले जो आत्माके नाश विषयमें शङ्का हुई थी उसका कोई अवलम्बन नहीं है। जैसे

नद और नदियें समुद्रमें मिलकर अपने नाम और रूपको त्यागके सागर जलमें लीन होती हैं, वैसेही महदादि घटपट पर्य्यन्त वाह्य वस्तु रूपी सब स्थूल पदार्थ उत्पत्तिकी विपरीतताके अनुसार सूक्ष्मभूतोंमें लयको प्राप्त हुआ करते हैं, और सूक्ष्मभूत विगुण कारण स्वरूपमें लीन होते हैं, इसीको सत्वसंचय कहा जाता है। इसही प्रकार देहरूप उपाधियुक्त जीव सब तरहसे आइनेके सुखकी भांति ग्रहमाण होने पर और उपाधिके नष्ट होनेपर उसका किसी प्रकार भी ज्ञान नहीं होसकता, और ज्ञान न होने पर भी जैसे दर्पणके अभावसे मुखका नाश नहीं होता, वैसेही उपाधिके न रहनेपर भी आत्माके नाशकी शङ्का करनी किसी प्रकार भी सम्भावित नहीं है। जो अप्रमत्त होकर इसी प्रकार मुक्तिका उपाय अवलम्बन करके आत्मध्यानमें तत्पर होते हैं, वे जलसे भींगे हुए कमलपत्रके समान अनिष्टकारी कर्म्म फलोंसे लिप्त नहीं होते। जो अपत्य स्नेह और दैवीकर्म्म निमित्त अनेक प्रकारके दृढ़ पाशोंसे मुक्त हुए हैं, वे जिस समय सुख दुःख परित्याग करते हैं, उस समय पञ्चप्राण, मन, बुद्धि और दशों इन्द्रिय इन सत्तरह अवयवात्मक लिङ्ग शरीरसे रहित होते तथा मुक्त होकर परम गति पाते हैं। मनुष्य श्रुति प्रमाण "तत्त्वमसि" वाक्य और वेद शास्त्रोंमें कहे हुए मङ्गल साधन समदम आदिके सहारे जरा मृत्युके भयसे रहित होकर निवास करते हैं। पुण्य और पाप तथा मोहका कारण सुख दुःख नष्ट होनेपर आसक्ति रहित साधक लोग हृदयाकाशमें स्थित सगुण ब्रह्मको अवलम्बन करके अन्तमें निरवयव निर्लिप्त आत्माको अक्षितामात्र बुद्धि तलसे देखते हैं। जैसे ऊर्णनाभि कीट ततुमय गृहमें वर्त्तमान रहके निवास करता है, वैसेही अविद्याके वशीभूत जीव कर्म्म तन्तुमय गृहमें वास किया करते हैं। जैसे पांशुपिण्ड वेगपूर्व्वक पत्थरपर गिरनेसे चूर होजाता है, उसही प्रकार जीव मुक्त होके दुःखोंको परित्याग किया करता है। जैसे रुरु नाम हरिन विशेष पुराने सींगोंको त्यागके और सर्प निज केंचुली परित्याग करके अलक्षित भावसे गमन करते हैं, वैसेही जीव मुक्त होकर दुःखोंको परित्याग किया करता है। जैसे जलमें गिरे हुए वृक्षको परित्याग करके पक्षी असक्त होके उड़ जाते हैं, वैसेही जीव सुख दुःखको परित्याग करते हुए लिङ्ग शरीरसे रहित और विमुक्त होकर परम गति लाभ कियाकरता है, मिथिलाधिपति जनकने सारे नगरको जलते हुए देखकर कहा था, कि इस अग्निदाहसे मेरा कुछ भी नहीं जलता है। राजा जनदेवने पञ्चशिख आचार्य्यके कहे हुए अमृत समान वचनको सुनकर सबकी पर्य्यालोचना करके अर्थ निश्चय करते हुए परम सुखी और शोकरहित होकर विहार किया था। हे महाराज! जो लोग इस मोक्ष निश्चय विषयका सदा पाठ और अर्थके अनुसार पर्य्यालोचना करते हैं वह दुःखसे रहित होते और किसी उपद्रवको अनुभव नहीं करते और जैसे जनकवंशीय जनदेव पञ्चशिख आचार्य्यके शरणागत होकर मुक्त हुए थे, इस मोक्ष निश्चय विषयको पर्य्यालोचना करनेवाले पुरुष भी उस ही प्रकार मुक्तिलाभ करनेमें समर्थ होते हैं।

२१९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! इस लोकमें मनुष्य किन कर्म्मोंके करनेसे सुखलाभ करता है। किन कर्म्मोंको करनेसे दुःखभागी होता और किस प्रकारके कर्म्मोंको करते हुए सिद्ध पुरुषोंकी तरह निर्भय होकर विचरता है?

भीष्म बोले, वेददर्शी वृद्ध लोग वाह्येन्द्रिय निग्रहरूपी दम गुणको ही प्रशंसा किया करते

हैं, सब वर्णों विशेष करके ब्राह्मणके पक्षमें दम गुण ही परम श्रेष्ठ है। अदान्त पुरुषोंको यथा रीतिसे क्रियासिद्धि पूर्ण नहीं होती। तपस्या और सत्य कहनेका नाम क्रिया है, वे सब क्रिया ही दमगुणमें प्रतिष्ठित होरही हैं; दमगुण तेजकी वृद्धि करता है, दमकोही पण्डित लोग पवित्र कहा करते हैं; पापरहित निर्भय दान्त पुरुष महत् सुखभोग करते हैं। दान्त पुरुष ही परम सुखसे सोते हैं, परम सुखसे जाग्रत हुआ करते हैं और अनायास ही जनसमाजमें विचरते हैं, उनका मन भी सदा प्रसन्न रहता है। दमगुणके जरिये तेज बढ़ता है, तामस प्रकृतिवाले पुरुष उसमें अधिकार नहीं कर सकते। दान्त पुरुष काम आदि शत्रुओंको शरीरमें सदा पृथक् देखते हैं, जैसे बाघ आदि हिन्सक जन्तुओंसे जीवोंको सदा भय हुआ करता है, वैसेही अदान्त पुरुषोंसे मनुष्योंको सदा ही भय होता है। उन अदान्तोंको शासन करनेके लिये विधाताने राजाको उत्पन्न किया है। सब आश्रमोंके बीच दमगुण ही श्रेष्ठ है, सब आश्रमोंमें धर्म्मोपार्ज्जनसे जो फल हुआ करता है, दान्त पुरुषोंमें उससे भी अधिक फल दीखता है, ऐसा प्राचीन लोग कहा करते हैं। अब जिसे दम कहते हैं, उसका स्वरूप कहता हूं।

अदीनता, अभिनिवेश, सन्तोष, सर्द्धधानता, अक्रोध, सरलता, सदा अलौकिक अर्थ कहना, राज आदिकी वार्त्ता कहनी, गुरुपूजा, अनसूया सब भूतोंमें दया और अखलता, लोकापवाद, मिथ्या वचन तथा स्तुति निन्दाका परित्याग ही दमगुणका लक्षण है। जो मोक्षार्थी होकर सुख दुःख आदिके अनुभव विषयमें उत्तर कालमें स्पृहा नहीं करते, जो वैर करनेवाले नहीं हैं और शठतारहित होकर समादरक्रिया करते हैं; निन्दा और प्रशंसामें जिन्हें समज्ञान है वे सच्चरित्र, सदाचार युक्त, प्रसन्नचित्त बुद्धिमान् मनुष्य इस लोकमें सत्कार लाभ करके अन्तकालमें स्वर्गमें जाते हैं और सर्व्वभूतोंसे दुर्लभ अन्नादि लाभ करते हुए सुखी और आनन्दित होते हैं। जो सब भूतोंके हितकर विषयमें रत होकर किसीसे भी द्वेष नहीं करते, महाह्रदकी भांति अक्षोभ्य वे प्रज्ञातृप्त मनुष्य प्रसन्न होते हैं। सब प्राणियोंसे जिसे भय नहीं है और जिससे सब भूतोंको भी भयकी सम्भावना नहीं रहती वेही बुद्धिमान् दान्त पुरुष सब प्राणियोंके नमस्य होते हैं। जो बहुतसे धन पानेपर भी हर्षित नहीं होते और विपद उपस्थित होनेपर भी शोक नहीं करते, उन्हीं परिमित प्राज्ञ दान्त पुरुषोंको ब्राह्मण कहा जाता है। जो शास्त्र ज्ञानसे युक्त होकर भी कर्म्मानुष्ठान करते हैं, साधुओंके आचरित पथमें निवास करते हुए पवित्र हुआ करते हैं, और सदाही वाह्येन्द्रिय निग्रहमें रत रहते हैं, उन्हें महत् फलका भोग प्राप्त होता है। अनसूया क्षमा, शान्ति, सन्तोष, प्रियवादिता, सत्य, दान और अनायस दुरात्माओंकी पदवी नहीं है। काम, क्रोध, लोभ, दूसरेके विषयमें ईर्षा और अपनी बड़ाई करनीही दुरात्माओंको स्पृहणीय है। ब्रह्मचारी मनुष्य काम और क्रोधको वशमें करके जितेन्द्रिय होवें। संशितव्रती ब्राह्मण घोर तपस्याचरण रूपी विक्रम प्रकाश करके कालकी आकांक्षा करते हुए अपाय विरहित और सन्तोष युक्त होकर सब लोकोंमें विचरण किया करते हैं।

२२० अध्याय समाप्त।

———

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! यज्ञदीक्षित और मन्त्रदीक्षित ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य लोग देवताओंको बलिसे बचे हुए भक्षणीय मांस और मद्य आदिको जो स्वर्ग वा पुत्रादिकी कामनासे भक्षण किया करते हैं, वह उचित है, वा नहीं?

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! जो लोग वेदविहित व्रताचरण न करके अभक्ष्य मांस आदि भोजन करते हैं, वे इस लोकमेंही पतित होते हैं, और जो लोग दीक्षा लेके फलानुरागी होकर वैध मांस आदि भक्षण करते हैं, वे यज्ञ आदिसे स्वर्ग फल भोग करके भोगके समाप्त होनेपर पतित हुआ करते हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! साधारण लोग जो देह पीड़ाकर उपवासको तपस्या कहा करते हैं, क्या यही तपस्या है, अथवा दूसरे प्रकारकी कोई तपस्या है?

भीष्म बोले, साधारण लोग जो ऐसा समझते हैं, कि एक महीना वा एक पक्ष उपवास करनेसे तपस्या होती है, आत्मविद्याकी विघ्न स्वरूप वह तपस्या साधुसम्मत नहीं है। भूत भयङ्कर कर्म्म सन्न्यास और भूताराधनही श्रेष्ठ तपस्या है, जो लोग इसी प्रकार तपस्या किया करते हैं, परिवार समूहके सहित सदा वर्त्तमान रहने पर भी उन्हें उपवासी और ब्रह्मचारी कहा जाता है। हे भारत! कुटुम्बयुक्त ब्राह्मण धर्म्मकाम होने पर सदा मुनि वा देव तुल्य हो सकते हैं, और वे स्वप्न रहित अमांसाशी सदा पवित्र अमृताशी, देवता और अतिथियोंकी पूजा करनेवाले, विघसाशी, अतिथिव्रती, श्रद्धावान् और सदा देवताकीभांति अतिथि पूजक होते हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! ब्राह्मण किस प्रकार सदा उपवासी होते हैं, किस प्रकार ब्रह्मचारी हो सकते हैं, किस प्रकार भोजन करनेसे विघसाशी होते हैं?

भीष्म बोले, दिन और रात्रिकालमें भोजनके विहित समयमें भोजनसे भिन्न जो लोग भोजन नहीं करते वेही सदा उपवासी होते हैं; जो ब्राह्मण केवल ऋतुकालमेंही भार्य्यासङ्ग करते हैं, उन्हेंही ब्रह्मचारी कहा जाता है; जो सदा ध्यानमें रत रहते वेही सत्यवादी होते हैं। देवता और पितरोंके भोगसे बचे हुए मांसके अतिरिक्त जो वृथा मांस भक्षण नहीं करते, उन्हें अमांसाशी कहा जाता है। जो सदा दानमें रत रहते, वेही पवित्र होते हैं; जो दिनमें नहीं सोते; उन्हें अस्वप्न कहा जाता है। हे धर्म्मराज! प्रतिदिन सेवकों और अतिथियोंके भोजन करनेके अनन्तर जो लोग भोजन करते हैं, उन्हेंही केवल अमृताशी जानो। अतिथि आदिके भूखे रहनेपर सदा जो भूखे रहते हैं, उनका उसही अनशन व्रतसे स्वर्ग-लोक जय होता है। देवता, पितर, अतिथि और सेवकोंसे बचे हुए अन्नको जो लोग भोजन करते हैं। उन्हेंही पण्डित लोग विघसाशी कहा करते हैं। इन सब ब्राह्मणोंके शुभ लोकोंकी सीमा नहीं है, इनके गृहमें ब्रह्मा और अप्सराओंके सहित देवता लोग उपस्थित हुआ करते हैं। जो देवताओं और पितरोंके सहित अन्नादि उपभोग करते हैं, वे पुत्र पौत्रोंके सहित आनन्दित होते हैं और उन लोगोंकी सबसे श्रेष्ठ उत्तम गति हुआ करती है।

२२१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतसत्तम पितामह! इसलोकमें शुभ वा अशुभ कर्म्म जो कि अवश्यही पुरुषोंको फलभागी करते हैं, पुरुष उन शुभाशुभ कर्म्मोंका कर्त्ता होता है, वा नहीं; उस विषयमें मुझे सन्देह है, इसलिये आपके समीप इस विषयको यथार्थ रूपसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! इस विषयमें प्राचीन लोग प्रह्लाद और इन्द्रके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। किसी समय फलकी अभिलाषासे रहित पापहीन, बहुशास्त्रदर्शी, निरालसी, निरहङ्कारी, सत्त्वगुणावलम्बी, निज योग्य शम दम आदि गुणोंमें अनुरक्त स्तुति निन्दामें तुल्यबुद्धि दान्त, सूने

रहमें बैठे हुए जिन्होंने स्थावर जङ्गम सब जीवोंकी उत्पत्ति और प्रलयके कारण परमात्माको जाना है; जो अप्रिय विषयसे क्रुद्ध और प्रिय विषयलाभमें हर्षित नहीं होते, सुवर्ण और मट्टीके ढेलेमें जिसकी समदृष्टि है, जिन्होंने आनन्दरूप चिन्मात्र आत्मविषयका कुतकनमिभूत होकर निश्चय किया है और जीवोंके बीच श्रेष्ठ हिरण्यगर्भ अपकृष्ट कीट आदि पर्य्यन्त जाना है; जो सर्व्वज्ञ समदर्शी और संयतेन्द्रिय हैं, उस एकान्तमें बैठे हुए प्रह्लादके समीप इन्द्र उपस्थित होके उनके बुद्धिकी परीक्षा करनेकी इच्छासे यह वचन बोले, हे प्रह्लाद! इस लोकमें जिन गुणोंके रहनेसे लोगोंके बीच पुरुष सबसे ही सम्मत होता है, वे सब स्थिर गुण तुममें दीखते हैं और तुम्हारी बुद्धि बालककी भांति राग द्वेषसे रहित दीख पड़ती है। तुम आत्माको मनन करते हुए आत्मज्ञानका श्रेष्ठ साधन क्या समझते हो? हे प्रह्लाद! तुम पाशबद्ध स्थानच्युत और श्रीहीन होने पर भी शोचनीय विषयमें शोक नहीं करते हो। हे दैत्यवंशप्रसूत प्रह्लाद! तुम बुद्धिलाभ वा सन्तोषसेही अपनी विपद देखकर भी स्वस्थचित्त हो रहे हो, निश्चितबुद्धि धैर्य्यशाली प्रह्लाद देवराजका ऐसा वचन सुनके निज प्रज्ञा वर्णन करते हुए मनोहर वचनसे कहने लगे।

प्रह्लाद बोले, जो जीवोंकी प्रवृत्ति और निवृत्ति गतिको नहीं जानते अर्थात् पुरुषोंके भोग और अपवर्ग साधनके निमित्त अनुलोम प्रतिलोम परिणामवती मूलप्रकृतिमें जिन्हें आत्म भिन्न ज्ञान नहीं है, आत्मामें बुद्धि धर्म्म कर्त्तृत्व, भोक्तृत्व आदि आरोपित करनेवाले उन पुरुषोंकी बुद्धि मूढ़ताके कारण स्तम्भित होती है, और जिसे जीव ब्रह्ममें ऐक्य ज्ञान है; उसकी बुद्धि स्तम्भ नहीं होती। भाव और अभाव सब पदार्थोंमें स्वभावसेही प्रवृत्त और निवृत्त होता है अर्थात् जैसे बछड़ा उत्पन्न होनेके पहलेही गौवोंके रुधिरपूरित स्तनमें दूध उत्पन्न होता है, उस समय उसके प्रवर्त्तक वात्सल्य न रहने पर भी जैसे स्वाभाविक क्षीरोत्पत्ति होती है, वैसे ही सब पदार्थ स्वभावसे ही उत्पन्न होते हैं, उनमें प्रवर्त्तककी अपेक्षा नहीं है; इसलिये पुरुषार्थका भी प्रयोजन नहीं है। यदि पुरुषार्थ अथवा भोग और अपवर्ग न रहे, तब कोई जगत्कर्त्ताकी आवश्यकता नहीं होती है; इसलिये आत्मा यदि अकर्त्ता हो, तो इस शरीरमें "मैं" यह अभिमान अविद्यासे स्वयं उत्पन्न हो सकता है। जो पुरुष साधु वा असाधु, होते आत्माको कर्त्ता समझे सुझे बोध होता है, उसकी दोषवती बुद्धि तत्त्वपथको नहीं जान सकती। हे देवेश! यदि पुरुषही कर्त्ता हो, तो उसके आत्म कल्याणके निमित्त अवश्यही सब कार्य्य सिद्ध हों, और पुरुष कदापि पराभूत न होवे। जब कि हितके वास्ते यत्नवान् मनुष्योंकी अनिष्ट सिद्ध और अर्थनिरोध दीखता है, तब किस लिये पुरुषार्थ स्वीकार किया जा सकता है। अदृष्टकी अनुकूलता न रहने पर यदि कार्य्यमें व्याघात हो, तब आत्महितमें यत्नवान् मनुष्योंके अनिष्ट अदृष्टकी उत्पत्ति युक्तिसङ्गत नहीं है, क्यों कि भोक्ताके समान नियत कर्त्ता न रहने पर भोक्ता भी नहीं रहता। ईश्वर और काल स्वभावकाही नामान्तर है, क्योंकि कोई कोई पुरुषके प्रयत्न न रहने पर भी स्वाभाविक अनिष्ट सिद्धि और इष्ट तिरोधान होते दीख पड़ता है। कोई कोई केवल स्वरूप बनाके कोई कोई अत्यन्त बुद्धियुक्त होकर अल्पबुद्धि कुरूप लोगोंसे धनागम लाभकी इच्छा करते हुए दिखाई देते हैं। जब कि सुख दुःख आदि सब शुभाशुभ गुण स्वभाव प्रेरित होकर पुरुषोंमें निविष्ट होते हैं, तब मैं सुखी हूं, मैं कर्त्ता हूं, मैं भोक्ता हूं, इत्यादि अभिमानके कारण कुछ भी नहीं हैं। सुख दुःख आदि सब विषय

स्वाभाविक हुआ करते हैं, ऐसा मेरे मनमें निश्चय है और क्या कहूं, मेरे मतमें युक्ति और आत्मज्ञान स्वभावसे स्वतन्त्र नहीं है, इस लोकमें कर्म्म जनित शुभाशुभ फल भोग प्राप्त हुआ करता है, इसे सब कोई स्वीकार करते हैं, इसलिये अब मैं सब कर्म्मोंका विशेष विवरण कहता हूं सुनो। जैसे अन्न भाजी वायस उसे प्रकाश करना जानता है, वैसेही सब कर्म्म स्वभावसेही असाधारण धर्म्म हैं, अर्थात् सब कर्म्मही स्वभावको प्रकाश करते हैं। जैसे तागे पाटके कारण होनेसे तत्तुनिष्ठ शुक्लादि गुण पटगत विचित्रतामें कारण होते हैं, वैसेही स्वभावही जन्मादि मात्रका हेतु है। जो पुरुष धर्म्माधर्म्म आदि सब विकारोंको जानते हैं, और त्रिगुणमयी प्रकृतिसे श्रेष्ठ उपादान प्रकृति अर्थात् ब्रह्मको नहीं जानते, उन कर्म्म और प्रकृतिके भेददर्शी पुरुषोंमें मूढ़तासे जड़ता हुआ करती है, और जो दोनोंकी ऐक्यता अवलोकन करते हैं, उनमें जड़ता नहीं होती स्वभावसे उत्पन्न हुए सब पदार्थोंको जिन्होंने निश्चय रूपसे जाना है दर्प वा अभिमान उनका क्या करेगा। हे देवराज! मैं सब धर्म्म, विधि और सब भूतोंकी अनित्यता विशेष रूपसे जानता हूं, सब वस्तुही अनित्य हैं, इसही निमित्त शोक नहीं करता। मैं ममता हीन, निरहङ्कार, वासना रहित, बन्धनसे मुक्त, स्वरूप और देह आदिमें अनभिमानके कारण स्वरूपसे अप्रच्युत होकर जीवोंको उत्पत्ति और प्रलयके कारण परब्रह्मको अवलोकन करता हूं। हे शक्र! जो लोग शुद्धबुद्धि जितेन्द्रिय, परितृप्त और वासना रहित होकर आत्मविद्याके सहारे सब विषयोंको देखते हैं, उन्हें कुछ क्लेश नहीं है। विश्वकर्त्री प्रकृति वा धर्म्माधर्म्मके फल सुख दुःखमें मुझे प्रीति वा द्वेष नहीं है; मैं इस समय किसीको भी द्वेष्टा नहीं देखता हूं और पुत्र, मित्र आदिकी भांति ममता करनेवाले किसी पुरुषको भी अवलोकन नहीं करता हूं। हे इन्द्र! मैं कभी स्वर्ग पाताल अथवा मर्त्त्यलोककी कामना नहीं करता। ऐसा नहीं कह सकते, ज्ञानके विषय विज्ञान अर्थात् बुद्धि तत्त्वमें और आत्मा स्वरूप चिदात्मामें कुछ सुख नहीं है, आत्मा धर्म्माधर्म्म और उसके फल सुख दुःखका आश्रय नहीं है, इसही लिये मैं कुछ कामना नहीं करता, केवल ज्ञानसे तृप्त होकर निवास करता हूं।

इन्द्र बोले, हे प्रह्लाद! मैं पूछता हूं, कि जिस उपायसे ऐसा ज्ञान और शान्ति लाभ हो उसे तुम यथार्थ रीतिसे मेरे समीप वर्णन करो।

प्रह्लाद बोले, हे सुरराज! सरलता, सावधानता, प्रसन्नता, जितेन्द्रियता और वृद्धोंकी सेवासे पुरुष मोक्ष लाभ करनेमें समर्थ होता है। पुरुष स्वभावसेही ज्ञान लाभ करता है, और स्वभावसेही शान्ति प्राप्त होती है; आप जो कुछ देखते हैं, वे सब स्वभाविकही सिद्ध होते हैं। हे महाराज! दैत्यपति प्रह्लादने जब ऐसा कहा, तब त्रिलोकेश्वर देवराज विस्मययुक्त हुए और उस समय वह प्रसन्न होकर प्रह्लादके बचनका समादर करके उनका सत्कार और आमन्त्रण करके निज स्थानपर चले गये।

२२२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! राजा जैसी बुद्धिके सहारे विपद्‌ग्रस्त और श्रीभ्रष्ट होकर महीमण्डलमें बिचरते हैं; आप मेरे समीप उस विषयको वर्णन करिये।

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें विरोचनपुत्र बलि और देवराज इन्द्रके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासको कहा करते हैं। देवराज इन्द्रने सब असुरोंको जीतके सर्व्व लोक पितामह ब्रह्माके पास जाके प्रणाम करनेके अनन्तर हाथ जोड़के बलिका विषय पूछा।

इन्द्र बोले, हे ब्रह्मन् ! सदा धन दान करनेपर भी जिसका धन कभी नहीं घटता, मैं उस बलिको नहीं जानता; इसलिये आप उस बलिका विषय वर्णन करिये। वह बलिही वायु, बलिही वरुण, बलिही सूर्य्य, बलिही चन्द्रमा और बलिही अग्नि होकर सब जीवोंको ताप देता है, तथा वह बलिही जल स्वरूप हुआ करता है, मैं उस बलिको नहीं जानता। हे ब्रह्मन् ! इसलिये आप मेरे समीप उस बलिका विषय वर्णन करिये। वह बलिही अस्तमय होता है, बलिही सब दिशाओंको प्रकाशित करता है, बलिही अतन्द्रित होकर यथाकालमें जलकी वर्षा किया करता है। हे ब्रह्मन् ! मैं उस बलिको नहीं जानता इसलिये आप मेरे समीप उसका विषय वर्णन करिये।

ब्रह्मा बोले, हे इन्द्र ! तुम जो बलिका विषय पूछते हो, वह तुम्हारे पक्षमें कल्याणकारी नहीं है, तब पूछनेपर झूठ न कहना चाहिये, इसही लिये मैं तुम्हारे निकट बलिका विषय वर्णन करता हूं। हे शचीश्वर ! ऊंट, बैल, गधे और घोड़ोंमेंसे कोई एक रूपधरके सूने स्थानमें जो वरिष्ठ होकर वास करे, वही बलि है।

इन्द्र बोले, हे ब्रह्मन् ! यदि मैं सूने स्थानमें बलिके साथ मिलूं, तो उसे मारूंगा; वा नहीं ? उस विषयमें आप मुझे आज्ञा करिये।

ब्रह्मा बोले, हे इन्द्र ! तुम बलिकी हिंसा न करना, बलि वध्य नहीं है। हे देवराज ! तुम इच्छानुसार बलिके निकट नीति पूछना।

भीष्म बोले, जब भगवान् ब्रह्माने महेन्द्रसे ऐसा कहा, तब वह उसही समय ऐरावतपर चढ़के शोभायुक्त होकर पृथ्वीमण्डलपर विचरने लगे, अनन्तर भगवान् पितामहने जिस प्रकार कहा था, उसके अनुसार ही उन्होंने सूने स्थानमें स्थित खर-वेषधारी बलिको अवलोकन किया। इन्द्र उसे देखकर बोले, हे दानव ! तुम खरयोनिमें प्राप्त होकर तुष भक्षण कर रहे हो, इस अधम योनिमें प्राप्त होनेसे तुम्हें दुःख होता है, वा नहीं ? मैं देखता हूं, तुम्हारा अदृष्ट शत्रुओंके वशीभूत, श्रीहीन, मित्ररहित, भ्रष्टवीर्य्य और नष्ट पराक्रम हुआ है। तुम जो स्वजनोंमें घिरकर सब लोकोंको परितापित करते हुए हम लोगोंको अग्राह्य करके सहस्रों भांतिके यानोंके जरिये गमन करते थे दैत्यलोग तुम्हारे मुखापेक्षी होकर तुम्हारे ही शासनमें निवास करते थे पृथ्वीमें तुम्हारे ही ऐश्वर्य्यसे बिना जोते ही शस्य उत्पन्न होते थे; अब तुम समुद्रके पूरब किनारे बिलमें वास करते हो इससे तुम्हें जो दुःख होता है, उसके लिये तुम शोक करते हो, वा नहीं ? पहिले जब तुम स्वजनोंको धन बांटके देते थे, उस समय तुम्हारा मन कैसा हुआ था। अनेक वर्ष पर्य्यन्त, श्रीयुक्त रहके जब तुम बिहार करते थे, उस समय पुष्कर मालिनी सुवर्णके समान रूपवाली सहस्रों सुरकामिनी तुम्हारे समीप उपस्थित होकर नृत्य करती थीं। हे दानवेश्वर ! तुम्हारा मन उस समयमें कैसा था और इस समयमें ही किस प्रकार है ? पहिले तुम्हारा महत्रत्नोंसे भूषित सुवर्णमय छत्र था, उस समय तुम्हारे समीप छः हजार गन्धर्व्व सात प्रकार नृत्य करते थे। तुमने जब यज्ञ किये थे उस समय तुम्हारे सब यज्ञयूप सुवर्णमय थे; जिस यज्ञसे तुमने पहिले दश अयुत अनन्तर दश हजार और उसके बाद सहस्र गोदान किया था, हे दैत्यराज ! उस समय तुम्हारी बुद्धि किस प्रकार थी। जब तुमने यज्ञ करनेमें रत होकर सब पृथ्वी मण्डलको यज्ञकार्य्यमें अपर्य्याप्त समझके उसे परित्याग करके गमन किया था; उस समय तुम्हारे अन्तःकरणमें कैसे भाव उदय हुए थे ? हे असुरेश्वर ! अब तुम्हारे सुवर्णमय जलपात्र, छत्र और दोनों चमर नहीं दीखते हैं तथा ब्रह्माने तुम्हें जो माला प्रदान की थी, उसे भी नहीं देखता हूं।

बलि बोले, हे इन्द्र! तुम मेरे छत्र, चमर और सुवर्णमय जलपात्र नहीं देखते हो; मेरे सब रत्न मूलप्रकृतिके बीच अन्तर्हित होरहे हैं, इसहीसे तुम उस विषयको पूछते हो; जब मेरा समय होगा, तब तुम मेरे उक्त रत्नोंको देखोगे। इस समय तुम समृद्धियुक्त और मैं असमृद्ध हूं, इसलिये तुम जो मेरे समीप बड़ाई करते हो, वह तुम्हारी कीर्त्ति और कुलके अनुरूप नहीं है। बुद्धिमान, ज्ञानतृप्त, क्षमाशील, साधु मनीषि पुरुष दुःखके समय शोक नहीं करते और समृद्धिकालमें भी हर्षित नहीं होते। हे पुरन्दर! तुम तुच्छबुद्धिके कारण ऐसा बचन कहते हो। जब तुम मेरे समान होगे, तब ऐसा न कह सकोगे।

२२३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे भरतकुल प्रदीप! बलि जब प्रत्युत्तर देनेके लिये सर्पकी तरह गर्ज्जने लगा, तब देवराज हंसके फिर उससे यह बचन बोले।

इन्द्र बोले, हे बलिराज! तुम जो स्वजनोंके बीच घिरके सब लोकोंको परितापित और हम लोगोंकी अवज्ञा करते हुए सहस्र प्रकारके यानोंसे गमन करते थे, इस समय उन स्वजनोंसे और मित्रोंसे परित्यक्त होकर अपनी यह अत्यन्त दीनदशा देखकर शोक करते हो, वा नहीं? पहले अतुलप्रीति लाभ करके तथा सब लोकोंको अपने वशमें रखके इस समय यह बाह्य विनिपात लाभ करके दुःखित होते हो, वा नहीं?

बलि बोले, हे देवराज! इस जगत्में कालक्रमसे सब वस्तु अनित्य होती हैं, उसे देखकर मैं किसी विषयमें शोक नहीं करता; क्यों कि जगत्में जो कुछ है, वह सभी विनश्वर है। हे सुरराज! जीवोंके इन सब शरीरोंका अन्त होगा, इसहीसे मैं किसी विषयमें शोक नहीं करता; मैं यह नहीं कहता, कि मेरी यह दशा मेरे अपराधसे ही हुई है। जीवन और शरीर एक ही समयमें उत्पन्न होते हैं, दोनो एकत्र बर्द्धित और एकत्र ही विनष्ट हुआ करते हैं। मैं ऐसा शरीर पाके केवल अवश हुआ हूं, सो मत समझो; मैं इस विषयके तत्वोंको जानता हूं और जाननेसे ही मुझे किसी विषयमें क्लेश नहीं है। जैसे प्रवाह समुद्रमें जाके लीन होता है, वैसे ही जीवोंकी मृत्यु होनेसे ही निष्पत्ति हुई। हे बज्रधर! जो लोग इसे पूरी रीतिसे जानते हैं, वे सब मनुष्य शोक नहीं करते और जो लोग रजोगुणसे ग्रस्त और मोहयुक्त होकर इस विषयमें मूर्ख रहते हैं, और जिनकी बुद्धि नष्ट होजाती है वेही कृच्छ्रताको प्राप्त होके दुःखित हुआ करते हैं। मनुष्य ज्ञानलाभसेही सब पापोंको खण्डन करता है। पापरहित मनुष्य सतोगुण लाभ किया करता है, सतोगुण अवलम्बन करनेवाले मनुष्य पूर्णरूपसे प्रसन्न होते हैं। जो लोग सतोगुणसे निवृत्त होते हैं, वे बार बार जन्म ग्रहण किया करते हैं, और काम आदिके वशमें होकर जन्म जरा प्रभृति विविध दुःखोंको भोगते हुए दीनभावसे परिताप करते हैं। मैं कामादि विषयसिद्धि, अनर्थ, जीवन, मरण, सुख और दुःखके फलमें द्वेष और कामना नहीं करता। निर्जीव शरीरकाही नाश होता है, जीवका कदापि नाश नहीं होता। जो मनुष्य जिस किसी जीवका बध करता है, वह अर्थात् "मैं हन्ता हूं," ऐसा अभिमानी पुरुष भी मरता है, जो मारता है, और जो मरता है, वे दोनोंही कौन कर्त्ता है, उसे नहीं जानते। हे इन्द्र! मारके वा जय करके जो कोई पुरुष पुरुषत्व प्रकाशित करता है, वास्तवमें वह कर्त्ता नहीं है, जो कर्त्ता है, वही उस कार्य्यको किया करता है। लोकोंकी उत्पत्ति और नाशका कर्त्ता कौन है, ऐसा संशय उपस्थित होनेपर

उस समय यह बोध होता है, कि उत्पत्तियुक्त मनही उसे सिद्ध करता है ; परन्तु मनका भी दूसरा कर्त्ता है। पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और अग्नि ये पांचो जीवोंकी उत्पत्तिके विषयमें कारण हैं ; इसलिये उस विषयमें शोक करनेकी क्या आवश्यकता है। चाहे मनुष्य विविध विद्यासे युक्त हो, अथवा अविद्वान् ही हो ; बलवान् हो या निर्ब्बल हो होवे ; सुन्दर हो, वा कुरूपही हो ; सुभग हो अथवा दुर्भगही होवे, अत्यन्त गम्भीर काल निज तेजके सहारे सबकोही संग्रह कर रहा है, जब कि जानता हूं, किसीभी कालके वशीभूत होते हैं, तब मुझे किसी विषयमें दुःख नहीं है। जब काल स्वरूप ईश्वर पहिले जलाता है, तब अग्नि पीछे भस्म करती है ; ईश्वरके जरिये मृत शरीरको मनुष्य पीछे नष्ट किया करता है। ईश्वर जिसे पहले नष्ट करता है, वही पीछे नष्ट होता है ; ईश्वर जो दान करता है, मनुष्य उसही प्राप्त होनेवाले विषयको पाता है ; इस पुण्य पापसे रहित कालरूपी विधाताका पार नहीं है, इससे परम्पार भी दृष्टिगोचर नहीं होता ; मैं चिन्ता करनेपर भी कालका अन्त नहीं देखता, हे शचिपति ! मेरे प्रत्यक्षमें यदि काल सब भूतोंका नाश न करता, तो अवश्यही मुझे हर्ष, दर्प और क्रोध हो सकता। मैं गर्द्दभरूप धरके निर्ज्जन स्थानमें तृण भक्षण करता हूं, उसे जानके तुम आके मेरी निन्दा करते हो ; परन्तु जिन सब भयानक रूपोंको देखकर तुम भी भागनेका मार्ग देखने लगते हो, मैं इच्छा करनेसे अनायासही वैसे अनेक प्रकारके भयङ्कररूप धारण कर सकता हूं। हे शक्र ! कालही सबका संहार करता है, कालही सब प्रदान करता है, सभी कालका विधान है ; इसलिये तुम पौरुष प्रकाश मत करो। हे पुरन्दर। जब मैं पहले क्रुद्ध हुआ था, उस समय सचराचर समस्त लोक व्यथित हुए थे ; हे शक्र ! इससे मैंने इस जगत्‌को ह्रास वृद्धि रूप सनातन धर्म्मको विशेष रूपसे जाना है ; तुम इसे जाननेसे स्वयंही विस्मययुक्त होगे ऐश्वर्य्य और ऐश्वर्य्यका आविष्कार कदापि अपने अधीन नहीं है।

हे मघवन् ! कौमार अवस्थामें तुम्हारा चित्त जैसा था, इस समय भी वैसा ही है, उसे देखकर तुम नैष्ठिक बुद्धि लाभ करो। हे वासव ! तुम सब जानतेही हो, कि देव मनुष्य पितर, गन्धर्व्व, राक्षस, और सर्प भी मेरे वशमें थे। "वैरोचन बलि जिस दिशामें है, उस दिशाकोही नमस्कार है," बुद्धि, मत्सरतासे मोहित मनुष्य मुझे ऐसाही समझते थे। हे शचिपति ! इस समय मैं उसके लिये वा आत्मभ्रंशके निमित्त शोक नहीं करता ; मेरी बुद्धिमें यही निश्चय हुआ है कि मैं ईश्वरके वशमें निवास करता हूं। हे शक्र ! जब देखता हूं, सत्कुलमें उत्पन्न हुए सुन्दर रूपवाले प्रतापवान् मनुष्य दुःखसे जीवन बिता रहे हैं, तब कहना पड़ेगा, कि उनका भवितव्य वैसाही है और नीचवंशमें उत्पन्न हुए अत्यन्त मूढ़ अशुभजन्मा मनुष्य कुटुम्बके सहित परम सुखसे जीवनयात्राका निर्व्वाह कर रहे हैं, उनकीभी होतव्यता वैसी ही है। हे वासव ! देखा जाता है, उत्तम लक्षणवाली सुन्दरतायुक्त स्त्रियां दुर्भगा होती हैं और कुलक्षणसे युक्त कुरूपवाली स्त्री भी सुभगा होती हैं। हे बज्रधर ! तुम इस प्रकार समृद्धियुक्त होरहे हो और मैं ऐसी अवस्थामें पड़ा हूं, यह तुम्हारा भी कृत नहीं है, और मेरा भी कृत नहीं है। हे देवराज ! तुमने ऐसी समृद्धिके लिये कोई कर्म्म नहीं किये और मैंने भी ऐसी अवस्थाके निमित्त कोई कर्म्म नहीं किया है, समृद्धि वा असमृद्धि कालक्रमसे हुआ करती है। तुम श्रीमान् द्युतिमान और देवराज होकर बिराजते हुए मेरे विषयमें गर्ज्ज रहे हो परन्तु काल मुझे यदि आक्रमण न

किये होता और मैं इस प्रकार गधेका रूप धारण न किये होता, तो इसही समय मुष्टिक प्रहारसे तुम्हें वज्रके सहित गिरा सकता । जो हो, यह विक्रम प्रकाश करनेका समय नहीं है, शान्ति काल उपस्थित हुआ है ; कालही सबको स्थापित करता है, कालही सबको पकाया करता है । मैंने दानवोंका राजा और पूजनीय होकर सबके विषयमें तर्ज्जन गर्ज्जन और प्रताप प्रकाश किया था ; काल यदि मेरे निकट न आवेगा, तो और किसके समीप जायगा ।

हे देवराज मैंने अकेलेही तुम्हारे महानुभाव द्वादश- आदित्योंके तेजको धारण किया था, मैंनेही मेघ रूप धरके जलकी वर्षा करता था, मैंही सूर्य्यरूप धरके तीनों लोकोंको सन्तापित और विद्योतित करता था, मैंही तीनों लोकोंकी रक्षा करता था, और इच्छा करनेसेही नष्ट कर सकता था, मैंही दान और प्रदान करता था, मैंही सबको स्थिर और नियमित करता था ; तीनों लोकोंके बीच मैंही सबके निग्रहानिग्रहमें समर्थ शासनकर्त्ता था । हे देवराज ! इस समय मेरा वह सब प्रभुत्व निवृत्त हुआ है, मैं काल सैन्यसे आक्रान्त हुआ हूं, इसलिये वह सब मुझे अब मालूम नहीं होता है । हे शचिपति ! मैं कर्त्ता नहीं हूं, और तुम भी कर्त्ता नहीं हो तथा दूसरे कोई भी कर्त्ता नहीं हैं । सब लोक स्वभावसेही कालक्रमसे पालित और संहृत होरहे हैं । मास और पक्षही जिसके अधिष्ठान जो अहोरात्रिके जरिये सब तरहसे परिपूरित होरहा है, बसन्त आदि ऋतुओंमें ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंके सहारे जिसे जाना जाता है, वही एकमात्र निर्व्विषय ध्यानगम्य कालको वेद जाननेवाले पुरुष ब्रह्म कहा करते हैं । कोई कोई बुद्धिबल अवलम्बन करके इस समस्त कालात्मक जगत्‌को ब्रह्मरूपसे विचारनेको कहते हैं । इस चिन्ताके पांच विषय हैं ; अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, और आनन्दमय कोश, ये प्रत्येक वाम वा दक्षिण पार्श्व, शिर, मध्य देश और पश्चाद्भाग इन पञ्च-अवयव विशिष्ट हैं, ऐसा श्रुतिसे जाना जाता है । पण्डित लोग कहा करते हैं, पारावार रहित समुद्रके समान ब्रह्म अत्यन्त गम्भीर वा अगम अर्थात् तर्कसे अगम्य है, और शास्त्रके अनुसार मालूम होनेपर भी अत्यन्त दुःखसे उसमें प्रवेश किया जाता है । उसका न आदि है, न अन्त है ; वह जीव रूपसे अक्षर अर्थात् निर्व्विशेष वस्तु है, और जैसे शुक्ति स्वयं रजत रूपसे जन्म नाश रहित हुआ करती है, वैसेही जन्म नाशसे रहित होके भी जगत् रूपसे क्षर अर्थात् विनश्वर है । वह स्वयं उपाधिरहित है, परन्तु बुद्धि तत्वमें प्रवेश करके सोपाधिक होता है, तत्वदर्शी लोग उसे उपाधि धर्म्म स्पर्श रहित समझते हैं और चैतन्य रूपसे परिणत पञ्चमहाभूत सम्बन्धीय सत्, चित्, आनन्द और अनन्तके विपरीत धर्म्म, अनृत, जड़, दुःख और परिच्छिन्नात्म दुर्गमत्व भगवान् वा अविद्याके जरिये आत्मामें समझा करते हैं ; परन्तु ये अविद्यासे प्रकाशित दुःख आदि आत्माके गम्य नहीं हैं । ब्रह्मा, रुद्र अथवा विष्णु आदि अन्य कोई भी जिसका प्रभु नहीं है वही आत्माका स्वरूप है, इससे आत्मासे बढ़के दूसरा अधिपति कोई भी नहीं है ।

हे इन्द्र ! सब भूतोंकी जो गति होती है, उसे प्राप्त न करके तुम कहां जाओगे ? भागनेपर भी उसे परित्याग नहीं किया जा सकता और स्थित रहनेपर भी वह परित्यक्त नहीं होती । इन्द्रियें इस आत्माको देखनेमें समर्थ नहीं हैं ; कोई इस आत्माको अग्नि कहा करते हैं, कर्म्मपरायण मनुष्य इस आत्माको सर्व्वकर्म्म समर्पणीय प्रजापति समझते हैं । आत्माके एक होनेपर भी लोग उसे ऋतु, महीना, पक्ष,

दिवस, क्षण, पूर्व्वान्ह, अपरान्ह, मध्यान्ह और मुहूर्त्तादि भेदसे अनेक प्रकार कहा करते हैं। हे देवराज! यह स्थावर जङ्गमात्मक समस्त जगत् जिसके वशमें है, उसे ही कालरूपसे मालूम करो।

हे शचिपति! तुम्हारे समान बलवीर्य्यसे युक्त कई हजार इन्द्र गुजर गये, तुम प्रबल बलदर्पित देवताओंके राजा हुए हो; परन्तु समय उपस्थित होनेपर महाबलवान् काल तुम्हें शान्तिके स्थानमें भेजेगा। हे शक्र! जो काल इन सबको संहार कर रहा है, तुम उसका भय करके स्थिर रहो, मैं अथवा तुम तथा पूर्व्व पुरुषोंमेंसे कोई भी कालको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं है। यह जो तुम उत्तम राजश्री लाभ करके "राजश्री मुझमेंही है," ऐसा समझ रहे हो, वह मिथ्या है; क्यों कि यह राजलक्ष्मी एक स्थानमें निवास नहीं करती। हे देवराज! यह चपला राजलक्ष्मी तुमसे भी श्रेष्ठ हजारों इन्द्रके निकट और मेरे समीप निवास करती थी; अब मुझे छोड़के तुम्हें अवलम्बन किया है; हे देवेश! इससे तुम फिर ऐसा अहंकार मत करना; तुम्हें अवश्य शान्त होना चाहिये। चपला राजलक्ष्मी तुम्हें भी इसही प्रकार अहंकारी जानके शीघ्रही दूसरेके निकट गमन करेगी।

२२४ अध्याय समाप्त।

—— ——

अनन्तर देवराजने उस समय महात्मा बलिके शरीरसे साक्षात् लक्ष्मीको निकलती हुई देखा। भगवान् पाकशासन इन्द्र विस्मयोत्फुल्ल नेत्रसे उस प्रभापुञ्जसे जलती हुई लक्ष्मीको देखकर बलिसे उसका विषय पूछने लगे।

इन्द्र बोले, हे दैत्यराज! यह जो निज तेजसे प्रकाशमान केयूरवती दर्शनीय रूपवाली शिखण्डशालिनी स्त्री तुम्हारे देहसे निकली, वह कौन है?

बलि बोले, हे इन्द्र मैं नहीं जानता, कि यह आसुरी, दैवी अथवा मानवी है। तुम्हारी इच्छा हो, इससे पूछो, वा मत पूछो।

इन्द्र बोले, हे शुचिस्मिते! तुम कौन हो, मनोहर रूप और केशपाश धारण करके बलिके शरीरसे क्यों निकली; तुम्हारा क्या नाम है, उसे मैं नहीं जानता; इससे मेरे समीप अपना नाम कहो। हे सुभ्रु! तुम कौन हो, दैत्येश्वर बलिको परित्याग करके निज तेजसे प्रकाशित होकर मायाकी भांति क्यों खड़ी होरही हो? मैं पूछता हूं, तुम मुझसे वही कहो।

लक्ष्मी बोली, हे वासव! विरोचन मुझे नहीं जानते थे और यह विरोचनपुत्र बलि भी मुझे नहीं जानता; लोग मुझे दुःसहा और विधित्सा समझते हैं, मुझे कोई भूति, कोई लक्ष्मी और कोई कोई श्री कहा करते हैं। हे देवराज! तुम मुझे नहीं जानते और सब देवता भी मुझे नहीं जानते।

इन्द्र बोले, हे दुःसहे! बहुत समय तक बलिके स्थानमें वास करके अब मेरे निमित्त अथवा बलिके ही वास्ते इन्हें परित्याग करती हो, उसे कहो।

लक्ष्मी बोली, हे शक्र! धाता वा विधाता मुझे किसी प्रकार स्थिर नहीं रख सकते, काल ही मुझे परिवर्त्तित करता है; हे देवराज! इसलिये तुम कालकी अवज्ञा मत करो।

इन्द्र बोले, हे शुचिस्मिते! तुमने किस कारणसे बलिको परित्याग किया और मुझे किसलिये परित्याग नहीं करती हो, मेरे समीप उसे कहो।

लक्ष्मी बोली, हे देवराज! मैं सत्य, दान, व्रत, तपस्या, पराक्रम और धर्म्ममें निवास करती हूं; बलि इन सब विषयोंसे परांमुख हुए हैं। ये पहले ब्रह्मनिष्ठ, सत्यवादी और जितेन्द्रिय होकर अन्तमें ब्राह्मणोंकी असूया

करती और जूठे रहके घृत छूते थे। पहिले यज्ञ-शील होकर पीछे यह मूढ़बुद्धि कालसे अत्यन्त पीड़ित होकर "मेरी ही पूजा करो" सब लोगोंसे ऐसा ही वचन कहता था। हे देव-राज! इसही लिये मैं इसे त्यागके तुम्हारे समीप वास करती हूं; तुम सावधान होकर तपस्या और विक्रमके सहारे मुझे धारण करो।

इन्द्र बोले, हे कमलालये! देवता, मनुष्य अथवा सब प्राणियोंके बीच ऐसा कोई पुरुष नहीं है, जो अकेला तुम्हें धारण करनेमें समर्थ हो।

लक्ष्मी बोली, हे पुरन्दर! यह सत्य है, कि देवता, गन्धर्व्व, असुर वा राक्षसोंमें ऐसा कोई भी नहीं है, जो अकेला मुझे सह्य कर सके।

इन्द्र बोले, हे शुभे! तुम कहो, किस प्रकार मेरे समीप निवास करोगी, मैं वैसाही करूंगा; यह सत्य वचन कहना तुम्हें उचित है।

लक्ष्मी बोली, हे देवेन्द्र! मैं तुम्हारे समीप सदा जिस प्रकार निवास करूंगी, उसे सुनो। तुम वेद विहित विधिके अनुसार मुझे चार हिस्सोंमें विभक्त करो।

इन्द्र बोले, हे कमले! मैं यथा शक्तिसे बलके अनुसार तुम्हें सदा धारण करूंगा, तुम्हारे निकट मेरा कुछ भी व्यतिक्रम न होगा। भूतभाविनी धरणी ही मनुष्योंको धारण किया करती है; इससे धरती तुम्हारा एक पद धारण करे, मुझे बोध होता है, वह तुम्हारा एक चरण धारण करनेमें समर्थ होगी।

लक्ष्मी बोली, यह मैंने भूमिमें एक चरण अर्पण किया, यह भूतलमें प्रतिष्ठित रहेगा। हे इन्द्र! अब मेरे दूसरे चरणका स्थान वर्णन करो।

इन्द्र बोले, जल सब द्रवमय मनुष्योंको पार-वश्या किया करता है, इससे जल ही तुम्हारा दूसरा चरण धारण करे; क्योंकि जल तुम्हारे चरणका सहनेमें समर्थ होगा।

लक्ष्मी बोली, हे देवेन्द्र! यह मैंने दूसरा चरण जलके बीच अर्पण किया, यह जलमें ही प्रतिष्ठित रहेगा अब तीसरे चरणके स्थापित करनेका स्थान बतलाओ।

इन्द्र बोले, वेद, यज्ञ और समस्त देवता जिसमें प्रतिष्ठित हैं वह अग्नि तुम्हारे तीसरे चरणको उत्तम रीतिसे धारण करेगी।

लक्ष्मी बोली, हे इन्द्र! यह जो चरण मैंने अर्पण किया, वह अग्निके बीच प्रतिष्ठित हुआ, अब चौथे चरणके स्थापनका स्थान बतलाओ।

इन्द्र बोले, मनुष्योंके बीच जो साधु पुरुष सत्यवादी और ब्रह्मनिष्ठ हैं, वेही तुम्हारे चौथे चरणको धारण करेंगे, क्योंकि साधु लोग तुम्हारे चरणको धारण करनेमें समर्थ हैं।

लक्ष्मी बोली, हे देवराज! यह जो चरण निक्षेप किया, वह साधुओंके बीच प्रतिष्ठित हुआ; भूतोंके बीच इसी प्रकार मेरे चारों चरण निहित रहे; तुम इसी भांति मुझे धारण करो।

इन्द्र बोले, मैंने सर्व्व भूतोंके ऊपर तुम्हें स्थापित किया; अर्थात् वित्त, तीर्थादि पुण्य यज्ञ आदि धर्म्म और विद्या, ये तुम्हारे चारों चरण भूमि, अग्नि, जल और साधुओंमें प्रति-ष्ठित हुए। मेरा यह वचन सब कोई सुने, जीवोंके बीच जो पुरुष स्तेय, काम, अशौच अथवा अशान्तिसे तुम्हें आहत करेगा, मैं उसे धर्षण करूंगा। अनन्तर लक्ष्मीसे परित्यक्त दैत्यराज बलि कहने लगे।

बलि बोले, सुमेरु पर्व्वतकी प्रदक्षिणा करने-वाले सूर्य्य जैसे पूर्व्वदिशाको प्रकाशित करता है वैसेही उत्तर पश्चिम और दक्षिण दिशाको भी प्रकाशित किया करता है; परन्तु जिस समय क्रमसे सब दिशा नष्ट होंगी और आदित्यम-ण्डल केवल सुमेरुपृष्ठके मध्यवर्त्ती ब्रह्मलोकको दिवसके मध्य भागमें प्रकाशित करेगा, तब वर्त्तमान वैवस्वत-मनुका अधिकार च्युत होने-पर सावर्णिक मनुके भावी-अधिकारके समय

देवताओं और असुरोंमें युद्ध होगा ; उस युद्धमें मैं तुमको फिर जीतूंगा। हे देवराज ! जब सूर्य्य केवल ब्रह्मलोकमें स्थिति करके सब लोकोंको सन्तापित करेगा, उस समय देवासुर संग्राममें मैं तुम्हें जय करूंगा।

इन्द्र बोले, हे दैत्यराज ! "तुम्हें मारना उचित नहीं है," ब्रह्माने मुझे ऐसीही आज्ञा दी है, इसहीसे मैंने तुम्हारे शिरपर वज्र नहीं चलाया। हे दैत्येन्द्र ! तुम्हारी जहां इच्छा हो वहां जाओ, तुम्हारा कल्याण हो ; सूर्य्य मध्यस्थलमें रहके कभी ताप प्रदान न करेगा, स्वयम्भूने पहले ही इसका समय निरूपण किया है, यह सदा सत्य पथमें निवास करते और प्रजाको ताप दान करते हुए भ्रमण करता है ; छःमहीनेके अनन्तर इसकी गति परिवर्त्तित होती है, उसेही अयन कहते हैं; अयन दो प्रकारके हैं, उत्तरायण और दक्षिणायन। यह सब लोकोंमें उक्त दो प्रकारके अयनके सहारे सूर्य्यगर्म्मी और शीतकी वर्षा करते हुए भ्रमण कर रहा है।

भीष्म बोले, हे भारत ! दैत्यराज बलि महेन्द्रका ऐसा वचन सुनके दक्षिण तरफ चले गये इन्द्रने भी पूर्व्वदिशाकी ओर प्रस्थान किया। सहस्रलोचन इन्द्र बलिके कहे हुए यह अहङ्कार रहित वचन सुनके शून्य मार्गसे स्वर्गमें गये।

२२५ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज ! इस विषयमें शतक्रतु और नमुचिके सम्वाद युक्त इस प्राचीन इतिहासका भी प्रमाण दिया जाता है। एक समय इन्द्रने श्रीहीन होनेपर भी समुद्रकी भांति गम्भीरभावसे बैठे हुए भूतोंकी उत्पत्ति और नाशको जाननेवाले नमुचिके समीप जाके यह वचन कहा, हे नमुचि ! तुम पाशावद्ध पदच्युत शत्रुओंके वशीभूत और श्रीहीन हुए हो, इसलिये ऐसी अवस्थामें पड़के शोक करते हो, वा नहीं ?

नमुचि बोला, हे देवराज ! अनिवार्य्य शोकसे शरीर सन्तापित होता है, शत्रु लोग सन्तुष्ट हुआ करते हैं, शोक कभी दुःखमण्डनका कारण नहीं होता ; इसही लिये मैं शोक नहीं करता। जगत्में जो कुछ वस्तु हैं, सभी विनश्वर हैं। हे सुरेश्वर ! शोक करनेसे रूप नष्ट होता है, शोक करनेसे श्रीहीन होना पड़ता है, सन्तापसे परमायु और धर्म्म नष्ट हुआ करता है ; इसलिये ज्ञानवान् मनुष्योंको उचित है, शोकसे उपस्थित दुःखको त्यागके मनहीमन हृदयके प्रीतिकर कल्याणकी चिन्ता करें। मनुष्य जिस समय कल्याण विषयमें मन लगाता है, तभी उसके सब प्रयोजन निःसन्देह सिद्ध होते हैं। अन्तर्य्यामी रूपसे एकमात्र शासनकर्त्ता वर्त्तमान है, दूसरा कोई भी शास्ता नहीं है। जो गर्भशय्यामें सोये हुए पुरुषको शासित करता है, मैं उसहीके जरिये नियुक्त हुआ हूं, और जैसे जल नीचेकोही ओर जाता है, वैसेही जिस भांति नियुक्त हुआ हूं, उसही प्रकार कार्य्यभार ढोता हूं। वह और मोक्ष इन दोनोंमें तत्वज्ञानसे मोक्षही श्रेष्ठ और गरिष्ठ है, इसे जानकर भी मोक्ष और साधनके लिये शमदम आदि विषयोंमें यत्न नहीं कर सकता ; धर्म्मयुक्त और अधर्म्म विहित आशामें वशीभूत होकर समय बिताते हुए शास्ताके जरिये जिस प्रकार नियुक्त हुआ हूं, उसही भांति कार्य्यभार ढोया करता हूं। मनुष्योंको जो जिस प्रकारसे प्राप्त होनेवाला है, वह उसही भांतिसे प्राप्त होता है ; होनहार विषय जो जिस प्रकारसे होनेवाला होता है, वह उसही प्रकार हुआ करता विधाता जिन जिन गर्भोंमें जीवोंको बार बार नियुक्त करता है, जीव उसमेंही निवास करते हैं स्वयं जिसकी इच्छा करते हैं, वह सिद्ध नहीं होता। "मेरा

ऐसाही भवितव्य था, ऐसाही होगा," जिनके अन्तःकरणमें ऐसे भाव सदा जाग्रत होरहे हैं, वे कभी मोहित नहीं होते, कालक्रमसे उपस्थित दुःख सुखके जरिये हन्यमान मनुष्योंका अभियोग कर्त्ता कोई भी नहीं है। मनुष्य दुःखके विषयमें द्वेष करते हुए "मैंही कर्त्ता हूं।" इस प्रकार जो अभिमान किया करते हैं, वही दुःख है। ऋषि, देवता, महासुर, तीनों वेदोंके जाननेवाले ब्राह्मणों और बनवासी मुनियोंके निकट भी सब आपदा उपस्थित होती हैं, जिन्होंने सदसत् वस्तुओंको विशेष रूपसे जाना है, वेही भयभीत नहीं होते। पण्डित पुरुष क्रुद्ध नहीं होते, विषयोंमें आसक्त नहीं होते; विपदमें दुःखी सम्पत्में सन्तुष्ट और अर्थकृच्छ्रात विपद उपस्थित होनेपर शोक नहीं करते; वे स्वभावसेही हिमाचलकी तरह अटलभावसे स्थित रहते हैं। सब प्रयोजनोंकी सिद्धि जिसे हर्षित नहीं कर सकती, और समय पर उपस्थित हुई विरुद्ध भी जिसे दुःखित नहीं कर सकती; जो सुख दुःखको समान भावसे सेवन करते हैं, उन्हीं मनुष्योंको धुरन्धर कहा जाता है। पुरुषको जिस समय जो अवस्था प्राप्त होवे, शोक न करके उसमेंही सन्तुष्ट रहे और सन्तापकारी आयासकर प्रवृद्ध कामको शरीरसे दूर करे। शौत, स्मार्त्त, लौकिक न्याय अन्यायको विचारनेवाली ऐसी कोई जनसमाज नहीं है जिसमें प्रवेश करके मनुष्य सदा भयभीत न हो; इससे जो पुरुष दुरवगाह धर्म्मतत्वमें स्नान करते हुए उसे प्राप्त करे, उसीही सभ्य समाजके बीच धुरन्धर कहना चाहिये। धर्म्मतत्त्व, जो अत्यन्त दुरवगाह है, तब इसमें सन्देहही क्या है, कि ब्रह्मतत्व उससे भी दुष्प्रवेश्य है। बुद्धिमान् पुरुषोंके सब कार्य्य परिणाममें भी दुर्ज्ञेय हैं, जो बुद्धिमान् होते हैं, वे कभी मोहके समयमें मुग्ध नहीं होते। हे अहल्यापति वृद्ध गौतम! यदि तुम कष्टकरी विषम विपदमें पड़ते और पदच्युत होते, तो क्या मुग्ध न होते? मन्त्र, बल, बुद्धि, वीर्य्य पौरुष, शीलता, सदाचार और अर्थसम्पत्तिसे मनुष्य कभी अलभ्य वस्तु प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होता, इसलिये उसके लिये शोकका क्या प्रयोजन है। विधाताने पहले मनुष्यके सम्बन्धमें जो विधान किया है, उसे वही भोग करना पड़ेगा, मैं भी विधिकृत कार्य्यका अनुसरण करूंगा, मृत्यु मेरा क्या करेगी, मनुष्य प्राप्त होनेवाली वस्तुओंकोही पाता है, जाने योग्य स्थानमें ही जाता है और प्राप्त होनेवाले सुख दुःखही प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य इन सब विषयोंको पूर्ण रीतिसे जानके मोहित नहीं होते, वे सब दुःखदायक विषयोंमें भी सुखी और सर्व्वप्रधान करके विख्यात हुआ करते हैं।

२२६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतकुलप्रवर पितामह! वस्तुनाश अथवा राज्य नाश रूप कष्टकरी विपदमें पड़े हुए पुरुषके पक्षमें कल्याण क्या है। आपही इस लोकमें हम लोगोंके बीच परमवक्ता हैं, इसलिये मैं आपसे यह विषय पूछता हूं आप विस्तारपूर्व्वक बयान करिये।

भीष्म बोले, हे राजन्! स्त्री, पुत्र, सुख और वित्तहीन मनुष्योंके कष्ट करी विपदमें पड़नेसे धीरज ही उनके लिये कल्याणकारी होता है, सदा धैर्य्ययुक्त शरीर कदापि विशीर्ण नहीं होता, शोकरहित सुख भी आरोग्यतामें श्रेष्ठ कारण है, शरीर आरोग्य रहनेपर मनुष्य फिर धन प्राप्त करनेमें समर्थ होता है। हे तात! जो बुद्धिमान् मनुष्य सात्विकी वृत्ति अवलम्बन करते हैं, उनके ऐश्वर्य्य धीरज और सब कार्य्य सिद्ध होते हैं। हे धर्म्मराज! इस

विषयमें फिर बलि और इन्द्रके सम्बादयुक्त इस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया जाता है। दैत्य दानवोंके नाशक देवासुर संग्राम समाप्त होनेपर सब लोक विष्णुसे आक्रान्त और शत-क्रतु देवराज हुए, देवताओंके यज्ञ करनेसे ब्राह्मण आदि चारों-वर्ण व्यवस्थापित हुए, तीनों लोक समृद्धिवान और स्वयम्भू ब्रह्मा प्रीतियुक्त हुए; रुद्रगण, वसुवृन्द, दोनों अश्वि-नीकुमार, देवर्षि, गन्धर्व्व, भुजगेन्द्र और सिद्ध समूहोंसे घिरे हुए देवराजने चार दांतवाले अत्यन्त दान्त शोभायुक्त ऐरावत गजराजपर चढ़के तीनों लोकमें घूमनेके लिये प्रस्थान किया। उन्होंने किसी समय समुद्रके किनारे किसी पहाड़की गुफामें विरोचनपुत्र बलिको देखा और देखते ही उसके निकट उपस्थित हुए। राजा बलि सुरराज इन्द्रको ऐरावतपर चढ़े और देवताओंमें घिरे देखकर शोकार्त्त वा व्यथित नहीं हुए। इन्द्र ऐरावतपर चढ़े रहके अविकृत और अभीतभावसे स्थित बलिको देखकर यह बचन बोले कि, हे दैत्यराज! तुम जो ऐसी अवस्थामें भी व्यथित नहीं होते हो, उसमें शूरता अथवा वृद्धसेवा तथा तपस्यासे प्राप्त हुआ तत्वज्ञान कारण हुआ है। जो हो, यह सब तरहसे अत्यन्त दुष्कर कार्य्य है। हे विरोचनपुत्र! तुम शत्रुओंके वशीभूत और परम श्रेष्ठ पदसे भ्रष्ट होकर किसका सहारा करके शोचितव्य विषयोंमें शोक नहीं करते हो। तुमने स्वजनोंके बीच श्रेष्ठता और अत्यन्त उत्कृष्ट भोगोंको प्राप्त किया था, फिर शत्रु-ओंके जरिये तुम्हारा धन, रत्न और राज्य छीना गया, तौभी तुम किस लिये शोक नहीं करते हो उसे कहो। पहले तुम पिता पिता-मह पदके ईश्वर हुए थे, अब शत्रुओंके जरिये उस पैतृकपदके छीने जानेपर क्यों नहीं शोक करते हो। तुम वरुण-पाशसे बद्ध, वज्रसे घायल, स्त्री और रत्न हरे जानेपर भी किस कारण शोक रहित होरहे हो, उसे कहो। तुम श्रीहीन और विभवसे भ्रष्ट होके भी जो शोकरहित होरहे हो, यह अत्यन्त दुष्कर कार्य्य है। क्यों कि तीनों लोकका राज्य नष्ट होनेपर तुम्हारे बिना दूसरा कौन पुरुष जीवित रहनेका उत्साह करेगा। इन्द्र बलिको परा-जित करके इसी प्रकार तथा दूसरी भांति कहुए बचन कह रहे थे, उस समय विरोचन-पुत्र बलि ऊपर कहे हुए बचनको अनायास ही सुनके निर्भय होकर कहने लगे।

बलि बोले, हे इन्द्र! मैं जब निग्रहीत हुआ हूं तब तुम्हें अब बिकत्थना करनेका क्या प्रयोजन है; तुम वज्र लेके खड़े हो, उसे मैं देखता हूं। पहले तुम असमर्थ थे, इस समय कुछ समर्थ हुए हो, तुम्हारे अतिरिक्त कौन पुरुष इस प्रकार अत्यन्त निठुर बचन कह सकता है। जो पुरुष समर्थ होके भी शत्रुके वशमें पड़े हुए करतलगत बीरके ऊपर दया करता है, बुद्धिमान् लोग उसे ही पुरुष समझते हैं। युद्ध करनेमें तत्पर दोनोंके बीच जयका निश्चय नहीं है, क्यों कि दोनोंके बीच एकको बिजय और एक पुरुषको पराजय हुआ करती है। हे सुरेश्वर! "सर्व्वभूतोंके ईश्वरको मैंने जय किया है,"—तुम्हारा ऐसा स्वभाव न होवे। हे वज्रधर! तुम जो ऐसी अवस्था युक्त हुए हो, वह तुम्हारा कृत नहीं है और मैं जो ऐसी अवस्थामें निवास करता हूं, यह भी मेरा कृत नहीं है, इस समय तुम जैसी अवस्थामें हो, मैं पहले वैसाही था और इस समय मैं जिस प्रकार निवास करता हूं, भविष्यकालमें तुम उस ही प्रकार होगे! मुझसे कुछ पापकर्म्म हुआ है, ऐसा समझके तुम मेरी अवज्ञा मत करो, हे देवराज! पुरुष कालक्रमसे सुख दुःख भोग करता है, काल-क्रमसे ही तुमने इन्द्रत्व प्राप्त किया है, कर्म्मके जरिये तुम्हें इस इन्द्रत्व पदकी प्राप्ति नहीं हुई है। कालने मुझे

वशीभूत किया है, इसहीसे मैं इस समय तुम्हारी भांति समृद्धिशाली नहीं हूं, तुम भी मेरे समान अवस्थामें नहीं पड़े हो।

माता पिताकी सेवा, देवताओंकी पूजा और दूसरे गुण पुरुषके विषयमें सुखदायक नहीं हैं; विद्या, तपस्या, दान, मित्र और बान्धव लोग कालपीड़ित पुरुषको परित्राण करनेमें समर्थ नहीं होते। मनुष्य लोग बुद्धि-बलके अतिरिक्त सैकड़ों उपायसे भी आनेवाली विपदको निवारण करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। कालक्रमसे हन्यमान मनुष्योंको परि-त्राण करनेवाला कोई भी नहीं है। हे इन्द्र! तुम जो ऐसा अभिमान करते हो, कि "मैं कर्त्ता हूं" यही दुःख है। पुरुष यदि कर्त्ता हो, तो वह कभी किसीका कृत न होसके; इसलिये कर्त्ता जब कृत होता है, तब ईश्वरके अतिरिक्त और कोई भी कर्त्ता नहीं है। कालक्रमसे मैंने तुम्हें जीता था, और कालके अनुसार तुमने मुझे जय किया है। कालही सबकी गति है, और कालने ही सब प्रजाको सङ्कलन कर रखा, हे देवराज! तुम साधारण बुद्धिके वशमें होकर प्रलयके विषयको नहीं मालूम करते हो; तुमने निज कर्म्मसे उत्कर्ष लाभ किया है, ऐसा जानके कोई कोई तुम्हारा अत्यन्त आदर किया करते हैं, मेरे समान पुरुष लोक प्रवृत्तिको जानके कालपीड़ित होनेपर क्यों शोक करेंगे; किस लिये वो मुग्ध होंगे। किस कारणसे ही व्याकुल हुआ करेंगे, मैं अथवा मेरे समान पुरुष यदि सदा ही काल पीड़ित हों, तो मैं अथवा मेरे समान पुरुषोंकी बुद्धि भिन्न नौकाकी भांति अवसन्न हो सकती है। हे वासव! मैं, वा तुम अथवा दूसरे जो सुराधिपत्य लाभ करेंगे, सैकड़ों इन्द्र जिस मार्गसे गये हैं, उन्हें भी वही मार्ग अवलम्बन करना पड़ेगा। तुम परम श्रीस म्पन्न होकर इस समय ऐसे दुर्द्धर्ष होरहे हो, समय उपस्थित होनेपर काल मेरी भांति तुम्हें भी वशीभूत करेगा युग युगमें कई हजार इन्द्र हुए थे, वे भी कालके वशमें होकर समाप्त हो गये, इसलिये कालको कोई अतिक्रम नहीं कर सकता काल अत्यन्त दुरतिक्रम है। तुम यह सम्पति पाके अपनेको सर्व्व भूत भावन ब्रह्माके समान समझ रहे हो; परन्तु यह इन्द्रत्व पद किसीके पक्षमें अचल और अनन्त नहीं है; तुम मूढ़तासे ही ऐसा समझते हो कि "यह मेरा है"। तुम अविश्वस्त विषयमें विश्वास करते हो, और अनित्य वस्तुको नित्य समझते हो।

हे सुरेश्वर! कालसे आक्रान्त पुरुष सदा इस ही प्रकार हुआ करते हैं। "यह राजश्री मेरी है" ऐसा समझके तुम मोहके वशमें होकर कामना करते हो, परन्तु यह श्री तुम्हारे वा हमारे अथवा किसीके भी निकट स्थिर नहीं रहती। हे वासव! इस चञ्चला श्रीने बहुतेरे पुरुषोंको अतिक्रम करके इस समय तुम्हें अवलम्बन किया है, परन्तु कुछ समय तुम्हारे निकट रहके फिर इस प्रकार दूसरेके समीप चली जायगी, जैसे गऊ एक निपानको त्यागके निपा-नान्तरमें गमन करती है। हे पुरन्दर! कई सौ राजा गुजर गये, उनकी गिनती करनेकी सामर्थ नहीं है, तुमसे भी श्रेष्ठ बहुतेरे पुरुष भविष्यमें इन्द्रत्व लाभ करेंगे। वृक्ष, औषधी, रत्न, जीव जन्तु, वन और आकर (खान) युक्त इस पृथ्वीको पहले जिन्होंने भोग किया था, इस समय उन्हें नहीं देखता हूं। पृथु, ऐल, मय, भीम, नरक, शम्बर, अश्वग्रीव, पुलोमा, स्वर्भानु, अमितध्वज, प्रह्लाद, नमुचि, दक्ष, विप्रचित्ति, विरोचन, ह्रीनिषेव, सुहोत्र, भूरिहा, पुष्पवान्, वृष, सत्येप्स, ऋषभ, बाहु, कपि-लाश्व, विरूपक, बाण, कार्त्तस्वर, वह्नि, विश्व-दंष्ट्र, नैऋति, सङ्कोच, वरीताक्ष, वराह, अश्व, रुचिप्रभ विश्वजित् प्रतिरूप, वृषाण्ड, विष्कर, मधु, हिरण्यकशिपु और कैटभ आदि ये समस्त

दैत्य दानव और राक्षस लोग तथा इनके अतिरिक्त दूसरे बहुतेरे प्राचीन दैत्येन्द्र वा दानवेन्द्र जिनका कि नाममात्र सुना करता हूं; वैसे बहुतेरे पहले समयके दानवेन्द्र लोग कालपीड़ित होकर पृथ्वी त्यागके चले गये ; इसलिये कालही बलवान् है। इन सबने ही एक एक सौ अश्वमेध यज्ञ की थीं, तुम्हीं केवल शतक्रतु नहीं हो, ये सभी धर्मपरायण थे, सभी सदा यज्ञ करते और वे सब कोई आकाशमें बिचर सकते थे, वे सब कोई सम्मुख युद्धमें समर्थ थे ; सभी समरसंयुक्त, परिघबाहु, मायावी और कामरूपी थे। सुना जाता है, ये सब कोई युद्धमें उपस्थित होकर पराजित नहीं होते थे, सब ही सत्यव्रतसे युक्त, कामविहारी, वेदव्रतानिष्ट और बहुश्रुत थे; सबने ही राजश्वर होकर याग्य ऐश्वर्य्य प्राप्त किये थे ; परन्तु उन महानुभावोंको पहले कभी ऐश्वर्य्यका मद नहीं हुआ था। वे सब कोई यथायोग्य याचकोंको दान करते थे, सभी सब प्राणियोंके विषयमें यथा उचित करुणा करते थे। वे सब कोई दाक्षायणी दिति और दनु तथा प्रजापति कश्यपके पुत्र थे ; वे लोग तेज और प्रतापयुक्त रहनेपर भी कालसे प्रतिसंहृत हुए हैं।

हे देवराज! जब तुम इस पृथ्वीको भोग करके फिर परित्याग करोगे, तब निज शोक रोकनेमें समर्थ न होगे, इसलिये अभीसे कामभोग विषयकी वासना त्याग दो; इस ऐश्वर्य्यका गर्व्व मत करो ; ऐसा करनेसे तुम निज राज्य नाश होनेके समय शोकको सहनेमें समर्थ होगे। तुम शोकके समय शोक मत करो और हर्षके समय हर्षित न होना ; अतीत और अनागत विषयोंको त्यागके प्रत्युत्पन्न विषयके सहारे जीवन बिताओ।

हे देवेन्द्र! यदि अतन्द्रित काल मेरे सदा योगमें रत रहने पर भी हमारे निकट आया है, तो शीघ्रही थोड़ेही समयके बीच तुम्हारे समीप भी उपस्थित होगा ; तुम समयकी उपेक्षा करो। हे देवेन्द्र! इस समय तुम वचनव्यूहके जरिये मानो मुझे डराते हुए गर्ज्ज रहे हो, मैं संयत हुआ हूं इसहीसे तुम अपनी बड़ाई करते हो, कालने पहले मुझे आक्रमण किया है, अब तुम्हारे पीछे दौड़ रहा है, हे देवराज! मैं अगाड़ी कालसे पीड़ित हुआ हूं, इसही कारण तुम गर्ज्ज रहे हो।

हे वासव! मेरे संग्राममें क्रुद्ध होनेपर कौन मेरे सम्मुख निवास करनेमें समर्थ होता, बलवान कालने मुझे आक्रमण किया है, इसही कारणसे तुम मेरे सम्मुखमें खड़े होरहे हो। यह सहस्र बर्ष प्रायः पूर्ण हुआ, पर मेरा सब शरीर तबतक अच्छी तरह सुस्थ नहीं हुआ। मैं इन्द्रत्व पदसे च्युत हुआ हूं, तुम सुरलोकमें प्रकृत इन्द्र हुए हो, यही विचित्र है ; जीवलोकके बीच काल क्रमसे तुम उपास्य होरहे हो। तुम क्या कर्म्म करके इस समय इन्द्र हुए और मैं ही कौनसे कर्म्मके जरिये इन्द्रत्व पदसे च्युत हुआ। कालही कर्त्ता और विकारकर्त्ता है, दूसरा कोई भी कारण नहीं है, विद्वान् पुरुष नाश, विनाश, ऐश्वर्य्य, सुख, दुःख, जन्म और मृत्यु, लाभसे अत्यन्त हर्षित और दुःखित नहीं होते। हे वासव! तुम मुझे जानते हो, मैंभी तुम्हें जानता हूं। हे निर्लज्ज! इससे तुम कालक्रमसे उन्नत होकर क्यों मेरी निन्दा कर रहे हो, पहले समयमें मेरा जो पौरुष था, वह तुमसे छिपा नहीं है; मैं युद्धमें पर्य्याप्त परिमाणसे जो बिक्रम प्रकाश करता था, वही उसमें प्रमाण है, हे शचिपति! पहले समयमें आदित्य रुद्र, साध्य, वसु और मरुद्गण मेरे सम्मुखमें विशेष रीतिसे पराजित हुए थे। हे वासव! तुम तो जानते हो, कि देवासुर संग्राममें इकट्ठे हुए सब देवता लोग मेरे बलविक्रमके प्रभावसे रणभूमि छोड़के भागे थे। मैंने ही बन और बनवासियोंके सहित सब

पर्व्वतोंको बार बार उठाया था और युद्धमें तुम्हारे सिरके ऊपर पत्थरके टूकड़ोंके सहित पहाड़ोंके शिखरोंको फेंका था; इस समय क्या करूं, काल अत्यन्त दुरतिक्रम्य है। क्या मैं बज्रके सहित तुम्हें मुष्टिक प्रहारसे नाश करनेका उत्साह नहीं करता, परन्तु यह विक्रम प्रकाश करनेका समय नहीं है, क्षमाकाल उपस्थित हुआ है। हे देवराज! इसही लिये तुम मेरे विषयमें क्षमा नहीं करते हो, तोभी मैं तुम्हारे विषयमें क्षमा करता हूं। हे वासव! काल परिणत होनेसे मैं कालानलसे घिरा और सदा कालपाशसे बद्ध होरहा हूं, इसही कारण तुम मेरे समीप बड़ाई करते हो। यह वही सब लोकोंसे दुरतिक्रम्य श्यामवर्ण रौद्र पुरुष रसरीमें बन्धे हुए पशुकी भांति मुझे बान्धके निवास कर रहा है। लाभ, हानि, सुख, दुःख, काम, क्रोध, जन्म, मृत्यु, बध, बन्धन और मोक्ष आदि सब काल-वशसेही प्राप्त हुआ करते हैं। मैं कर्त्ता नहीं हूं, तुम भी कर्त्ता नहीं हो; जो सदा निग्रहा-निग्रहमें समर्थ है, वही कर्त्ता है, वही काल-रूपी कर्त्ता मुझे वृक्ष स्थित फलकी भांति पका रहा है। पुरुष जिन सब कर्म्मोंको करते हुए काल वशसे सुखयुक्त होता है, कालक्रमसे फिर उन्हीं कर्म्मोंको करके दुःखयुक्त हुआ करता है। हे वासव! समयज्ञ पुरुषका काल स्पर्श होनेपर शोक करना उचित नहीं है। इस ही लिये मैं शोक नहीं करता, शोक कभी दुःख निवारणका कारण नहीं है। शोक करनेसे जब वह शोक दुःख दूर नहीं कर सकता, तब जो शोक करता है, उसे भी कुछ सामर्थ नहीं है, इसही निमित्त मैं इस समय शोक नहीं करता। भगवान् सहस्रलोचन पाकशासन शतक्रतु बलिका ऐसा बचन सुनके क्रोधको रोकके यह बचन बोले, कि बज्रके सहित उद्यत बाहु और बरुणपाशको देखकर दूसरेकी बात तो दूर रहे, जिघांसु अन्तककी बुद्धि भी व्यथित हुआ करती है।— हे सत्यपराक्रमी! तुम्हारी तत्त्व दर्शिनी अचलबुद्धि व्यथित नहीं होती, इससे निश्चय बोध होता है, कि तुम इस समय धैर्य्यके सहारे दुःखी नहीं हो, इस लोकमें कौन शरीरधारी पुरुष जगत्को प्रस्थित देखकर विषय वा शरीरमें विश्वास करनेका उत्साह करेगा। गुह्यतम सततगामी अक्षर घोर कालाग्निमें पड़े हुए लोगोंको मैं भी इसही प्रकार अनित्य समझता हूं; इस सन्सारमें सूक्ष्म अथवा महत् परिपाक अवस्थामें पड़े हुए भूतोंके बीच काल जिसे स्पर्श करता है, उसे नहीं छोड़ता, स्वयं समर्थ अप्रमत्त सदा प्राणियोंको पकानेवाले अनिवृत्त कालके वशमें पड़े हुए पुरुष नहीं छूटते; अप्रमत्तकाल अनवहित देहधारियोंके निकट जाग्रत है; ऐसा कभी नहीं देखा गया कि किसी पुरुषने विशेष यत्न करके भी कालको अतिक्रम किया।

प्राचीन नित्य धर्म्म सब प्राणियोंके पक्षमें समान है, काल किसीको भी परिहार्य्य नहीं है, और इस कालका कभी व्यतिक्रम नहीं होता। जैसे ऋण देनेवाला व्याज संग्रह करता है, वैसेही काल दिन, रात, महीना, क्षण, कला, काष्ठा और लव, इन सबकोही पिण्डीकृत कर रहा है, जैसे नदीका वेग किनारेपर स्थित वृक्षोंको हरण करता है, वैसेही काल उपस्थित होकर "मैं आज यह करूंगा कल्ह इस प्रकार करूंगा," इस ही प्रकारकी आशामें फंसे हुए पुरुषोंको हरण किया करता है। "मैंने अभी इसे देखा था, यह किस प्रकार मरा?" कालसे ह्रियमाण मनुष्योंके सदा इस ही प्रकार विलाप सुनाई देते हैं। अर्थ, भोग, पद, और, ऐश्वर्य्य आदि सभी नष्ट हुआ करते हैं। काल आगमन करके जीवोंका जीवन हर ले जाता है। उन्नतिका विनिपात ही समाप्ति है; जो है, वह अभाव-स्वरूप है; सब विषय अनित्य और अनि-

स्थित हैं, इनका निश्चय करना ही अत्यन्त दुष्कर है। तुम्हारी वह तत्वदर्शिनी अचल बुद्धि व्यथित नहीं हुई, "मैं पहले ऐसा था" उसी तुम मनमें भी आलोचना नहीं करते। बलवान् काल इस लोकमें सबसे ज्येष्ठ और सबसे कनिष्ठ सभोंको आक्रमण करके पका रहा है। पर जो आक्रान्त होता है, वह उसे नहीं समझ सकता। ईर्षा, अभिमान, लोभ, काम, क्रोध, स्पृहा, मोह मान आदिमें फंसे हुए लोग ही मोहित हुआ करते हैं। हे विरोचनपुत्र! तुम आत्मतत्त्वज्ञ, विद्वान्, ज्ञानवान् और तपोनिष्ठ होकर करतल स्थित आमलक फलकी भांति भली प्रकार कालको देखते हो; तुम सब शास्त्रोंके जाननेवाले होकर कालके चरित्र और तत्व जानते हो, तुम शुद्धबुद्धि और ज्ञानियोंके स्पृहणीय हो; मैं समझता हूं, तुमने ज्ञानबलसे इन सब लोकोंको देखा है; तुम सर्व्वसङ्गसे मुक्त होकर समय बिताते हुए किसी विषयमें भी आसक्त नहीं हुए हो, तुमने इन्द्रियोंको जीता है, इससे रजोगुण और तमोगुण तुम्हें स्पर्श नहीं कर सकते। तुम प्रीतिरहित तथा दुःखहीन आत्माकी उपासना करते हो; तुम सब भूतोंके सुहृद वैरहीन और शान्तचित्त हुए हो, तुम्हें देखकर मेरी बुद्धि तुम्हारे विषयमें दयायुक्त हुई है, मैं ऐसे ज्ञानयुक्त पुरुषको बन्धनमें रखके मारनेकी अभिलाषा नहीं करता। अनृशंसताही परम धर्म्म है, तुम्हारे ऊपर मुझे ऐसी ही करुणा हुई है; इसलिये कालक्रमसे तुम इन सब वरुणपाशोंसे छूट जाओगे। हे महासुर! प्रजा समूहके अत्याचारसे तुम्हारा मङ्गल होवे; जब पुत्रबधू प्राचीन सासकी सेवा करनेमें नियुक्त करेंगी, पुत्र मोहवशसे पिताको कार्य्य करनेमें प्रेरणा करेगा, चाण्डाल लोग ब्राह्मणोंसे पैर धुलावेंगे, शूद्र लोग निर्भय होकर ब्राह्मणी भार्य्यासे सङ्गत होंगे, पुरुष विरुद्ध योनिमें बीज डालेंगे, कांसपात्रके सङ्ग और कुत्सितपात्रके जरिये पूजाके उपहारका व्यवहार करेंगे, चारों वर्णोंकी समस्त व्यवस्था जब मर्य्यादा-रहित होगी, उस समय क्रमसे तुम्हारे एक एक पाश छूटेंगे; मुझसे तुम्हें भय नहीं है, तुम समय प्रतिपालन करो; निरामय स्वस्थचित्त और दुःखरहित होके सुखी रहो।

गजराजवाहन भगवान् पाकशासनने बलिसे ऐसा कहके प्रस्थान किया, वह सब असुरोंको जीतके सुराधिप और अद्वितीय अधीश्वर होकर हर्षके सहित आनन्दित हुए। महर्षि लोग सहसा उपस्थित होकर उस सब चराचरोंके ईश्वर इन्द्रकी स्तुति करने लगे। हिमापह हव्यवाह अध्वरसे हव्य ढोनेमें प्रवृत्त हुए ईश्वर भी अर्पित अमृत धारण करने लगे। सवस्थित द्विजोत्तमोंसे प्रशंसित दीप्त तेजस्वी सुरराज उस समय मन्युहीन, प्रशान्तचित्त और हर्षित होकर निज स्थान सुरलोकमें जाके आनन्दित हुए।

२२७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! भावी उन्नति और अवनतिशील पुरुषोंके पूर्व्वलक्षण क्या हैं? आप मेरे समीप उसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे राजन्! तुम्हारा मङ्गल हो; मनही मनुष्योंकी भावी उन्नति और अवनतिके लक्षणोंको प्रकाश किया करता है। हे युधिष्ठिर! पुराने लोग इस विषयमें लक्ष्मी और इन्द्रके सम्वादयुक्त इस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं, तुम उसे सुनो। ब्रह्माकी तरह अपरिमित और प्रदीप्त तेजस्वी शान्तपाप महातपस्वी नारदने महातप सर्व्वादिके प्रभावसे परावर दोनों लोगोंको देखते हुए ब्रह्म लोकनिवासी ऋषियोंके सङ्ग मिलकर इच्छानुसार तीनों लोकोंके बीच भ्रमण किया

था। किसी समय वह सबेरे ही उठके पवित्र जलको स्पर्श करनेकी इच्छा करके ध्रुवद्वारसे उत्पन्न गङ्गाके समीप जाके उसमें उतरे। इधर सम्बर वैरी वज्रधारी सहस्र नेत्रवाले पाकशासनने उस देवर्षिसेवित गङ्गाके तीरपर आगमन किया, वे दोनों स्थिर चित्तवाले गङ्गामें स्नान करके संक्षेपसे जप समाप्त करते हुए सूक्ष्म सुवर्णमय बालूसे युक्त पलिनमें पहुंचे, वहां पहुंचके दोनों ही बैठकर पुण्यकर्म्म करनेवाले महर्षियों और देवर्षियोंकी कही हुई सब कथाकी आलोचना करने लगे। उन्होंने समाहित होकर बीते हुए पूर्व्ववृत्तान्तोंको कहते कहते किरणोंसे युक्त पूर्ण मण्डल सूर्य्यको उदय होते देखकर दोनोंने उठके उनकी उपासना की।

अनन्तर आकाशमें उदय होते हुए सूर्य्यके सम्मुख दूसरे सूर्य्यके समान उदात अर्च्चि समान प्रभायुक्त एक ज्योति देख पड़ी। हे भारत! वह ज्योति उन लोगोंके निकट आने लगी। सुपर्ण और सूर्य्यके स्वभावशाली उस ज्योतिने आकाशतलको अवलम्बन करके प्रभापुञ्जके सहारे अनुपम भावसे प्रकाशित होकर तीनों लोकोंको प्रकाशयुक्त किया, उन्होंने उस ज्योतिके बीच परम सुन्दरतायुक्त अप्सराओंकी अग्रगण्याकी भांति वृहद्भानुकी वृहती अंशुमती नामी किरणकी भांति तारा सदृश आभूषणधारिणी मुक्ताहारसे युक्त साक्षात् कमलाको कमलदलके बीच बैठी हुई देखा। अङ्गनाओंमें अग्रगण्य वह देवी विमानके अग्रभागसे उतरकर त्रिलोकनाथ इन्द्र और देवर्षि नारदके सम्मुख उपस्थित हुई देवराजने स्वयं देवर्षिके सहित देवीके समीप जाके आत्म समर्पण करके परम आदरके सहित उसकी पूजा की और पूजा करनेके अनन्तर वह सर्व्वविद् सुरराज देवीसे यह वचन कहने लगे।

इन्द्र बोले, हे चारुहासिनी तुम कौन हो; किस कार्य्यके लिये इस स्थानमें आई हो? हे सुभ्रु! हे शुभे! तुम कहांसे आई हो, और कहां जाओगी।

लक्ष्मी बोली, हे बलसूदन! पवित्र तीनों लोकके बीच स्थावर जङ्गम सब जीव मेरे सहित आत्मीयताकी अभिलाष करते हुए परम आदरके सहित मुझे यत्न करते हैं, मैं सब प्राणियोंके समृद्धिके निमित्त सूर्य्य किरणके सहारे फूले हुए कमलपुष्पके बीच उत्पन्न हुई हूं। मुझे सब कोई पद्मा, श्री और पद्ममालिनी कहा करते हैं। मैंही लक्ष्मी, मैंही सम्पत्ति, मैंही श्री मैंही श्रद्धा, मेधा, उन्नति, विजित और स्थिति हूं; मैंही धृति, सिद्धि और भूति हूं, मैं ही स्वाहा, स्वधा, सन्तति, नयति और स्मृति हूं। हे बलनाशन! मैं विजयी राजाओंकी सेनाके अगाड़ी और ध्वजा समूहमें धर्म्मशील मनुष्योंके राज्य, नगर और निवास स्थान तथा युद्धमें न हटनेवाले जय लक्षणयुक्त शूर राजाओंके निकट सदा निवास किया करती हूं। धर्म्ममें रत महामति, ब्रह्मनिष्ठ, सत्यवादी, विनयी और दानशील मनुष्योंके निकट मैं सर्व्वदा ही वास करती हूं। पहले मैंने सत्य-धर्म्ममें बद्ध होकर असुरोंके समीप वास किया था; अब उन लोगोंको विपरीत समझके तुम्हारे निकट वास करनेकी इच्छा करती हूं।

इन्द्र बोले, हे वरानने! दैत्य दानवोंके किस प्रकार चरित्रको देखकर तुम उनके निकट वास करती थी, और इस समय उन लोगोंको किस प्रकार देखकर उन्हें त्यागके इस स्थानमें आई हो?

लक्ष्मी बोली, जो लोग निज धर्म्मका अनुष्ठान करते धीरजसे विचलित नहीं होते और स्वर्गमार्गमें जानेके लिये अनुरक्त रहते हैं मैं उनके ऊपर प्रीति किया करता हूं। और जो लोग दान, अध्ययन, यज्ञ, देवता, पितर, गुरु और अतिथियोंकी पूजा करते हैं, मैं उनके निकट सदा निवास करती हूं। पहले दान-

वोंके सब गृह सुमार्ज्जित थे, वे लोग स्त्रियोंको वशमें रखते थे, अग्निमें आहुति देते थे। गुरु-सेवामें तत्पर रहते, इन्द्रियोंको जय करनेमें सावधान थे; वे लोग ब्रह्मनिष्ठ, सत्यवादी, श्रद्धावान् क्रोधको जीतनेवाले और दानशील थे, किसीकी असूया नहीं करते थे। स्त्री, पुत्र और सेवकोंका पालन पोषण करते थे, किसीके विषयमें ईर्षा करना नहीं जानते थे; डाहके वशमें होकर कभी आपसमें शत्रुता नहीं करते थे, वे लोग धीर थे, इसहीसे दूसरेकी समृद्धि देखकर कातर नहीं होते थे, वे सभी आर्य्य चरित सम्पन्न, दाता, सञ्चयी, दोनोंके विषयमें दयालु, अत्यन्त कृपा करनेवाले, सरलस्वभाव, दृढ़भक्त और जितेन्द्रिय थे। उनके सब सेवक और अमात्य सन्तुष्ट रहते थे, वे सब कृतज्ञ और प्रियभाषी थे; जिसका जैसा सम्मान था, उस-होके अनुसार उसे धन देते थे; सभी लज्जा-शील और यतव्रत थे। नियमित रीतिसे पर्व्वके समय स्नान करते थे; उत्तम रीतिसे अनुलिप्त और अलंकृत रहते थे, वे लोग उपवास और तपस्यामें रत, विश्वस्त तथा ब्रह्मवादी थे।

सूर्य्य इन लोगोंको नींद भङ्ग होनेके पहले उदय नहीं होता था, ये लोग कोई भी सबेरेके समय शयन नहीं करते थे; रात्रिके समय दही और सत्तूका भोजन सदा परिवर्ज्जित करते थे। भोरमें घृत देखकर प्रयत होकर परब्रह्मके ध्यानमें रत रहते थे, मङ्गलमय वस्तुओंको देखते ब्राह्मणोंका सम्मान करनेमें विरक्त नहीं होते थे। जो लोग सदा धर्म्म-वादी, अप्रतिग्राही, आधीरातमें सोनेवाले थे और दिनमें शयन नहीं करते थे उन लोगोंके और दीन हीन, अनाथ आतुर, बूढ़े, निर्बल, अबला और अनुमोदन करनेवाले पुरुषोंके विषयमें सदा दया और दान करते थे; त्रासित दुःखित, व्याकुल भयसे आर्त्त, व्याधित, कृश, हृतसर्व्वस्व और विपदमें पड़े हुए पुरुषोंको वे लोग सदा धीरज देते थे। वे लोग धर्म्मका अनुसरण करके चलते थे, आपसमें कोई किसीकी हिंसा नहीं करते थे; सब कार्य्योंमें ही अनुकूल थे; वृद्ध और गुरुजनोंकी सेवा तथा देवता, पितर और अतिथियोंकी यथा उचित पूजा करते थे, वे लोग सदा सत्यनिष्ठ और तपमें रत रहके देवता पितर और अति-थियोंसे बचे हुए अन्नको भोजन करनेमें यत्न-वान रहते थे। वे लोग अकेले ही उत्तम सिद्ध अन्न भोजन नहीं करते थे, परस्त्रीके शरीरको छूनेमें पाप समझते थे, अपनी भांति सब जीवोंमें दया करते थे; अनावृत्त स्थानमें पूर्व्व दिनमें पशुयोनि अथवा दूसरी कोई विरुद्ध योनिमें इन्द्रिय स्खलन करनेकी कभी इच्छा नहीं करते थे। हे सुरराज! सदा दान, दक्षता, सरलता, उत्साह, अहंकार हीनता, परम सुहृदता, क्षमा, सत्य, दान, तपस्या, शौच, करुणा, निठुरतारहित वचन और मित्रोंके विषयमें अद्रोह आदि जो सब गुण हैं, उन लोगोंमें वे सभी थे। निद्रा, तन्द्रा, अप्रीति, असूया, अर्थानवेक्षिता, अरति, विषाद और स्पृहा उन लोगोंके निकट प्रवेश नहीं कर सकती थी। सृष्टि प्रारम्भ होनेपर प्रतियुगमें ही मैं इसी प्रकार गुणयुक्त दानवोंके स्थानमें बास करती थी, अनन्तर कालक्रमसे गुणोंमें विपर्य्यय होनेके कारण मैंने उन लोगोंको काम क्रोधके वशमें देखा, धर्म्मने उन लोगोंको परित्याग किया। वे लोग सामाजिक साधु वृद्धोंके वचनको लेकर आन्दोलन करने लगे; अपकृष्ट पुरुष प्राचीन पुरुषोंका उपहास और असूया करनेमें प्रवृत्त हुए; बैठे हुए युवा पुरु-षोंने पहलेकी भांति अभ्यागत साधु और वृद्धोंको देखकर उठके प्रणामसे उनका सम्मान नहीं किया। पिताके वर्त्तमान रहते पुत्र प्रभुता करनेमें प्रवृत्त हुए। जिन लोगोंने कभी सेवकका कार्य्य स्वीकार नहीं किया था, वे भी

निर्लज्ज होकर भृत्यभाव धारण करके विख्यात हुए। जो अधर्म्म पथसे निन्दित कर्म्मके जरिये बहुत सा धन पाते हैं, उन्हीं लोगोंकी भांति दानवोंकी अर्थोपार्ज्जनमें स्पृहा होने लगी। रात्रिके समय वे लोग ऊंचे स्वरसे निज नाम सुनाकर प्रणाम करनेमें प्रवृत्त हुए, रात्रिमें अग्नि मन्दभावसे जलने लगी। पुत्र पिताके ऊपर और स्त्रियोंने पतिके ऊपर अत्याचार करना आरम्भ किया। उन लोगोंने बूढ़े माता, पिता, आचार्य्य, अतिथि और गुरु जनोंके गौरवके निमित्त उन्हें प्रणाम और कुमारोंका प्रतिपालन नहीं किया। देवता, पितर, अतिथि और गुरुजनोंकी पूजा तथा भिक्षा वा भूतोंको बलि न देकर स्वयं अन्न भोजन करने लगे। उनके रसोइयोंने पवित्रताका अनुरोध नहीं किया। वाक्य, मन और कर्म्मसे उन लोगोंका भक्ष्य विषय अवारित हुआ, उन लोगोंके फैले हुए धान्यको कौवे और चूहे खाने लगे। जल पीनेका कलश बिना ढांका ही रहने लगा, वे लोग जूठे रहके घृत छूने लगे कुदाल पात्र, पेटिका, कांसेके पात्र आदि गृहकी सामग्रियोंके इधर उधर पड़ी रहनेपर भी दानवोंकी गृहणियोंने उन्हें न देखा। प्राकार और गृहोंके टूटनेपर भी दानव लोग उसके संस्कार करनेमें उद्यत न हुए; पशुओंको बन्धे रखके तथा जल आदिसे उनका आदर नहीं किया; बालकोंके देखते रहनेपर भी उनका अनादर करके स्वयं भक्ष्य वस्तुओंको भक्षण करने लगे; वे लोग सेवकोंको बिना तृप्त किये ही अपने वास्ते पायस, कृशर, मांस, अपूप और पूरी आदि भोजनकी वस्तुओंको पाक कराने लगे और वृथा मांस भक्षण करनेमें प्रवृत्त हुए। सभी सूर्य्यके उदय होनेपर सवेरे सोते रहते थे, उन लोगोंके प्रति गृहमें रात दिन कलह होने लगा अनार्य्य पुरुषोंने बैठे हुए आर्य्य पुरुषोंका सम्मान न किया, विधर्म्मी लोगोंने आश्रमवासी लोगोंसे द्वेष करना आरम्भ किया; वर्णसङ्करोंकी बढ़ती हुई; पवित्र आचार लुप्त होगया, जो सब ब्राह्मण वेदवित् और जो वेदके विषयमें मूर्ख थे, उनके बहुमान और अवमानके विषयमें कुछ भी विशेषता न रही; परिचारिका समूह हार, आभूषण और वेशविन्यास है, वा गया है,—इसे ही देखने लगीं। उन्होंने दुर्ज्जनोंके आचरित अनुष्ठानका अनुकरण किया।

स्त्रियां पुरुषका वेष बनाकर और पुरुष स्त्रियोंका वेष धरके क्रीड़ा, रति तथा विहारके समय अत्यन्त आनन्दमें डूब गये। पिता पितामहोंने पहले देने योग्य लोगोंको जो कुछ दे गये थे, नास्तिकताके कारण भ्राता लोग उसे अनुवर्त्तन करनेमें असम्मत होने लगे; किसी तरहका अर्थ संशय उपस्थित होनेपर मित्र यदि मित्रके निकट प्रार्थना करे तो केशके नोक समान भी स्वार्थ रहनेपर भी मित्र लोग मित्रोंके धनको नष्ट करनेमें प्रवृत्त हुए। श्रेष्ठ वर्णोंके बीच बहुतोंने परस्व ग्रहण करनेकी अभिलाषा की; सभी विपरीत व्यवहार करते हुए दीख पड़े, शूद्र लोग तपस्या करने लगे; व्रतहीन पुरुषोंने पढ़ना आरम्भ किया, दूसरे लोग वृथा व्रत करनेमें प्रवृत्त हुए, चेलोंने गुरुकी सेवा न की; कोई गुरु शिष्यके सखा हुए; माता पिता शान्त और उत्सवहीन होने लगे; बूढ़े पिता माताकी प्रभुता न रही, वे लोग पुत्रोंके समीप अन्नके निमित्त प्रार्थना करने लगे, समुद्रके समान गम्भीरतासे युक्त वेद जाननेवाले बुद्धिमान् पुरुष कृषिकार्य्य आदि जीवनके उपायमें आसक्त हुए; मूर्ख लोग श्राद्धका अन्न भोजन करने लगे। प्रतिदिन भोरके समय चेलोंको गुरुके निकट स्वास्थ्य पूछनेके लिये दूत भेजना तो दूर रहे, गुरु लोग स्वयं ही शिष्योंके निकट स्वास्थ्य पूछनेके निमित्त जाने लगे; सास और ससुरके सम्मुखमें ही बहू दास दासियोंको शासन करनेमें प्रवृत्त हुई

और स्वामीको आवाहन करके तिरस्कार करती हुई शासन करने लगी; पिता यत्नपूर्व्वक पुत्रोंके मनकी रक्षा करने लगी। और अत्यन्त दुःखसे निवास करते हुए यदि पुत्र क्रुद्ध हो, इसी भयसे समय बितानेमें प्रवृत्त हुए; अग्निदाह, चोर अथवा राजपुरुषोंके जरिये किसीका धन हरे जानेपर, उसके मित्र लोग द्वेषके कारण उपहास करने लगे; वे लोग सब कोई कृतघ्न, नास्तिक पापाचारी गुरुस्त्री हरनेवाले अभक्ष्यके भक्षणमें अनुरक्त मर्य्यादा रहित और निर्लज्ज हुए। हे देवेन्द्र! कालक्रमसे दानव लोग इस ही प्रकार आचरण करनेमें प्रवृत्त हुए तब मैं उनके निकट निवास न कर सकी; यही मेरे मनमें निश्चय है। हे शचीनाथ! मैं स्वयं तुम्हारे निकट आई हूं; तुम मुझे अभिनन्दित करो। हे सुरेश्वर! तुम्हारे सत्कार करनेसे देवता लोग मुझे ग्रहण करनेके लिये अगाड़ी दौड़ेंगे। हे पाकशासन! मैं जिस स्थानमें निवास करती हूं, वहां मेरी प्रियसुभसे भी विशिष्ट और मदवलम्बना जया आदि आठों देवी आठ प्रकारके रूपसे वास करनेको अभिलाष करती हैं, आशा, श्रद्धा, धृति, क्षान्ति, विजया, उन्नति, क्षमा और जया, ये आठों देवी अग्रगामिनी होकर वहां निवास किया करती हैं, इन सब देवियोंके सहित मैं असुरोंको परित्याग करके तुम्हारे राज्यमें आई हूं, अब धर्म्मनिष्ठ और पवित्रचित्तवाले देवताओंके निकट निवास करूंगी। कमलमें वास करनेवाली देवीने जब ऐसा वचन कहा, तब देवर्षि नारद और वृत्रासुरके नाशक इन्द्र प्रीतिके वशमें होकर अत्यन्त आनन्दित हुए। अनन्तर अनल बन्धु सब इन्द्रियोंको सुखदायक सुखस्पर्श सुगन्धयुक्त वायु देवताओंके स्थानमें बहने लगा। लक्ष्मीके सहित बैठे हुए भगवान् इन्द्रके दर्शन करनेकी अभिलाषा करके देवता लोग प्रायः पवित्र और प्रार्थित स्थानमें निवास करने लगे। अनन्तर श्रीसम्पन्न सहनेत्र सुरेश्वर प्रिय सुहृत् महर्षिके सहित हरे रङ्गवाले घोड़ोंसे जुते हुए रथपर बैठ स्वर्ग लोकमें पहुंचके सत्कृत होकर सुरसमाजमें उपस्थित हुए। फिर महर्षियोंसे युक्त नारद और देवराजने कमला देवीके हृदयगत अभिप्रायको मनहीमन विचारते हुए देवताओंके पौरुषको देखकर लक्ष्मीदेवीसे वहां पर सुखपूर्व्वक आगमनका विषय पूछा। अनन्तर दीप्तिमान् धूलोक अमृतकी वर्षा करनेमें प्रवृत्त हुआ स्वयम्भू पितामहके स्थानमें बिना बजाये ही नगाड़े बजने लगे; सब दिशा प्रसन्न और प्रकाशित हुईं। देवराज ऋतुके अनुसार शस्योंके ऊपर जल बरषाने लगे, कोई पुरुष भी धर्म्म मार्गसे विचलित नहीं हुए; सुरलोकवासियोंकी विजय होनेपर अनेक रत्नाकर-भूषित भूमि मङ्गलध्वनि करने लगी; यज्ञादि कर्म्मोंसे रमणीय सुन्दर मनस्वी मनुष्य पुण्यवान लोगोंके पवित्र मार्गमें निवास करते हुए सुशोभित हुए; मनुष्य, देवता, किन्नर, यक्ष और राक्षस लोग समृद्धियुक्त तथा प्रशस्तचित्त हुए; फूलफल वायुके झकोरसे भी टूटकर कभी वृक्षोंसे न गिरे; रसप्रद गौवें कामदुस्स हुईं। किसीके मुखसे दारुण वचन न निकला। जो लोग विप्र समाजमें उपस्थित होकर सर्व्व कामप्रद इन्द्र आदि देवताओंके सहारे भगवती लक्ष्मीदेवीके इस सपर्य्याय विषयका पाठ करते हैं, वे लोग समृद्धि युक्त होकर सम्पत्ति लाभ करते हैं। हे कुरुवर! तुमने जो इस लोकमें उन्नति और अवनतिका विषय पूछा था, मैंने उसका परम निदर्शन वर्णन किया, अब तुम परीक्षा करके तत्तविषय अवलम्बन करो।

२२८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! पुरुष कैसे चरित्र, किस प्रकारके आचार कौनसी विद्या

और कैसे आचारसे युक्त होनेपर प्रकृतिसे भी श्रेष्ठ नित्यधाम प्राप्त करता है।

भीष्म बोले, जो लोग मोक्ष धर्म्ममें सदा रत अल्पाहारी और जितेन्द्रिय हैं वेही प्रकृतिसे भी श्रेष्ठ नित्य ब्रह्मधाम लाभ किया करते हैं। हे भारत! प्राचीन लोग इस विषयमें असितदेवल और जैगीषव्यके इस पुराने इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। असित देवल, सब धर्म्मोंके जाननेवाले, महाप्राज्ञ, क्रोध हर्षसे रहित जैगीषव्यसे कहने लगे।

देवल बोले, हे महर्षि! तुम्हारी वन्दना करनेपर भी तुम प्रसन्न नहीं होते और निन्दा करनेपर भी क्रोध नहीं करते, यह तुम्हारी किस प्रकारकी बुद्धि है। ऐसी बुद्धि तुमने कहांसे पाई। तुम्हारी इस बुद्धिका परम अवलम्बन क्या है?

भीष्म बोले, महातपस्वी जैगीषव्य देवलका ऐसा वचन सुनके सन्देहरहित प्रचुर अर्थ और पद संयुक्त पवित्र तथा महत् वचन कहने लगे।

जैगीषव्य बोले, हे ऋषिसत्तम! पुण्यकर्म्म करनेवाले मनुष्योंका जो परम अवलम्ब है, मैं उस अत्यन्त महती शान्ति विषयका तुमसे कहता हूं सुनो। हे देवल! मनीषि लोग स्तुतिनिन्दामें समज्ञान किया करते हैं। जो लोग उनकी प्रशंसा वा निन्दा करते हैं, वे उनके भी आचार व्यवहारोंका गोपन कर रखते हैं, वे लोग पूछनेपर भी अहित विषयमें हितवादी पुरुषको कुछ नहीं कहते और जो लोग उनके ऊपर आघात करते हैं, वे उनसे पलटा लेनेकी इच्छा नहीं करते। वे लोग अप्राप्त विषयोंके लिये शोक न करके समयपर प्राप्त हुए विषयको भोग किया करते हैं; बीते हुए विषयोंके निमित्त शोक तथा उन्हें स्मरण नहीं करते। हे देवल! व्रत करनेवाले, शक्तिमान मनीषि लोग इच्छानुसार प्रयोजन विषयमें सत्कार लाभ करनेपर शक्तिके अनुसार उसे साधन किया करते हैं। जिन्होंने क्रोधको जीता तथा जिनका ज्ञान परिणत है, वे जितेन्द्रिय महाप्राज्ञ मनुष्य मनवचन और कर्म्मसे किसीके निकट कुछ अपराध नहीं करते। वे ईर्षारहित होते हैं, इसीसे कभी आपसमें हिंसा करनेमें रत नहीं होते। धीर लोग दूसरेकी समृद्धि देखकर कभी डाह नहीं करते। जो लोग दूसरेकी निन्दा तथा किसीकी प्रशंसा नहीं करते, वे आत्मनिन्दा वा प्रशंसासे विकृत नहीं होते, जो लोग सब तरहसे प्रशान्त और सब भूतोंके हितमें अनुरक्त रहते हैं, वे क्रोध, हर्ष वा किसीके समीप अपराध नहीं करते। जिनका कोई बान्धव नहीं है और जो दूसरेके बन्धु नहीं हैं, उनका कोई भी शत्रु नहीं है और वे भी किसीके शत्रु नहीं हैं। ऐसे मनुष्य हृदयकी ग्रन्थि छुड़ाके सुखपूर्व्वक विचरते हैं। जो मनुष्य इसही प्रकार व्यवहार करते हैं, वे सदा सुखसे जीवन बितानेमें समर्थ होते हैं। हे द्विजोत्तम! जो सब धर्म्मज्ञ लोग धर्म्ममार्गका अनुरोध करते हैं, वेही आनन्दित होते हैं और जो लोग धर्म्ममार्गसे च्युत हुए हैं वे उद्वेग लाभ किया करते हैं। मैंने उस ही धर्म्मपथका आसरा किया है, इससे किस लिये किसीकी असूया करूंगा। कोई मेरी निन्दा करे अथवा प्रशंसा ही करे, तो भी मैं किस लिये हर्षित होऊंगा। मनुष्य लोग जिसकी अभिलाष करें, धर्म्मसे उसेही प्राप्त करनेमें समर्थ होवें; निन्दा वा प्रशंसासे मेरी ह्रास वा वृद्धि न होगी। तत्त्ववित् बुद्धिमान् मनुष्य अवमानको अमृत समझके तृप्त हुआ करते हैं और सम्मानको विष समझके उद्विग्न होते हैं। अवज्ञात लोग सब दोषोंसे विमुक्त रहके इस लोक परलोकमें सुखसे सोते हैं और जो अवमान करता है, वह विनष्ट होता है। जो कोई मनीषि पुरुष परम गतिकी इच्छा करें, वे इस ही व्रतको संग्रह करके अनायासही हवि:

युक्त होते हैं। जितेन्द्रिय पुरुष सब तरहसे समस्त सत्व समाप्त करके प्रकृतिसे परम श्रेष्ठ नित्य ब्रह्मधाम लाभ किया करते हैं, जो लोग परम पद पाते हैं, देवता, गन्धर्व्व, पिशाच और राक्षस लोग उनके अनुसरण करनेमें समर्थ नहीं हैं।

२२८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! भूलोकमें सब जीवोंके अभिनन्दन करनेवाले सब लोगोंका प्यारा और सब गुणोंसे युक्त मनुष्य कौन है?

भीष्म बोले, हे भरतश्रेष्ठ! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार नारदके विषयमें उग्रसेन और कृष्णकी जो वार्त्तालाप हुई थी, इस समय उसे वर्णन करता हूं सुनो। उग्रसेनने कृष्णसे कहा, कि नारदका नाम लेनेमें लोग संकल्प किया करते हैं, बोध होता है वे अवश्य ही गुणयुक्त होंगे इससे मैं पूछता हूं, उनमें जो सब गुण थे, वह सब तुम मेरे समीप बयान करो।

श्रीकृष्ण बोले, हे कुकुरवंशावतंस नरनाथ! नारदके जो सब उत्तम गुण मुझे विदित हैं, उसे संक्षेपमें कहनेकी इच्छा करता हूं, सुनिये। चरित्रके निमित्त उन्हें देहतापन अहङ्कार नहीं है; जैसा ज्ञान है, वैसा ही चरित्र है; इस ही लिये वे सब जगह पूजित होते हैं। नारदको अनुराग क्रोध और भय नहीं है; वह शूर हैं, और आलसी नहीं हैं, इस ही लिये सब ठौर पूजित होते हैं। नारद अत्यन्त ही उपास्य हैं; काम वा लोभके वशमें होकर उनका वचन व्यतिक्रम नहीं होता, इस ही निमित्त वह सर्व्वत्र पूजित होते हैं। वह अध्यात्म विधिके तत्वज्ञ क्षमाशील, शक्तिमान्, जितेन्द्रिय, सरल और सत्यवादी हैं, इसहीसे सर्व्वत्र पूजित होते हैं। वह सुशील, सुखशायी, सुभोजी, आदरयुक्त, पवित्र उत्तम वचन कहनेवाले और ईर्षारहित हैं, इस ही लिये सब ठौर पूजित होते हैं। वह सबके विषयमें कल्याणकी इच्छा किया करते हैं, उनमें तनिक भी पाप नहीं है, दूसरेके अनर्थसे वह प्रसन्न नहीं होते, इसहीसे सर्व्वत्र पूजित होते हैं। वह वेद सुनके आख्यानके सहारे सब विषयोंके जय करनेकी अभिलाष करते हैं, तितिक्षु कहके कोई उनकी अवज्ञा नहीं करता, इस ही कारण वह सर्व्वत्र पूजित होते हैं। तेज, यश, बुद्धि, ज्ञान, विनय, जन्म और तपस्यामें वह सबसे वृद्ध हैं, इस ही लिये सर्व्वत्र पूजित होते हैं। समता निबन्धनसे कोई उनका प्रिय अथवा किसी प्रकार कोई अप्रिय नहीं है। वह मनके अनुकूल वचन कहा करते हैं, इस ही लिये सर्व्वत्र पूजित होते हैं। वह अनेक शास्त्रोंको सुनकर वा विचित्र कथाको जानके पण्डित हुए हैं; बल निरालसी, शठताहीन, अदीन, अक्रोधी और लोभ रहित हैं, इसहीसे सर्व्वत्र पूजित होते हैं। विषय धन और कामके लिये पहले कभी उनका विग्रह नहीं हुआ, उनके सब दोष नष्ट हुए हैं, इस हीसे वह सब जगह पूजित होते हैं। वह दृढ़ भक्त, अनिन्द्य स्वभाव, शास्त्रज्ञ, अनृशंस, संमोहहीन और दोष रहित हैं, इस ही लिये सर्व्वत्र पूजित होते हैं। वह सब विषयोंमें अनासक्त रहनेपर भी आसक्तकी भांति दीखते हैं, बहुत समय तक उनका संशय नहीं रहता और वह अत्यन्त ही वक्ता हैं, इस ही निमित्त सर्व्वत्र पूजित होते हैं। काम भोगके लिये उन्हें कामना नहीं है, कभी अपनी प्रशंसा नहीं करते वह ईर्षारहित और कोमल वचन कहनेवाले हैं इस ही लिये सब जगह पूजित होते हैं। वह सब लोगोंकी विविध चित्तवृत्तिको देखते हैं, तौभी किसीकी कुत्सा नहीं करते और सृष्टि विषयक ज्ञानमें अत्यन्त निपुण हैं, इस ही लिये सर्व्वत्र पूजित होते हैं। वह किसी शास्त्रके विषयमें असूया

नहीं करते, निज नीतिको उपजीव्य करके जीवन व्यतीत किया करते हैं, समयको निष्फल नहीं करते और चित्तको वशीभूत कर रखा है, इस ही लिये सब जगह पूजित होते हैं। वह समाधि विषयमें श्रम किया करते हैं, बुद्धिको शुद्ध किया है, समाधि करके भी तृप्त नहीं होते, सदा उद्यत और अप्रमत्त रहते हैं, इसही लिये सर्व्वत्र पूजित होते हैं। वह अनल्पतप योगयुक्त, परम कल्याणमें नियुक्त और दूसरेके गुप्त वचनको प्रकाश नहीं करते, इसहीसे सर्व्वत्र पूजित होते हैं, वह अर्थ लाभ होनेपर हर्षित और अर्थ हानिसे दुःखित नहीं होते, वह स्थिर बुद्धि और अनासक्त चित्त हैं; इस ही लिये सर्व्वत्र पूजित होते हैं। उस सर्व्वगुणयुक्त अत्यन्त निपुण, पवित्र, अनामय, कालज्ञ और प्रियज्ञ महर्षिसे प्रीति करनेमें कौन पराङ्मुख होगा।

२३० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे कौरव! सब जीवोंकी उत्पत्ति वा लयका विषय और ध्यान, कर्म्मकाल तथा युगयुगमें किस प्रकार परमायु होती है, उसे मैं सुननेकी इच्छा करता हूं। समस्त लोकतत्व, जीवोंकी अगति और गति तथा यह सृष्टि और मृत्यु कहांसे हुआ करती है। हे साधुवर! यदि हमारे ऊपर आपकी कृपा हो, तो यही विषय जो कि आपसे पूछता हूं, उसे हमारे निकट वर्णन करिये। पहिले आपके कहे हुए अत्यन्त श्रेष्ठ भृगु और विप्रर्षि भरद्वाजकी कथा सुनके मेरी बुद्धि अत्यन्त श्रेष्ठ परम धर्म्मिष्ठ और दिव्य संस्थाननिष्ठ हुई है, इसलिये फिर आपके समीप पूछता हूं; आप उस ही विषयको वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! इस विषयमें व्यासदेवने प्रश्न करनेवाले निजपुत्रसे जो कुछ कहा था, वह प्राचीन इतिहास कहता हूं सुनो। वैयासकि शुकदेव निखिल वेद और साङ्ग उपनिषदोंको पढ़के धर्म्मको निपुणता दर्शन निबन्धनसे नैष्ठिक कर्म्मकी कामना करते हुए धर्म्मात्माओंके संशयको दूर करनेवाले अपने पिता कृष्ण द्वैपायनसे यह सन्देह विषय पूछा।

शुकदेव बोले, हे भगवन्! भूतोंके कालनिष्ठा ज्ञानसे युक्त कर्त्ता कौन है, और ब्राह्मणका कर्त्तव्य क्या है? उसे आप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, अतीत और अनागत विषयोंके जाननेवाले ब्रह्मज्ञ तथा सर्व्वधर्म्मज्ञ पिता व्यासदेव उस प्रश्न करनेवाले पुत्रसे वह सब वृत्तान्त कहने लगे।

व्यासदेव बोले, अनादि अनन्त जन्म रहित दीप्तिमान् नित्य, अजर, अव्यय तर्कके अगोचर अविज्ञेय ब्रह्म सृष्टिके पहिले वर्त्तमान था; कलाकाष्ठा आदि व्यञ्जक सूर्य्य आदि जो कुछ व्यक्त पदार्थ हैं, वे सभी मनोमय हैं; इसलिये वक्ष्यमाण रूपसे प्रकट कालको ब्रह्म स्वरूपसे मालूम करना उचित है। पन्द्रह निमेषका एक काष्ठा होता है, तीस काष्ठाको एक कला कहते हैं, तीस कला और कलाके दशवें भाग तीन काष्ठाका एक मुहूर्त्त हुआ करता है, तीस मुहूर्त्तकी एक दिन और राति होती है; मुनि लोग इस ही प्रकार गिनती किया करते हैं, तीस दिनरातका एक महीना और बारह महीनोंका एक वर्ष कहा जाता है। सांख्य जाननेवाले पुरुष कहते हैं, दो अयनका एक वर्ष होता है। अयन दो प्रकारके हैं, दाक्षिणायन और उत्तरायण। सूर्य्यदेव मनुष्य लोक सम्बन्धीय रात दिनका विभाग करते हैं जीवोंकी निद्राके लिये रात और कार्य्य करनेके वास्ते दिन हुआ करता है। मनुष्य लोकका एक महीना पितरोंका एक दिन रात है, उसके बीच यह विभाग है, कि कृष्ण पक्ष उन लोगोंके कर्म्म चेष्टाके निमित्त दिन रूपसे विहित है, और

शुक्लपक्ष स्वप्नके निमित्त रात्रिरूपसे कहा गया है। मनुष्योंका एक वर्ष देवताओंका एक दिन रात है। इसका ऐसा विभाग है, कि उत्तरायण दिन और दक्षिणायन रात्रिरूपसे निरूपित है। जीव लोकके दिन रातका विषय जो वर्णन किया है, उसके अनुसार क्रमसे जो देव लोकके दिन रात्रि कही गई, उस देव परिमाणसे दो हजार वर्ष पर ब्रह्माकी एक अहो रात होती है। सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग, इन चारोंयुगोंसे पृथक् पृथक् वर्षोंकी गिनती हुआ करती है। देवपरिमाणसे चार हजार वर्ष सतयुगका परिमाण है और उसही परिमाणसे चार सौ वर्षको सतयुगकी सन्ध्या होती है तथा चार सौ वर्ष तक सन्ध्यांश काल है। इस ही प्रकार सन्ध्या और सन्ध्यांशके सहित इतर युग सब एक एक चरणहीन हैं, अर्थात् त्रेतायुग देव परिमाणसे तीन हजार वर्षका है, उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश प्रत्येकका परिमाण तीन सौ वर्षका है। द्वापर देवपरिमाणसे दो हजार वर्षका है, उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश प्रत्येक दो सौ वर्षके हैं। कलियुग देव परिमाणसे एक हजार वर्षका है, उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश प्रत्येक एक सौ वर्षके निरूपित हुए हैं। ये चारोंयुग शाश्वत सनातन लोकोंको धारण कर रहे हैं, ब्रह्मवित् पुरुष इस कालको ही नित्य ब्रह्म कहके जानते हैं। सतयुगमें सब धर्म और सत्य आचरण था, अधर्मसे कोई विषय प्राप्त नहीं होते थे; त्रेता आदि युगोंमें क्रमसे धर्म एक एक चरणहीन हुआ है; चोरी झूठ और शठतासे अधर्मकी वृद्धि हुई है, सतयुगमें सब पुरुष ही चार सौ वर्षकी आयुसेयुक्त और रोगरहित रहके सब मनोरथोंको सिद्ध करते थे। त्रेतायुगोंसे क्रमसे मनुष्योंकी आयु एक एक चरण घटती आती है। मैंने सुना है, प्रति युगमें वेदवाक्य और उसके फल, आशी तथा आयु क्रमसे ह्रस्व होती जाती है। सतयुगमें मनुष्योंके धर्म स्वतन्त्र थे, त्रेता और द्वापरमें भिन्न भिन्न धर्म हुए; युग ह्रासके अनुसार कलियुगमें भी मनुष्योंके धर्म पृथक् रूपसे निर्दिष्ट हुए हैं। सतयुगमें तपस्या ही मनुष्योंका परम धर्म था, त्रेतामें ज्ञान ही श्रेष्ठ था, द्वापरमें यज्ञ कर्म और कलियुगमें केवल दानही सबसे श्रेष्ठ धर्मरूपसे वर्णित हुआ है। कवि लोग इस देवपरिमित बारह हजार वर्षको युग कहा करते हैं, इस ही सहस्र वर्षके परिमाणसे एक ब्राह्म दिन होता है, ब्राह्मरात्रिका परिमाण भी इतना ही है। जगत्के ईश्वर ब्रह्मा उस दिवसके अन्तमें योगनिद्रा अवलम्बन करके सोते हैं, रात्रि बीतनेपर जाग्रत हुआ करते हैं। जो लोग सहस्र युग पर्य्यन्त ब्रह्माका एक दिन और सहस्रयुगके अन्तभागको उनकी रात्रि जानते हैं, वेही अहोरात्रिके जाननेवाले हैं। निद्राके अनन्तर सावधान होनेपर ब्रह्मा निर्व्विकार स्वरूपको मायासे विकारयुक्त करते हैं, फिर महत् भूतोंकी सृष्टि करनेमें तत्पर होते हैं उससे ही व्यक्तात्मक मन उत्पन्न होता है। तेजोमय महत्तत्व स्वरूप ब्रह्म ही जगतका बीज है, उससे ही यह समस्त जगत् उत्पन्न हुआ है; द्रव्याभ्यन्तररहित उस एक मात्र भूतसे स्थावर जङ्गम सब प्राणी उत्पन्न होते हैं। ब्रह्मा दिनके प्रारम्भमें विबुद्ध होकर अविद्याके सहारे जगत्की सृष्टि करते हैं, सृष्टिकी आदिमें महत्तत्व और व्यक्तात्मक मन उत्पन्न होता है। ईश्वर पूर्व्वसर्गके अन्तमें सात मानस पदार्थोंको लय करके उत्तरसर्गके प्रारम्भमें उसकी सृष्टि किया करता है। दूरग और बहुधागामी प्रार्थना तथा संशयात्मक मन सिसृक्षाके जरिये प्रेरित होकर सृष्टिको अनेक रूपसे किया करता है। पण्डित लोग कहा करते हैं, कि मनसे आकाश उत्पन्न होता है, उसका गुण शब्द है। आकाशसे सर्व्वगन्धको ढोनेवाला पवित्र और बलवान्

वायु उत्पन्न होता है, उसका गुण स्पर्श है। वायुसे भास्वर रोचिष्णु सफेद वर्णकी ज्योति उत्पन्न होती है, उसका गुण रूप है; अग्निसे रसात्मक जल उत्पन्न हुआ करता है, जलसे भूमि उत्पन्न होती है, उसका गुण गन्ध है, ये सब परम सृष्टि हैं। उत्तरोत्तर भूतोंमें पूर्व्वके भूतोंके सब गुण प्राप्त होते हैं। इन सब भूतोंके बीच जो भूत जबतक जिस प्रकार वर्त्तमान रहता है; उसका गुण भी तबतक उस ही प्रकार उसमें निवास करता है। कोई पुरुष जलके बीच गन्ध सूंघके मूढ़ताके कारण यदि उसे जलका ही गन्ध कहके माने, तो वह यथार्थमें उसका नहीं है, गन्ध पृथ्वीका गुण है; वायु और जल आदिमें वह आगन्तुक द्रव्य सम्पर्कसे मालूम हुआ करता है। ये महावीर्य्यशाली सात प्रकारके व्यापक पदार्थ अर्थात् महत्तत्व, आकाश तत्व और आकाशादि अपञ्चीकृत पञ्च महाभूतोंके परस्पर न मिलनेसे प्रजाओंकी सृष्टि करनेमें समर्थ नहीं होसकती। ये परस्परके सहारेसे मिलित होकर शरीर स्वरूप अवलम्बको प्राप्त होके पुरुष रूपसे कहे जाते हैं। पञ्चभूत, मन और दशों इन्द्रिय ये सोलह पदार्थ शरीरका आसरा करके एकत्रित और मूर्त्तिमान हुआ करते हैं; महत्तत्व आदि सब भूत भोगनेसे शेष रहे हुए कर्म्मके सहित उस सूक्ष्म शरीरसे प्रविष्ट होते हैं। भूतोंका आदि कर्त्ता निज उपाधिभूत मायाके एकादश भूत समस्त भूतोंको सङ्कलन करके तपस्याचरणके निमित्त उसमें ही प्रविष्ट हुआ करता है, पण्डित लोग उस ही आदि कर्त्ताको प्रजापति कहते हैं। वही शरीरान्तर वर्त्ती प्रजापति स्थावर जङ्गम जीवोंको उत्पन्न करता है। शरीरमें प्रवेश करनेके अनन्तर वह प्रजापति देवर्षि, पितर और मनुष्य लोकोंकी सृष्टि करनेमें तत्पर होता है; क्रम क्रमसे नदी, समुद्र, पहाड़, दिशा, बनस्पति, मनुष्य, किन्नर, निशाचर, पशुपक्षी, हरिन, सर्प और आकाश आदि नित्य वस्तु तथा घट प्रट आदि अनित्य वस्तुओंसे युक्त स्थावर जङ्गम पदार्थोंकी सृष्टि करता है। वे सब पहिले सृष्टिके समयमें जिन सब कर्म्मोंको प्राप्त हुए थे, फिर उत्पन्न होके उन्हीं कर्म्मोंको प्राप्त करते हैं। मनुष्य, किन्नर, निशाचर आदि जीवोंने विधाताके जरिये प्रकट होके हिंसक, अहिंसक कोमल, कठोर, धर्म्म, अधर्म्म, सत्य और मिथ्या आदि गुणोंको अवलम्बन किया अर्थात् पहली सृष्टि समयमें जिनको जिन विषयोंमें अभिलाषा थी, इस जन्ममें भी उनको उस ही विषयमें इच्छा हुई, जगदिन्द्रजाल फैलानेवाले विधाता ही वियदादि सब महाभूतों, रूप आदि इन्द्रियों और द्रव्याकृति मूर्त्तियों नानात्व अर्थात् शुक्ति रजतकी भांति प्रति पुरुषमें विभिन्नता, तथा जीवोंके विषय विशेषमें विनियोग अर्थात् भोक्तृभाव सम्बन्ध बन्धन किया। कोई कोई मनुष्य कहा करते हैं, सब कर्म्मोंमें ही पुरुषकी सामर्थ है; इसलिये कर्म्म ही प्रधान है। दूसरे ब्राह्मण लोग कहा करते हैं सूर्य्य आदि सब ग्रह ही सत् असत् फलके देनेवाले हैं; इसलिये दैव ही प्रधान है। स्वभाव वादी पुरुष स्वभावको ही सबसे प्रधान कहा करते हैं। दूसरे मतवाले मनुष्य कहते हैं, दैवकर्म्म स्वभावके अनुग्रहीत होके फल देनेमें प्रवृत्त हुआ करता है, पौरुष कर्म्म और दैव, ये पृथक् नहीं हैं। ये तीनों ही मिलके फल उत्पन्न करते हैं, इनमेंसे प्रत्येकको प्रधानता नहीं है। जीवोंके अनेकत्व विषयमें क्या कारण है; जो इसे आर्हत-मतावलम्बी नास्तिकोंने विशेष रूपसे वर्णन नहीं किया, इसे निर्व्वाचन करनेमें भी उन लोगोंकी सामर्थ नहीं है, यह विषय अनिर्व्वचनीय है, ऐसा भी नहीं कह सकते। कर्म्म और दैव इन दोनोंके बीच अन्यन्तरका कारणत्व सुवच वा दुर्व्वच हो, दोनों ही इकट्ठे होनेपर कारण होसकते हैं,

ऐसी आशंका करके उक्त दोनोंको ही वे लोग कारण नहीं कहते और उन दोनोंके अतिरिक्त दूसरा कोई कारण है, वह भी नहीं कह सकते। तप्त शिलारोहणादि निर्ज्जराख्य धर्म्मके जरिये मोक्ष हुआ करतो है, वे लोग उसे ही सिद्ध करते हैं। परन्तु रजोगुण और तमोगुणसे रहित अन्तःकरणवाले सम्प्रज्ञात अवस्थामें स्थित योगीलोग ब्रह्मको ही कारण रूपसे देखते हैं; इस ही लिये वे लोग समदर्शी कहे जाते हैं। जीवोंके पक्षमें तपस्या ही मोक्षका कारण है, मनोनिग्रह रूपी शम और बाह्येन्द्रिय निग्रहात्मक दम उस तपस्याके मूल हैं। मनुष्य मन ही मन जो सब कामना करता है, तपस्याके सहारे वह सब पाता है। जिसने जगत्को उत्पन्न किया है, तपस्याके सहारे जीव उसे पाता है, और उसहीका रूप होकर सब जीवोंके ऊपर प्रभुता करनेमें समर्थ हुआ करता है। ऋषि लोग तपोबलसे ही दिन रात वेद पढ़ते हैं, वह अनादि निधन विद्यारूपी वेदवाणी स्वयम्भूके जरिये शिष्य प्रशिष्य सम्प्रदाय क्रमसे प्रवर्त्तित हुई है। सृष्टिके पहले वेदमयी दिव्यवाणी विद्यमान थी, उससे ही समस्त वृत्तान्त उत्पन्न हुए हैं। सृष्टिके आरम्भमें ईश्वर वेदशब्दोंसे ऋषियोंके नाम धेय, जीवोंके अनेक रूप और सब कर्म्मोंका प्रवर्त्तन निर्म्माण करता है; वेदके बीच ऋषियोंके जो नाम धेय विहित थे सृष्टि आरम्भके समय विधाताने उसे ही विधान किया। नाम भेद, तपस्या, कर्म्म और यज्ञोंको लोकसिद्धि कहते हैं, और आत्मसिद्धिके विषय वेदमें दश प्रकारसे वर्णित हुए हैं। वेददर्शी ऋषि लोग कहा करते हैं, कि वह वेद और वेदान्त वाक्योंके बीच अत्यन्त गहनभावसे विद्यमान है। पहले कहे हुए दश प्रकारके क्रम यही हैं, कि वेदाध्ययन, दारपरिग्रह करके गार्हस्थ्य अवलम्बन कृच्छ्रचान्द्रायण आदि वाणप्रस्थाश्रम रूपी तपस्या, सर्व्वाश्रम साधारण सन्ध्योपासना आदि कर्म्म, ज्योतिष्टोमादि यज्ञ, कीर्त्तिकर तड़ाग और आराम आदि पूर्त्तकर्म्म, ध्यान आदि मानस धर्म्म वैश्वानराख्यका कारण ब्रह्मदर्शन दहरादि ग्रह उपासना और विशुद्धस्वरूपका ज्ञान, इन दशों प्रकारके क्रमके जरिये सांसारिक दुःखोंसे पार होकर परब्रह्मको प्राप्त किया जाता है। इस ही लिये वेद और वेदान्त वाक्य उपनिषदोंके बीच ये दश प्रकारके क्रम आत्मसिद्धिके उपाय रूपसे वर्णित हुए हैं। देहाभिमानी जीव जो द्वैत दर्शन किया करता है; वह कर्म्मज है; कर्म्मके नष्ट होनेपर सुषुप्ति और समाधि समयमें उसका अभाव होता है। सुख, दुःख, सर्दी, गर्म्मी, मान, अपमान आदि द्वन्द्वयुक्त द्वैतदर्शनको ही आत्मसिद्धि कहा जाता है। पुरुष विज्ञान बलके प्रभावसे क्षात्रिय भाव रूप भेद परित्याग किया करता है। दो प्रकार ब्रह्मको जानना उचित है, पहला शब्द-ब्रह्मरूप प्रणव, दूसरा परब्रह्म; जो प्रणव उपासना विषयमें निपुण होते हैं, वेही परब्रह्मको प्राप्त हुआ करते हैं। क्षत्रियोंको पशुहिंसा, वैश्योंको धान्य आदि उत्पन्न करना, शूद्रोंको ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन तीनों वर्णोंकी सेवा करनी और ब्राह्मणोंको ब्रह्मकी उपासना ही यज्ञस्वरूप है त्रेतायुगमें यज्ञोंकी इस ही प्रकारसे विधि हुई थी; सतयुगमें किसी विधिका प्रयोजन नहीं था; क्यों कि उस समयमें ये सब प्रवृत्ति स्वतः सिद्ध थी। द्वापरमें लोग यज्ञकर्म्म आरम्भ करनेकी इच्छा करते थे, कलियुगमें सब कोई उस विषयसे विमुख हुए हैं। सतयुगमें मनुष्य अद्वैतनिष्ठ थे, वे लोग ऋक्, यजु, सामवेद और स्वर्ग आदिके साधन काम्यकर्म्म यज्ञादिकोंको तपस्यासे पृथक् जानके वह सब परित्याग करके केवल तपस्याका अनुष्ठान करते थे। त्रेतायुगमें धर्म्मविषयमें मनुष्योंकी स्वतःप्रवृत्तिके अभाव निबन्धनसे धर्म्म-

संक्रान्त शासन कर्त्ता जो सब महाबलवान् राजा उत्पन्न हुए थे, वे लोग स्थावर, जङ्गम आदि सब प्राणियोंको सब तरहसे धर्म्मविषयक शासन करते थे, इसहीसे त्रेतायुगमें सब वेद, सब यज्ञ और वर्णाश्रमोंके यज्ञादिकोंके अनुष्ठान करानेमें तत्पर थे। द्वापरमें परमायुका परिमाण घटनेसे शासन करनेवाले सभी भ्रष्ट हुए। कलियुगमें सब निखिल वेद थोड़ेसे दीख पड़ते हैं, सर्व्वत्र नहीं दीखते; केवल अधर्म्मसे पीड़ित होनेसे यज्ञ और वेद नष्ट होरहे हैं। सतयुगमें जो धर्म्म ब्राह्मण मात्रमेंही दीख पड़ता था, इस समय वह चित्तको जीतनेवाले योगनिष्ठ, वेदान्त सुननेमें तत्पर ब्राह्मणोंमें प्रतिष्ठित होरहा है। त्रेतायुगमें अग्निहोत्र करनेवाले ब्राह्मण लोग आचार व्यवहारको अतिक्रम न करके वेदोक्त प्रमाणके अनुसार यज्ञ आदि धर्म्म, और उसके सहित एकादश उपवास आदि व्रत और तीर्थ दर्शनादि धर्म्म-कर्म्म इच्छा पूर्व्वक निवाहते थे; वैदिक द्विजाति भी स्वर्गको कामना करके यज्ञ करते थे। द्वापरयुगमें ब्राह्मण आदि तीनों वर्णपुत्रको कामनासे यज्ञ करनेमें प्रवृत्त होते थे। कलियुगमें केवल शत्रु-मारण आदिकी इच्छासे लोग यज्ञ किया करते हैं; युगयुगमें इस ही प्रकार धर्म्म अलग अलग दीख पड़ता है। जैसे प्रावृट् ऋतुमें अनेक प्रकारके स्थावर, जङ्गम, वृक्ष लता गुल्म आदि वर्षासे उत्पन्न होकर बढ़ते हैं, वैसेहो युगयुगमें धर्म्माधर्म्मकी घटती बढ़ती हुआ करती है। जैसे ऋतु कालमें सर्दी गर्म्मी आदि अनेक भांतिके ऋतुके चिन्ह पर्य्यायक्रमसे दीखते हैं, वैसेही ब्रह्मा और हर आदिमें सृष्टि संहार सामर्थ्यकी वृद्धि और ह्रास दीख पड़ती है, चतुर्युगात्मक कालपुरुषके कलाकाष्ठादि भेदसे नानात्व, धर्म्माधर्म्मकी ह्रास वृद्धि भेदसे विभिन्नत्व और उसका अनादि निधनत्व पहिले तुम्हारे समीप वर्णन किया है। वह काल ही प्रजाओंको उत्पन्न करके संहार करता है। जो सब जरायुज अण्डज स्वेदज और उद्भिज प्राणी स्वाभाविक सुख दुःखसे युक्त होकर वर्त्तमान हैं, काल ही उनका अधिष्ठान है, इसलिये समय ही सब भूतोंको धारण कर रहा है, और प्रतिपालन करता है, समय ही स्वयं सर्व्वभूत स्वरूप है। हे तात! समय केवल सर्व्व भूत स्वरूप ही नहीं है, समय सर्ग आदि आत्म स्वरूप है। तुमने मुझसे जो पूछा था, मैंने उसके अनुसार सृष्टि, काल, यज्ञ, श्राद्धादि कर्म्म, उनके प्रकाशक वेद, उनका अनुष्ठान करनेवाला देहादि परिग्रह कार्य्य और क्रियाफल स्वर्गादि विषयोंको वर्णन किया। ये सभी काल स्वरूप पुरुषमय हैं।

२३१ अध्याय समाप्त।

वेदव्यास बोले, दिन बीतनेपर रात्रिके आरम्भमें ईश्वर आत्मामें सूक्ष्मभावसे स्थित इस जगत्को जिस प्रकार परिणत करता है, उत्पत्ति क्रमसे विपरीत उस प्रलयका विषय कहता हूं सुनो। आकाशमें द्वादश आदित्य और सङ्कर्षणके मुखसे उत्पन्न हुई अग्निकी अर्चि इस दृश्यमान जगत्को जलानेमें प्रवृत्त होती है। उस समय सब जगत् सौरी और आग्नेयी ज्वालासे परिपूरित होकर जाज्वल्यमान हुआ करता है। पृथ्वी मण्डलमें जो सब स्थावर जङ्गम जीव हैं, वेही अगाड़ी प्रलयको प्राप्त होते हैं और लय होनेपर भूमिके साथ मिल जाते हैं। स्थावर और जङ्गम जीवोंके लय होनेपर भूमि वृक्षहीन और तृण रहित होकर कछुएकी पीठके समान दीख पड़ती है। जिस समय जल भूमिकी कठोरताका हेतु गन्धगुण ग्रहण करता है, उस समय पृथ्वी घृतकी भांति कठोरता परित्याग करके जलमय होजाती है। तब जल तरङ्गमाला और महा-

शब्दसेयुक्त होकर इस दृश्यमान जगत्को अपने रूपमें लीन करते हुए प्रतिष्ठा प्राप्त करके स्थिति तथा विचरण करता है।

हे तात! जब अग्नि जलके गुणको ग्रहण करती है, उस समय उसका रस अग्निसे सूखनेसे जलभी अग्निमें लीन होता है। जिस समय अग्निशिखा मध्यमें स्थित आदित्य मण्डलको परिपूरित करती हैं उस समय यह समस्त आकाशमण्डल अग्निशिखासे परिपूर्ण होकर प्रज्वलित हुआ करता है,। वायु जब अग्निका गुण ग्रहण करता है, तब उस समय अग्नि विरूप होकर प्रशान्त होती है, अनन्तर अत्यन्त बृहत् वायु दोधूयमान हुआ करता है, और अपने महत् शब्दको अवलम्बन करके नीचे, ऊपर, तिर्य्यग् प्रदेश तथा दशों दिशाको आक्रमण कर धावित होता है। शेषमें जब आकाश वायुके स्पर्श गुणको ग्रास करता है, तब वायु शान्त होजाता है, और शब्दके पूर्व्वरूप वर्ण विभाग रहित नादकी भांति आकाशमें स्थित रहता है; वायु आदि दृश्य पदार्थोंमें जिसका शब्द वर्त्तमान है वह आकाश उस समय रूप हीन, रस रहित स्पर्श वर्ज्जित, गन्धहीन और अमूर्त्तत्र होकर नादकी भांति स्थित करता है।

अनन्तर आकाशका अभिव्यक्तात्मक शब्द गुण मनके जरिये लय होता है, मनका व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप ब्राह्म प्रलयमें लीन होजाता है। उस समय चन्द्रमा आत्मगुण अर्थात् निःसीम ज्ञान वैराग्य और ऐश्वर्य्य धर्म्मरूप कर्म्ममें आविष्ट होकर हिरण्यगर्भ सम्बन्धीय समष्टि मनको नष्ट करता है, मन शान्त होनेपर भी केवल चन्द्रमामें वर्त्तमान रहता है। योगी पुरुष चन्द्रमा नामक उपाधियुक्त सङ्कल्पमात्र शरीर मनको बहुत समयतक वशीभूत करनेमें समर्थ होते हैं; जब सङ्कल्प विचारात्मिका चित्तवृत्तिको ग्रास करता है, तब सङ्कल्पको रोकना अत्यन्त दुःसाध्य है। इस सङ्कल्पके वशीकरणका यही उपाय है कि "यह सब मैंही हूं," इसही प्रकारका ज्ञान सबसे उत्तम है। "मैं" इतना ही प्रत्यय स्वरूप काल सबका अनुभव करानेवाला विज्ञानको ग्रास करता है, और बल नामक शक्ति ही काल स्वरूप है, यह वेदमें प्रतिपन्न है। जैसे बल कालको कवलित करता है, काल भी उस ही प्रकार बलको ग्रास किया करता है। विदेह कैवल्यरूप शान्त बुद्धि पुनरुत्थानाभाव निवसनकालको वशमें कर रखती है। विदेह कैवल्यस्वरूपी शान्तबुद्धि जिस समय कालको वशीभूत करती है, उस समय विद्वान् योगी आकाशके गुणनाद अर्थात् अर्द्धमात्रा विन्दुके अनुसार आत्माको परब्रह्ममें संयुक्त करता है। वह परमात्माही नित्य निर्म्मुक्त सर्व्वोत्तम परब्रह्म है; वही इस प्रकार सब भूतोंको प्रलय किया करता है, यह प्रलयका विषय कहा गया है रसरीमें सर्पभ्रमकी भांति सब भूतोंके लीन होनेपर केवल अकेला ब्रह्म ही शेष रहता है। परमात्मदर्शी योगियोंने शास्त्रमें कहेहुए विद्यामय इस बोधविषयको निःसंशयरूपसे देखकर यथावत वर्णन किये हैं। ब्रह्मा इस ही प्रकार बार बार सृष्टि और प्रलय किया करता है। सहस्र युग पर्य्यन्त सृष्टिकाल ही उसका दिन और सहस्र युग पर्य्यन्त प्रलयका समय ही उसकी रात्रिरूपसे गिनी जाती है।

२३२ अध्याय समाप्त।

वेदव्यास बोले, हे तात! तुमने जो भूतग्रामका विषय पूंछा था, मैंने उस विषयको वर्णन किया; अब ब्राह्मणोंके जो कुछ कर्त्तव्य हैं। उसका विवरण करता हूं सुनो। द्विजातियोंके जातकर्म्म आदिसे समावर्त्तन पर्य्यन्त सब दक्षिणान्वित क्रिया वेद जाननेवाले आचार्य्यके निकट सिद्ध करनी होगी। यज्ञवित् ब्राह्मण गुरुसेवामें रत रहके अखिल वेदको पढ़कर आचार्य्यसे

अऋणी होके गृहस्थाश्रम अवलम्बन करे; अथवा आचार्य्यसे अनुज्ञात होकर जबतक शरीर धारण करे, तबतक चारों आश्रमोंके अन्यतरको विधिपूर्व्वक अवलम्बन करे। अथवा ब्रह्मचर्य्यके अनन्तर दारपरिग्रह कर सन्तान उत्पन्न करके जङ्गलके बीच गुरुजनोंके निकट यतिधर्म्मके जरिये निवास करे। महर्षि लोग गृहस्थको इन सब धर्म्मोंका मूल कहा करते हैं गार्हस्थ आश्रममें पक्व कषाय अर्थात् लय और विक्षेपके अभावमें राग आदि वासनाके जरिये शुद्धता निबन्धनसे जिनका चित्त अखण्डवस्तुको अवलम्बन करनेमें समर्थ नहीं है, वैसे ही ब्राह्मण जितेन्द्रिय होनेपर सब आश्रमोंमें ही सिद्धिलाभ करनेमें समर्थ होते हैं।

पुत्रवान् श्रोत्रिय और यायावर ब्राह्मण तीनों ऋणोंसे विमुक्त हो हैं, अनन्तर वह कर्म्मसे पवित्र हो.कर आश्रमान्तरमें गमन करें, पृथ्वीके बीच ब्राह्मण जिस स्थानको पवित्र समझें, वहां पर वास करे और श्रेष्ठ यश उपार्ज्जनमें यत्नवान् होवे। उत्तम महत् तपस्या, सब विद्याकी पारदर्शिता, यज्ञ और दानसे द्विजोंके यशकी वृद्धि होती है, इस लोकमें ब्राह्मणोंकी जितने परिमाणसे यशस्करी कीर्त्ति हुआ करती है, वह उतने ही परिमाणसे पुण्यवान लोगोंके अनन्त लोकको उपभोग करते हैं। ब्राह्मण अध्ययन, अध्यापन, यजन और याजन करे, कभी वृथा प्रतिग्रह वा वृथा दान न करे, यजमान, शिष्य और कन्यासे जो महत् धन प्राप्त हो, वह यज्ञकार्य्यमें व्यय और दान करे, किसी भांति अकेले उपभोग न करे। देवता ऋषि, पितर, गुरु, आतुर और भूखोंके लिये जो दान किया जाता है गृहस्थके पक्षमें उससे बढ़के दूसरा तीर्थ और कुछ भी नहीं है। अन्तर्हित शत्रु सन्तप्त और शक्तिके अनुसार ज्ञान प्राप्त करनेमें अनुरक्त ब्राह्मणोंको उचित है, कि निज शक्तिको अतिक्रम करके प्राप्त हुई वस्तुओंमेंसे भी अधिक दान करें। अनुरूप अर्हणीय ब्राह्मणोंको कुछ भी अदेय नहीं है; प्राचीन पण्डित लोग ऐसा कहा करते हैं, कि उच्चैःश्रवा घोड़ा भी साधुओंको प्राप्य है। महाव्रत राजा सत्यसन्धने इच्छानुसार बिनती करके निज प्राण दानसे ब्राह्मणका प्राण बचाके सुरपुरमें गमन किया है। सांस्कृतिपुत्र रन्तिदेव महात्मा वशिष्ठको न बहुत ठण्ढा न बहुत गर्म्म जल दान करके अमरलोकमें सम्मान भाजन हुए हैं, इन्द्रदमन बुद्धिमान् अत्रेय राजाने किसी पूजनीय ब्राह्मणको अनेक तरहका धन दान करके अनन्तलोकमें गमन किया है। उशीनरपुत्र शिविराजाने राज्याङ्गोंके सहित निज और सपुत्र ब्राह्मणोंको दान करके इस लोकसे नाकपृष्ठ पर आरोहण किया है। काशिराज प्रतर्द्दन ब्राह्मणको अपना दोनों नेत्र दान करके इस लोक और परलोकमें अतुल कीर्त्तिभागी हुए। देवावृध राजाने आठ शलाकाओंसे युक्त सुवर्णमय महामूल्यवान छत्र दान करके राज्य वासियोंके सहित भूलोकमें गमन किया, अत्रिपुत्र महातेजस्वी सांस्कृतिने शिष्योंको निर्गुण ब्रह्मविषयक उपदेश देकर परम श्रेष्ठ लोकोंको पाया है। प्रतापवान अम्बरीष राजा ग्यारह अर्बुद गऊ ब्राह्मणोंको दान करके राज्यके सहित सुरलोकमें गये। सावित्रीने दोनों दिव्य कुण्डल और जनमेजयने ब्राह्मणके निमित्त अपना शरीर छोड़के उत्तम लोक पाया है। वृषादर्भि युवनाश्व समस्त रत्न प्रिय स्त्रियां और रमणीय गृह दान करके स्वर्ग लोकमें निवास करते हैं। बिदेहवंशीय निमि राजाने ब्राह्मणोंको राज्य दिया, जमदग्निपुत्रने पृथिवी दान की और गय राजाने नगरके सहित पृथ्वी ब्राह्मणोंको समर्पण किया।

जैसे प्रजापति प्रजाकी रक्षा करते हैं, वैसे ही अनावृष्टिके समय भूतभावन वशिष्ठदेवने सब जीवोंको जीवित रखा था। करन्धमके पुत्र

पवित्र बुद्धिवाले मरुत अङ्गिराको कन्या दान करनेसे शीघ्र ही स्वर्गमें गये। पाञ्चालराज बुद्धिमान ब्रह्मदत्तने अग्रगण्य द्विजोंको निधि और शङ्ख दान करके भी शुभलोकोंको पाया है। मित्रसह राजा महानुभाव वशिष्ठ देवको प्रिय मदयन्ती दान करके उनके सहित सुरलोकमें गये; महायशस्वी राजर्षि सहस्रजित् ब्राह्मणोंके निमित्त प्रिय प्राण त्यागके सर्व्वोत्तम लोकोंको प्राप्त किया है। राजा शतद्युम्न मुद्गर ऋषिको सर्व्वकाम सम्पूर्ण सुवर्णमय गृह दान करके स्वर्गमें गये। द्युतिमान नाम प्रतापवान शल्व राज ऋचीकको राज्य दान करके अत्यन्त उत्तम लोकोंमें गया है। राजर्षि मदिराश्वने हिरण्यहस्तको सुन्दरी कन्या दान करके देवताओंसे प्रशंसित लोकोंमें गमन किया है, राजऋषि लोमपाद ऋष्यशृङ्गको शान्ता नामी कन्या दान करके सर्व्वकाम सम्पन्न हुए। महातेजस्वी प्रसेनजित् राजाने सात हजार बछड़े युक्त गऊ दान करके उत्तम लोक प्राप्त किया है। ये सब लोग और इनके अतिरिक्त शिष्टस्वभाव जितेन्द्रिय बहुतेरे महात्मा लोग दान और तपस्यासे स्वर्गमें गये हैं। जबतक यह पृथ्वी है, तबतक उन लोगोंकी कीर्त्ति प्रतिष्ठित रहेगी, क्यों कि इन लोगोंने दान, यज्ञ और सन्तान उत्पन्न करके अमर लोक प्राप्त किया है।

२३२ अध्याय समाप्त।

वेदव्यास बोले, ब्राह्मण वेदमें कही हुई सब साङ्ग वेदविद्या पढ़े। ऋक्, साम, वर्ण, अक्षर, यजु और अथर्व, इन षटकर्म्मोंमें पूर्णरीतिसे वर्त्तमान रहके भगवान् बास करता है। वेदवादको जाननेवाले अध्यात्म विद्यामें निपुण सत्ववन्त महाभाग ब्राह्मण लोग उत्पत्ति और प्रलयके कारण परमात्माको देखते हैं ब्राह्मण इस ही प्रकार धर्म्म अवलम्बन करते हुए जीवनका समय व्यतीत करे। शिष्टोंकी भांति कर्म्म करनेमें तत्पर होवे और सब भूतोंके अविरोध्य वृत्तिलाभकी अभिलाष करे। जो गृहमेधी साधुओंसे विज्ञान लाभ करके शिष्ट और शास्त्र विचक्षण होकर इस लोकमें निज धर्म्मके अनुसार कर्म्म करता और सात्विक कर्म्मोंमें विचरता हुआ प्रागुक्त षट् कर्म्मोंमें रत रहता है। वही ब्राह्मण है। इस प्रकार श्रेष्ठ ब्राह्मण सदा श्रद्धावान् होकर पञ्च यज्ञोंका विधान करे। धैर्य्यशाली, अप्रमत्त, दान्त धर्म्मवित्, यत्नवान, हर्षहीन, मदरहित और क्रोध वर्ज्जित ब्राह्मण अवसन्न नहीं होते। दान, वेदाध्ययन, यज्ञ तपस्या, लज्जा, सरलता और इन्द्रिय दमन, ये सब विषय ब्राह्मणोंके तेजको बढ़ाते और पापोंको दूर करते हैं। पाप पङ्कको धोनेवाले मेधावी मनुष्य लघुभोजी और जितेन्द्रि होकर काम क्रोधको वशमें करते हुए ब्रह्मपद प्राप्तिके लिये कामना करे; तीनों अग्नि और ब्राह्मणोंको पूजा करे, देवताओंके निकट प्रणत होवे, अकल्याणको त्याग दे; ब्राह्मणोंको यही पूर्व्वानुष्ठेय वृत्ति विहित हुई। शेषमें ज्ञानागमके सहारे कर्म्म करनेसे उस विषयमें उसे सिद्धि प्राप्त हुआ करती है बुद्धिमान मनुष्य पञ्चेन्द्रिय जलसेयुक्त, मन्युपङ्क समन्वित, अनिभवनीय भयङ्करी अत्यन्त दुस्तर लोभके मूल महानदीसे अनायास ही पार होते हैं। यह देखता रहे, कि विधिदृष्ट महाबलसे युक्त प्रतिघात रहित अत्यन्त मोहनकाल सदा ही उपस्थित होरहा है।

जगत् स्वभाव श्रोतमें पड़के सदा ही भासमान होता है, काल स्वरूप महा आवर्त्त, मास मय तरङ्ग, ऋतुरूपी वेग, पक्षमय उलप तृण, निमेष आदि फेन, दिनरात्रि जल, घोरकाम ग्राह, वेद और यज्ञरूपी नौका, जीवोंके धर्म्म स्वरूप द्वीप, अर्थाभिलाषमय दूध सत्य बचनरूपी मोक्षतीर, हिंसातरुवाही, दो तालाबोंसे युक्त प्रवाहके बीचमें स्थित संसार श्रोतके जरिये विधा-

उसष्ट जीव निरन्तर शयन गृहमें आकृष्ट होता है। स्थिरचित्तवाले मनीषि लोग प्रज्ञामय नौकाके सहारे इस संसार-स्रोतसे पार होते हैं प्रज्ञामय नौकासे रहित अल्पबुद्धि मनुष्य इससे पार होनेका और उपाय क्या करेंगे। बुद्धिमान् मनुष्य उपस्थित विपदसे निस्तार लाभ कर सकते हैं, दूसरे लोग कभी विपदसे छूटनेमें समर्थ नहीं हैं। प्राज्ञ पुरुष दूर होनेपर भी सब स्थानोंके दोष गुणको देखते हैं। सतकामात्मा, डावांडोल चित्त, अल्पचेता, अप्राज्ञ, पुरुष संशयसे पार नहीं होते; जिसका अस्तित्व है, वह कभी विनष्ट नहीं होता। उत्तरणरहित मनुष्य महादोषसे मोहित होकर नियमित होता है, कामरूप ग्रहसे, जो आक्रान्त हुआ है, उसका ज्ञान भी उत्तरणका कारण नहीं होता; इसलिये विचक्षण मनुष्य उन्मज्जनके लिये यत्न करे, जो ब्राह्मण होते हैं, उनहीका उन्मज्जन हुआ करता है, जिन्होंने शुद्धवंशमें जन्म लिया है, स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीनों शरीरोंमें आत्म निश्चय विषयमें जिन्हें सन्देह है, जो यजन अध्ययन और दान, इन तीनों कर्म्मोंको साधन किया करते हैं, वैसे ब्राह्मण बुद्धिबलके सहारे जिस प्रकार निस्तार लाभ कर सकें, उस ही भांति उन्मज्जनमें सावधान रहें। संस्कारयुक्त, नियमनिष्ठ, संयतात्मा, दमशील, प्राज्ञपुरुषोंको इस लोक और परलोकमें अव्यवहित सिद्धि हुआ करती है, गृहस्थ पुरुष क्रोध और असूयारहित होकर ऐसे ही ब्राह्मणोंके बीच निवास करें और विघसाशी होकर सदा पञ्चयज्ञ करनेमें यत्नवान् रहे। साधुओंके आचरित धर्म्मके जरिये जीवन बिताते हुए शिष्टोंकी भांति कार्य्योंका अनुष्ठान करें; लोगोंके संग विरोध न करके अनिन्दित वृत्तिलाभकी इच्छा करे। जो लोग शिष्टाचारसे युक्त और विचक्षण होकर विज्ञानतत्व सुनते हैं। और निज धर्म्मके अनुसार सब कर्म्मोंका निर्व्वाह किया करते हैं, वे कर्म्मोंसे सङ्कीर्ण नहीं होते। क्रियावान्, श्रद्धायुक्त दान्त, प्राज्ञ, अनुसूयक और धर्म्माधर्म्मके विशेषज्ञ ब्राह्मण दुस्तर विषयोंके पार होते हैं। धृतिमान अप्रमत्त दान्त, धर्म्मवित् आत्मवान् और हर्ष, मद क्रोधसे रहित ब्राह्मण अवसन्न नहीं होते। ब्राह्मणोंकी यही पुरानी वृत्ति विहित हुई। ज्ञानवत्तासे सब कर्म्मोंको सिद्ध करते हुए ब्राह्मण लोग सब विषयोंमें ही सिद्धि लाभ कर सकते हैं।

मूर्ख मनुष्य धर्म्मकी इच्छा करके भी अधर्म्म किया करता है, अथवा मानो वह शोचना करते हुए अधर्म्म सदृश धर्म्माचरण करता है। "धर्म्म करता हूं" समझके कोई अधर्म्म और कोई अधर्म्मकी इच्छा करके भी धर्म्म करता है। मूढ़ जीव उक्त दोनों प्रकारके कर्म्मोंको न जानके बार बार जन्म लेके मृत्युके मुखमें पड़े हैं।

२३४ अध्याय समाप्त।

वेदव्यास बोले, जैसे स्रोतके जरिये बहता हुआ मनुष्य कभी डूबता और कभी उतरके शेषमें नौकाका अवलम्बन करता है, वैसे ही संसार स्रोतमें भासमान पुरुषोंको यदि वक्ष्यमाण शान्ति नामक कैवल्य प्राप्तिमें अभिलाष हो, तो उनको ज्ञानरूपी नौका अवलम्बन करनी पड़ेगी। जिन सब धीर लोग ध्यानजनित साक्षात्कारके जरिये आत्मनिश्चय किया है, वे लोग ज्ञानरूपी नौकाके सहारे मूर्ख लोगोंको पार किया करते हैं। अज्ञानी लोग जब अपनेको ही किसी प्रकार उत्तीर्ण करनेमें समर्थ नहीं हैं, तब दूसरेको किस प्रकार पार करेंगे, राग आदि दोषोंसे रहित मननशील मनुष्य पुत्र कलत्रादिकोंमें आसक्ति रहित होकर देश, कर्म्म, अनुराग, अर्थ, अनुपाय, अपाय, निश्चय,

नेत्र, आहार, संहार, मन और दर्शन तथा योगकी सहाय, इन बारहोंका अनुसरण करे। जो श्रेष्ठ ज्ञानकी, इच्छा करे उन्हें बुद्धिके सहारे मन और वचनको संयत करना होगा; और जो लोग आत्माकी शान्तिकी अभिलाषा करते हैं, वे ज्ञानके सहारे बुद्धिका संयम करें। वाक्य मनके अधिष्ठाता शान्त आत्माको जिन्होंने जाना है, वे चाहे साधु हों, वा असाधु हों, सब वेदके जाननेवाले अथवा अवेदज्ञ हों, धार्म्मिक वा याज्ञिक वा अत्यन्तही पाप करनेवाले हों, पुरुष प्रवर तथा क्लेश युक्तही होवें, वे इस प्रकारके जरा मरण सागर स्वरूप महादुर्गसे अवश्यही उत्तीर्ण होते हैं। पहली कही हुई रीतिसे अनुष्ठान करना तो दूर रहे, जिन्होंने केवल शान्त आत्माको जाननेकी इच्छा की है, वे कर्म्मकाण्ड अतिक्रम करके निवास करते हैं, निज कर्म्मोंको त्यागनेसे दोषग्रस्त नहीं होते। यज्ञादि कर्म्म जिसके ज्ञान सारथीका उपवेशन स्थान है, अकार्य्योंसे निवृत्ति रूपी लज्जा जिसकी रथगुप्ति है, प्रागुक्त उपाय और अपाय जिसकी धुरीदण्ड है; आपण जिसके पहिये हैं, प्राण जिसका जुआ है, प्रज्ञा और आयु जिसका जीव बन्धन स्थान है, सावधानता जिसका बन्धुर अर्थात् दोनों फलकोंका संश्लेष स्थल है, आचार स्वीकार जिसका नेमिस्वरूप दर्शन, स्पर्शन, घ्राण और श्रवण, ये चारों जिसके अश्वादिरूपी वाहन हैं; शम, दम आदि प्रबलता जिसकी नाभि, सब शास्त्र ही जिसके कोड़े, शास्त्रार्थ निश्चय ज्ञान ही जिसका सारथी, क्षेत्रज्ञ जिसका अधिष्ठाता, श्रद्धा और दम जिसका पुरःसर और त्याग जिसका सूक्ष्म अनुचर है, वह शौचाचारसे मालूम होनेवाला ध्यान गोचर और मुमुक्षु योजित दिव्य रथ ब्रह्मलोकमें विराजता है। ऐसे रथपर चढ़नेमें शीघ्रतायुक्त होकर जो योगीश्वर परब्रह्मको प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं उनके पक्षमें शीघ्रगामी अन्तरङ्ग बिधि कहता हूं सुनो।

यमनियमादिसे युक्त स्थिर वचनशाली जो सब धारण अर्थात् एक विषयमें चित्त लगानेका अभ्यास करते हैं, उसमेंसे विप्रकृष्टतर सूर्य्य, चन्द्र, ध्रुव मण्डल आदि धारणा है, और सन्निकृष्टतर नासाग्र भ्रूमध्य आदि विषय भेदसे विविध धारणा हैं उन्हें प्रशिष्य और प्रपौत्र आदि शब्दकी तरह प्रधारणा कहते हैं। योगी पुरुष उन्हीं सब धारणायुक्त बुद्धिके जरिये क्रमसे पार्थिव जलीय, तैजस, वायवीय और आकाश सम्बन्धीय ऐश्वर्य्य लाभ करते हैं, और क्रम क्रमसे अहङ्कार तथा अव्यक्तका ऐश्वर्य्य प्राप्त करते हैं; अर्थात् ब्रह्मादि कार्य्यरूपको निज निज कारणोंमें संहार करके विशुद्धचित्त होकर परमात्माका दर्शन करते हैं; योगमें प्रवृत्त योगियोंके बीच जिस योगीका जैसा विक्रम है अर्थात् जिसका जैसा अनुभव क्रम होता है, वह और देहाभ्यन्तरमें परमात्मदर्शी योगियोंकी सिद्धि अर्थात् पृथ्वी आदि पञ्चभूतोंके जय करनेका विषय कहता हूं सुनो। प्रति शरीरमें समवस्थित आत्माका वच्यमाण रूप परित्याग अर्थात् गुरुके जरिये उक्त युक्तिके जरिये स्थूल देहका अध्यास छोड़के सूक्ष्मनिवन्धन योगी लोग अन्तःकरणमें उसे देखते हैं, जैसे शिशिर सम्बन्धीय सूक्ष्म धुआं आकाशमण्डलको अवलम्बन करता है, वैसे ही देहके मुक्त हुए आत्माका पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है। अनन्तर धुएंका ठहराव होनेपर दूसरा रूप दीख पड़ता है, वह आकाशस्थित जलरूपकी भांति देहके भीतर दीखता है; जलका व्यतिक्रम होनेपर लोहितवर्ण अग्निरूप प्रकाशित होता है। और अग्निरूपके शान्त होनेपर वृक्षोंको फेंकनेवाला शाणितशस्त्र सवर्ण वायुका रूप प्रकट हुआ करता है, उस समय उर्णतन्तुकी भांति अत्यन्त लघु, और उसहीके समान वायु अवलम्बरहित आकाशमें दीर्घूयमान हुआ करता है। अनन्तर वायुका सूक्ष्म स्वरूप मलिनतारहित प्रकाश-

मय स्वच्छ आकाशमें लीन होनेपर आकाश मात्र प्रकाशित होता है। ब्रह्मजिज्ञासु योगीके चित्तकी अत्यन्त शुभ्रता और सूक्ष्मताके विषयको शास्त्रकारोंने इस प्रकार कहा है, कि प्रागुक्त प्रकारसे भूमि, जल, अग्नि और आकाश जयके जरिये भूतशुद्धिप्रकार शास्त्रकारके बीच प्रसिद्ध था ; अब सम्प्रदाय समूहके अपरिज्ञान निबन्धनसे उसका यथा उचित अनुष्ठान नहीं होता। पूर्व्वोक्त प्रकारसे पञ्चभूतोंको जय करनेसे, जो सब फलोदय होते हैं, वह मुझसे सुनो, योगसिद्ध पुरुषको पार्थिव ऐश्वर्य्यके जरिये इस लोकमें सृष्टिकी सामर्थ उत्पन्न होती है, वह प्रजापतिकी भांति अक्षुब्ध होकर शरीरसे प्रजाकी सृष्टि कर सकता है। श्रुतिमें प्रतिपन्न है, कि वायुको जय कर सकनेसे योगसिद्ध पुरुषका एकमात्र अङ्गुष्ट अङ्गुलीके जरिये अथवा हाथ पांवके सहारे सारी पृथ्वीको कंपानेकी सामर्थ होती है। आकाश जय करनेपर वह आकाशके वर्ण समान होके आकाशकी भांति सर्व्वगत होके प्रकाशित होता है ; वर्णके अनुसार ज्ञेय होनेपर भी रूपहीनता निबन्धनसे अन्तर्द्धान शक्ति प्राप्त होती है। जल जय करनेका यही फल है, कि जलको जय कर सकनेसे इच्छानुसार अगस्तकी भांति वापी, कूप, तड़ाग आदि जलाशयोंको पी सकते हैं, आकाश जय करनेसे रूप ही आकाश स्वरूपमें अन्तर्द्धान हुआ करता है। अग्नि जयसे आकृति सलसे भी अदृशल उत्पन्न होता है। अहंकारको विशेष रूपसे जय कर सकनेसे सिद्ध पुरुषके समीप पञ्चभूत ही वशीभूत हुआ करते हैं। पृथ्वी आदि पञ्चभूत और अहंकारकी आत्मभूता बुद्धिको जय कर सकनेसे सिद्ध योगी सब ऐश्वर्य्योंसे युक्त और सर्व्वज्ञ होता है ; दोषरहित प्रतिभा अर्थात् संशय विपर्य्ययसे हीन समस्त ज्ञान उसके समीपवर्त्ती हुआ करते हैं। वह बुद्धादि रूपसे व्यक्त आत्माको अव्यक्त अर्थात् जगत् कारण ब्रह्मभावसे समझता है ; जिससे सब लोग बिनष्ट होते हैं, उसका ही नाम व्यक्त हुआ करता है, उसके बीच अव्यक्तमयी और व्यक्तमयी बिद्या जो कि सांख्य शास्त्रमें बिहृत्त हुई है, उसे तुम पहले मेरे समीप बिस्तारके सहित सुनो।

मूल प्रकृति प्रभृति पचीस तत्व सांख्य और पातञ्जल शास्त्रमें तुल्यरूपसे जानी गई हैं, उनमें जो बिशेष है, वह मेरे समीप सुनो। जिसकी जन्म वृद्धि जरा और मरण है, ऐसे चारों लक्षणोंसे युक्त पदार्थको व्यक्त कहा जाता है और जो इसके बिपरीत अर्थात् जन्मादि रहित वस्तु है, वही अव्यक्त रूपसे प्रमाणित हुआ करती है। सांख्य मतवाले दर्शनिक पण्डित लोग चौबीस तत्वोंके अतिरिक्त एक मात्र जीवात्माको प्रति शरीरमें पृथक् समझते हैं। परन्तु वेदान्त सिद्धान्त वाक्यमें जीव और ईश्वर उपाधि भेदसे दो आत्मा प्रमाणित हुए हैं ; वैदिक कर्म्मकाण्डमें यजमान और यष्टवा भेदसे ऐसा बर्णित है, कि जोव और ब्रह्म स्वतन्त्र है। जन्म आदि विकारयुक्त महत् अहंकार पञ्च तन्मात्र, एकादश इन्द्रिय और पञ्च भूतोंसे उत्पन्न अर्थात् कार्य्य उपाधि चतुर्वर्गार्थी जीवको व्यक्त रूपसे बर्णन किया जाता है और माया उपाधि ईश्वरको अव्यक्त कहा जाता है, ये दोनोंही बुद्धि और अचेतन अर्थात् चिदचिदात्मक है। ऐसा वेदमें बर्णित है, कि जल चन्द्र न्यायके अनुसार जीव बिश्व चैतन्य ईश्वरका प्रतिबिम्ब है। नष्टत्वबुद्धि और चैतन्य चिदात्मा दोनों ही बिषयमें अनुरक्त होते हैं, यह वेदके बीच बर्णित है। घटादि बिषयोंसे उत्पत्ति क्रमको बिपरीतताके अनुसार बुद्धि चैतन्यका प्रविलापन करना योग्य है, इसे ही सांख्य मतवाले बुद्धिमान लोगोंका शास्त्र जानो। उस मतके जीवन्मुक्त पुरुषोंका यही लक्षण है, कि योगी पुरुष ममतारहित और अहंकार शून्य सुख

दुःख आदि द्वन्द्व वर्जित और संशयहीन होवें। वे लोग क्रोध वा द्वेष न करें, झूठ वचन न कहें; आक्रुष्ट अथवा ताड़ित होनेपर भी सब भूतोंमें समदर्शिता निबन्धनसे किसीकी भी अशुभचिन्ता न करें; वचन, कर्म्म और मनसे पुरुषता परित्याग करें। इस ही प्रकार साधु-गुणसे युक्त होकर जो लोग सब भूतोंमें समान ज्ञान करते हैं वे चतुर्मुख ब्रह्माके निकटवर्त्ती होनेमें समर्थ होते हैं। ऐसे मनुष्य लोकयात्रा निर्व्वाहके लिये स्थित रहके किसी विषयकी अभिलाष नहीं करते और किसी विषयमें अत्यन्त निरिच्छुक भी नहीं होते।

जिन्हें लोभ और दुःख नहीं है जो इन्द्रिय निग्रहमें समर्थ और कार्य्य कुशल हैं, जिन्हें वेशविन्यास आदि बाह्य आडम्बरमें तुच्छ ज्ञान है, जिनकी इन्द्रियें अनेकाग्र और मनोरथ विक्षिप्त नहीं है, जो सत्यसङ्कल्प और सब भूतोंमें अहिंसा स्वभाव हैं; ऐसे सांख्य योगी मुक्त होते हैं। अब पातञ्जल मतसे मनुष्य जिन जिन कारणोंके जरिये मुक्त होते हैं उसे सुनो।

परम वैराग्य बलसे जिन्होंने अणिमा आदि योग ऐश्वर्य्यकी अतिक्रम किया है, वेही मुक्त होते हैं। यही तुम्हारे निकट वक्तृ विवक्षा विशेष जनित ज्ञानका विषय कहा इसमें कुछ सन्देह नहीं है, इसी भांति जो लोग सुख दुःख आदि द्वन्द्वसे रहित होते हैं, वेही परब्रह्मको जान सकते और उसे प्राप्त करते हैं।

२३५ अध्याय समाप्त।

वेदव्यास बोले, धीर पुरुष संसार सागरको तरनेवाले साधन शास्त्र और आचार्य्योंके उप-देशसे प्राप्त हुए परोक्ष ज्ञानरूपी शान्ति अव-लम्बन करके संसार सागरमें सदा उन्मग्न और निमग्न होके भी केवल आत्म मोक्षके हेतुज्ञा-नकी ही अवलम्बन करें।

शुकदेव बोले, आप जो ज्ञानको अवलम्बन करना कहते हैं वह अवलम्बनीय ज्ञान किस प्रकार जाना जाता है। रज्जु सर्पकी भांति अज्ञान मात्रके विनाशसे प्रकृत पदार्थ ज्ञापिका बुद्धि वृत्तिकी निवृत्ति लक्षण ज्ञान कहते हैं; अथवा ध्यानके जरिये भृंगीकीटकी भांति ध्येय सारूप्य रूपक धर्म्म, प्रवृत्ति लक्षण ज्ञानका विषय कहते हैं, उसे वर्णन करिये। जिस प्रकार जीव जन्म मरणसे निस्तार लाभ कर सके आप उसे ही कहिये।

व्यासदेव बोले, "मैं" इस अनुभव विषयमें जड़ और अहंकार कारण रूपसे प्रसिद्ध है; इसलिये मीमांसा मतवाले पण्डित लोग उक्त दोनोंको आत्मा कहा करते हैं। "अहं" पदका अर्थ ही आत्मा है उसका गुण प्रकाश है, वह भी तीन क्षणमात्र स्थिति करता है, यह तार्किक मत है। सांख्य मतवाले बुद्धिमान लोग सिद्ध किया करते हैं, कि आत्मा ही नित्य प्रकाश स्वरूप है, अहं पदका अर्थ आत्मा नहीं है। उसके बीच बहुतेरे लोग आत्मा और अनात्मा दोनोंको ही नित्य कहा करते हैं। अनात्मा ही स्थिर है, देह नाश होनेपर चिदात्माका नाश होता है, यह लोकायतिक नास्तिकोंका मत है। आत्मा ही सत्य पदार्थ है, आत्मासे भिन्न सभी मिथ्या है, यह वेदान्त मतका सिद्धान्त है।

शून्यवादी लोग यह कहा करते हैं, कि आत्मा अनात्मा कुछ भी नहीं है; इसलिये शून्यवादियोंके मतमें यदि आत्माका अभाव हुआ, तब ज्ञानका अनर्थकत्व सिद्ध होगा; इसलिये जो मनुष्य अधिष्ठान सत्ताके बिना स्वभावके जरिये ही अहंकार आदि स्वरूपसे प्रकाशित होरहे हैं, ऐसा समझके निरधिष्ठाता स्वभाविकी जगदुत्पत्ति अङ्गीकार करता है और युक्ति तथा बुद्धिहीन शिष्योंको उसही प्रकार बोधके सहारे अनुरक्त किया करता है, वह कुछ भी तत्त्व लाभ करनेमें समर्थ नहीं होता;

दूसरे अधिष्ठानके बिना भ्रमकी सम्भावना न रहनेसे शून्यकार नितान्त हेय है । इसके अतिरिक्त जो सब आत्मोच्छेदवादी लोकायतिक नास्तिक लोग एकान्तभावसे ईश्वर और अदृष्टकी सत्ता अस्वीकार करके स्वभावको ही देह आदिकी उत्पत्तिके विषयमें कारण कहा करते हैं; वे लोग ऋषि वाक्य सुनके भी कुछ तत्त्वलाभ करनेमें समर्थ नहीं होते ; अर्थात् वे लोग आचार्य्यकी उपासना न करके ही स्वयं इन सब मतोंकी कल्पना करते हैं । जो सब अल्पबुद्धि मनुष्य स्वाभाविक शून्य जगत् भ्रान्ति और स्वाभाविक शरीरादिकोंकी उत्पत्ति, इन दोनों पक्षोंको अवलम्बन करते हैं, वे लोग स्वभावको कारण जानके कुछ भी कल्याण लाभ नहीं करते । मोहके कार्य्य मनसे ही स्वभाव उत्पन्न होता है, अर्थात् मूढ़ लोग मनके जरिये जो कुछ कल्पना करते हैं, उसे ही स्वभाव कहते हैं, स्वभावका वक्ष्यमाण लक्षण सुनो । यदि सब कार्य्य स्वाभाविक ही सिद्ध हों, तो कृषिकार्य्य आदि सब कर्म्मोंसे ही बुद्धि-कौशलकी अनर्थकता हो सकती है, वह कदापि सम्भावित नहीं है ; क्योंकि कृषि आदि सब कार्य्य, शस्य, संग्रह, यान, आसन और गृह आदि बुद्धिमान् मनुष्योंके जरिये सम्पन्न हुआ करते हैं । क्रीड़ा गृह और रोगोंमें औषधी करनेके विषयमें बुद्धिमान् पुरुष ही प्रयोक्ता हैं । ज्ञानवान् मनुष्य ही उक्त सब कार्य्योंका अनुष्ठान किया करते हैं । बुद्धिकी अधिकता रहनेसे ऐश्वर्य्याधिक्य लाभ होता है । बुद्धिमान ही कल्याणके मार्गको प्रदर्शित करता है । बुद्धिकी अधिकतासे ही अधिक ऐश्वर्य्यशाली राजा लोग बुद्धिबलके सहारे राज्य भोग किया करते हैं । जीवोंके परम श्रेष्ठ चिदात्मा और मायाको बुद्धिबलसे ही जाना जाता है । हे तात ! बुद्धिवृत्तिके सहारे परम गति लय स्थानको भी प्राप्त कर सकते हैं । विविध भूतोंका जन्म चार प्रकारसे है, उसके बीच मनुष्य, पशु, आदि जरायुज, पक्षी, सर्प, आदि अण्डज, तृण, बनस्पति, उद्भिज, और यूक, मच्छड़ आदिको स्वेदज कहके निश्चय करो । तिसके बीच स्थावरोंसे जङ्गमोंको विशिष्ट जानना चाहिये, विशेष-विशेषण करके जो विशेष हो, उसे ही श्रेष्ठ समझो । प्राचीन लोग कहा करते हैं, अनेक चरणवाले जङ्गम जीव दो प्रकारके हैं, तिसके बीच पहले कही हुई रीतिके अनुसार वृक्षादिके दर्शन आदि स्वल रहनेसे भी प्रत्यक्ष दर्शनवाले जङ्गम जीव ही श्रेष्ठ हैं; अनेक चरणवालोंसे कई तरहके दो पांववाली जाति श्रेष्ठ हैं, दो पांववाली जाति भूचर मनुष्य आदि हैं और खेचर पक्षी आदि भेदसे दो प्रकारके हैं, उसमेंसे खेचरसे भूचर मनुष्य आदि श्रेष्ठ हैं क्योंकि वे लोग अन्न भोजन किया करते हैं । मनुष्य जाति दो तरहकी है, मध्यम और उत्तम तिसके बीच जातीय धर्म्मके आचरण निबन्धनसे मध्यम ही श्रेष्ठ है ; मध्यममें फिर दो भेद हैं, एक धर्मज्ञ, दूसरे इतर, तिसमेंसे कार्य्याकार्य्य कर्त्तव्यका निश्चय करनेसे धर्मज्ञ ही उत्तम हैं; धर्मज्ञ पुरुष दो प्रकारके हैं, वेदज्ञ और तदितर, उसमेंसे वेद जानने वाले पुरुष ही उत्तम हैं, क्योंकि वेद इन सबमें ही प्रतिष्ठित होरहा है । वेदज्ञ पुरुष दो तरहके हैं, प्रवक्ता और तदितर, उसके बीच सब धर्म्मोंके धारण निबन्धनसे प्रवक्ता ही उत्तम है । धर्म्म और क्रियाफलके सहित जो लोग सब वेदोंको जानते हैं और धर्म्मके सहित सब वेद जिससे प्रकट हुए हैं, उन प्रवक्तागणको आत्मज्ञ और तदितर भेदसे फिर दो प्रकार कहा जाता है ; उसके बीच जन्म और मोक्ष ज्ञान निबन्धनसे आत्मज्ञपुरुष उत्तम हैं । जो प्रवृत्ति और निवृत्ति लक्षणयुक्त दोनों प्रकारके धर्म्मको जानते हैं, वही धर्म्मज्ञ हैं, वेही धर्म्मवित् हैं, वेही त्यागशील, सत्यसङ्कल्प, सत्यनिष्ठ, शुचि और सर्व्वकर्म्ममें समर्थ हैं ।

ब्रह्मज्ञान विषयमें जिसकी प्रतिष्ठा है, वेद शास्त्रोंमें जिसकी निष्ठा होरही है, और दूसरे शास्त्रोंमें जो लोग कृतनिश्चय हुए हैं, उन्हें देवताभी ब्राह्मण समझते हैं। हे तात! जो सब ज्ञानवान् मनुष्य यज्ञादिदैवत आत्माको अन्तस्थ और बाह्यरूपसे देखते हैं, वेही द्विज और वेही देवस्वरूप हैं, ऐसे आत्मज्ञ पुरुषोंमें ही ये सब भूत और समस्त जगत् प्रतिष्ठित होरहा है; उन लोगोंके माहात्म्यके समान और कुछ भी नहीं है। आदि अन्तसे रहित और सब तरहके कर्मोंको अतिक्रम करके स्थित, चारों प्रकारके भूतोंके स्वयम्भू सब तरहसे ईश्वर हैं।

२३६ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, यह ब्राह्मणोंकी नित्य-वृत्ति विहित हुई है, ज्ञानवान् ब्राह्मणही कर्म्म करते हुए सर्व्वत्र सिद्धि लाभ किया करते हैं, कर्म्म-विषयमें यदि संशय न हो, तो वह निःसंशयरूपसे किया गया कर्म्मही सिद्धिका हेतु हुआ करता है; परन्तु कर्म्मका क्या लक्षण है, ऐसा सन्देह उत्पन्न होनेपर ज्ञान वा ज्ञानजनक कर्म्मको यदि कर्म्म कहा जावे, तब उसे वेदविधि कहके अङ्गीकार करना होगा; इसलिये उत्पत्ति और उपलब्धिके जरिये उभयत्र कर्म्मकी प्रधानता कहता हूं सुनो।

कोई कोई मनुष्य इस जन्म और जन्मान्तरमें किये हुए कर्म्मको ही प्रधान कारण कहा करते हैं, दूसरे लोग दैवको ही कारण रूपसे वर्णन करते हैं; कितनेही लोग स्वभावकोही कारण कहते हैं। पौरुष और दैवकर्म्म स्वभावके अनुगत होकर फलदायक होते हैं; कोई कहते हैं, ये प्रत्येक पृथक् पृथक् कारण न होकर एक ही प्रधान रूपसे कारण हुआ करते हैं; दूसरे लोग कहते हैं इनका समुच्चय ही कारण है। आर्हत मतवाले घट पट आदि विषयोंकी अस्ति भी कहते हैं, और नास्ति भी मानते हैं; "अस्ति नास्ति" यह दोनों ही कहते हैं, और "अस्ति यह भी नहीं है," "नास्ति यह भी नहीं है,"—ऐसा ही कहा करते हैं, परन्तु योगी लोग परब्रह्मको ही सर्व्व कारण स्वरूपसे दर्शन करते हैं। त्रेता, द्वापर और कलियुगमें जो सब पुरुष जन्म ग्रहण करते हैं, उन्हें पापानुबन्धनसे श्रौतमतमें सदा ही संशय हुआ करता है, परन्तु सतयुगमें उत्पन्न हुए योगनिष्ठ तपस्वी लोग सदा ही संशयरहित होते हैं। कृतयुगमें सब कोई ऋक्, यजु, साम, इन तीनों वेदोंमें भेद न देखके काम और द्वेष आदिको दूर करके केवल ज्ञानकी ही उपासना करते थे। जो लोग तपस्यारूपी धर्म्मसे युक्त तपमें रत और संशितव्रती होते हैं, वे मनहीमन जैसी अभिलाष करते हैं, तपोबलसे वह सब पा सकते हैं। जीव तपोबलसे ब्रह्म स्वरूप होकर जगत्की सृष्टि करता है तपस्याके सहारे उस ब्रह्मको प्राप्त किया जाता है, और ब्रह्मस्वरूप होनेपर भूतोंके ऊपर प्रभुता करनेकी सामर्थ्य हुआ करती है। वेददर्शी ऋषि लोग कहा करते हैं, वेद वाक्यके बीच यद्यपि ब्रह्मस्वरूप वर्णित हुआ है, तौभी वह अत्यन्त गहन है, ऐसा ही क्यों; वह वेदज्ञ पुरुषोंको भी दुर्ज्ञेय है; वेदान्त दर्शनमें एकमात्र विद्याके सहारे ब्रह्मको जाना जाता है, यही केवल व्यक्त रूपसे वर्णित हुआ है; भावनात्मक कर्म्म योगके जरिये ब्रह्मको लक्ष्य नहीं किया जाता। क्षत्रियोंकी पशु हिंसा, वैश्योंकी कृषिकर्म्म, शूद्रोंकी तीनों वर्णोंकी सेवा और ब्राह्मणोंकी ब्रह्मोपासनाही यज्ञ-स्वरूप है। जिन लोगोंने स्वशाखोक्त वेदाध्ययनके जरिये सब कार्य्योंको समाप्त किया है, वेही द्विज होते हैं; जो सब भूतोंमें समदर्शी हैं, वे दूसरे कर्म्म करें वा न करें उन्हें ही ब्राह्मण कहा जाता है। सतयुग और त्रेतायुगमें सब वेद यज्ञ और वर्णाश्रम थे, द्वापरयु-

गमें मनुष्योंकी अल्प आयु होनेसे सब वेद आदि लुप्त होते चले जाते हैं। द्वापर और कलियुगमें सब वेद नष्टप्राय होते हैं द्वापरमें सब वेद दीखते हैं, कलियुगमें सब न दीखेंगे। कलियुगमें अधर्मसे पीड़ित होकर धर्म्म और गऊ भूमि, जल और औषधियोंका रस नाश होरहा है। सब वेद वेदोक्त धर्म, स्वधर्मस्थ आश्रम और स्थावर तथा जङ्गम जीवन अधर्मके जरिये अन्तर्हित होकर विकृतभाव लाभ करता है। जैसे वर्षा पार्थिव भूतोंकी पुष्टिसाधन करती है, वैसे ही वेद युगयुगमें वेद पढ़नेवालोंकी पुष्टिसाधन किया करता है। जिसका अनेकत्व और अनादि निधनत्व निश्चित है, और जो प्रजासमूहके प्रभव और प्रलयका कारण है, उसे मैंने पहले वर्णन किया है। जो काल, जीवोंकी उत्पत्ति और लयका स्थान और अन्तर्यामी है; जिसमें सुख दुःख आदि द्वन्द्वयुक्त बहुतसे जीवस्वभावसे ही निवास करते हैं, उस कालका विषय भी कहता हूं। हे तात! तुमने मुझसे जो पूछा था, मैंने उसही सृष्टि, काल, सन्तोष, सब वेद, कर्त्ता कार्य्य और क्रियाके समस्त फलको वर्णन किये।

२३७ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, शुकदेवने महर्षि वेदव्यासका ऐसा वचन सुनके उनके उपदेशकी प्रशंसा करते हुए मोक्ष धर्म्मार्थयुक्त इस वक्ष्यमाण वचनको पूछनेकी इच्छा की।

शुकदेव बोले, बुद्धिमान श्रोत्रिय विधिपूर्व्वक यज्ञ करनेवाले कृतप्रज्ञ और अनुसूयक ब्राह्मण प्रत्यक्ष और अनुमानके जरिये अज्ञात तथा अनिर्देश्य ब्रह्मको किस प्रकार जान सकते हैं; तपस्या, ब्रह्मचर्य्य, सर्व्वत्याग अथवा धारणायुक्त बुद्धिके जरिये यदि उसे जाना जाय और उसका विषय सांख्य वा पातञ्जल शास्त्रमें निरूपित रहे, तो मैं उसे पूछता हूं, आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये। मनुष्य जैसे उपायके जरिये मन और इन्द्रियोंकी उस प्रकार एकाग्रता लाभ करें, आप उसकी ही व्याख्या करिये।

व्यासदेव बोले, विद्या तपस्या, इन्द्रियनिग्रह और सर्व्व संन्यासके बिना कोई भी सिद्धि लाभ करनेमें समर्थ नहीं है। सब महाभूत स्वयम्भू ईश्वरकी प्रथम सृष्टि है, प्राणिसमूहों तथा शरीराभिमानी मूढ़ जीवोंमें वह भूयिष्ठरूपसे निविष्ट है शरीरधारियोंके भूमिसे देह, जलसे स्नेह, अग्निसे दोनों नेत्र, वायुसे पञ्चप्राण और आकाशसे अवकाश भाग हुआ करता है। पातञ्जल मतसे आत्मा केवल सुख दुःखका भोक्ता है, कर्त्ता नहीं है। सांख्य मतसे आत्मा भोक्ता वा कर्त्ता कुछ भी नहीं है; इसलिये सांख्य मतके सिद्धान्तसे पातञ्जल मत इस प्रकार दूषित होता है, कि पादेन्द्रियके देवता विष्णु, हाथके अधिष्ठाता इन्द्र हैं, अग्नि उदरके भीतर रहके भोजनकी इच्छा किया करती है। सब दिशा श्रवणेन्द्रियकी देवता हैं, और वागिन्द्रियकी, अधिष्ठात्री सरस्वती है। जैसे सेना राजकोष रथ शकट आदिको चलाया करती है और जैसे राजा अभिमानके वशमें होके अपनेमें सेनाकी ह्रास वृद्धि आदि आरोपित करता है, वैसे ही चिदात्मा इन्द्रिय और उसके अधिष्ठात्री देवतागत भोक्तृत्व स्वच्छक आदिको अविद्याके वशमें होकर आत्मामें आरोपित कराया करता है अर्थात् "मैं भोगवान मैं स्वच्छ हूं" इत्यादि वचन आरोपमात्र हैं। जैसे सेनाकी पराजय होनेसे राजा की हार होती है, वैसे ही विष्णु आदि अधिष्ठात्री देवता लोग भी भोक्ता नहीं हैं, आत्मामें अविद्याके कारण भोक्तृत्व भान हुआ करता है, वास्तवमें आत्मा कर्त्ता वा भोक्ता नहीं है। कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका, ये पांचो शब्द आदि ज्ञान साधनके निमित्त द्वाररूप है दर्शनीय इन्द्रिय कहके वर्णित हुआ करती हैं।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, इन पांचों इन्द्रिय विषयोंको सदा ही इन्द्रियोंसे स्वतन्त्र जानना चाहिये। जैसे सारथी घोड़ोंको वशमें करके नियमित करता है, वैसे ही मन इन्द्रियोंको सदा कार्य्योंमें नियुक्त किया करता है, और अन्तःकरण उपाधिक जीव सदा मनको नियमित करता है। जैसे मन सब इन्द्रियोंको उत्पत्ति, स्थिति और लयका कारण है, वैसेही हृदयमें स्थित जीव चैतन्य मनकी सृष्टि, स्थिति और प्रलय करनेमें समर्थ है; इन्द्रियें, इन्द्रियोंके विषय, वाह्य वस्तुयें सर्द्दी, गर्म्मी आदि धर्म्म स्वरूप स्वभाव, चेतना, मन, प्राण, अपान और चैतन्य देहधारियोंके हृदय गुफाके बीच सदा ही वर्त्तमान है। प्रागुक्त देह बुद्धिका अवलम्ब है, ऐसा सम्भव नहीं होता; स्वप्नकालके शरीरकी भांति उक्त देहका केवल भान मात्र हुआ करता है; इसलिये सत, रज, तम यह त्रिगुणात्मिका मूल प्रकृति ही बुद्धिका अवलम्ब है, चेतना बुद्धिका अवलम्ब वा स्वरूप नहीं है; क्यों कि बुद्धि ही वासनाको उत्पन्न करती है, गुणोंको उत्पन्न करनेके विषयमें बुद्धि कभी कारण नहीं है। इस ही प्रकार चिदात्मा इन्द्रियादि षोड़श गुणोंके जरिये पूरित होकर देहमें निवास करता है। मनको निग्रह करनेवाले ब्राह्मण मनके जरिये बुद्धिसे आत्माको देखते हैं इस आत्माको नेत्रसे नहीं देखा जाता, सब इन्द्रियोंके सहारे भी उसे जाननेको सामर्थ नहीं होती; महान आत्मा मानस प्रदीपके जरिये प्रकाशमान होता है। वह न शब्द है, न स्पर्श है; न रूप है, न रस है और न गन्ध ही है; वह अव्यय और इन्द्रिय रहित है; उसके स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीर नहीं हैं, तौभी उसे शरीरके बीच देखे। मरण धर्म्मयुक्त समस्त शरीरोंमें जो अव्यक्त रूपसे निवास करता है, उसे जो पुरुष गुरुवचन और वेदवाक्यके अनुसार अवलोकन करता है, शरीर त्यागनेके अनन्तर उसका ब्रह्मके सङ्ग निर्व्विशेष भाव लाभ होता है। पण्डित लोग विद्वान सतकुलमें उत्पन्न हुए ब्राह्मण और गऊ, हाथी, कुत्ते और चाण्डालमें ब्रह्मदर्शन किया करते हैं; जिसने यह सब जगत् बनाया है, वह एक ही महान् आत्मा स्थावर जङ्गम आदि भूतोंमें स्थिति करता है। हृदयाश्रित जीव जब सब भूतोंमें आत्माको परिपूर्ण देखता है, और निष्कलङ्क आत्मामें सब भूतोंको लीन देखता है, उस समय उसे ब्रह्मत्व लाभ होता है। वेदके आत्मशब्द स्वरूपसे जितने देश वा कालका प्रमाण होता है, जीवात्मा उतने ही देशकालके अनुसारसे अधिष्ठान भूत स्व-स्वरूप परमात्मामें प्रतिष्ठित होता है। जो सदा इस ही प्रकार ध्यान करते हैं, वे अमृत लाभ करनेमें समर्थ होते हैं। सब भूतोंके हितमें रत पदरहित योगीके पदको अभिलाषी होके उसके अन्वेषणमें देवता भी मोहित हुआ करते हैं। जैसे आकाशमें पक्षियों और जलमें मछलियोंकी गति दृष्टिगोचर नहीं होती, ब्रह्मज्ञानियोंकी गति भी वैसी ही है। काल स्वयं अपनेमें सब भूतोंका परिणाम करता है, परन्तु काल जिसमें परिणत होता है, इस जगतमें कौन पुरुष उस परमात्माको जान सकता है। सुक्त स्वरूप परब्रह्मको ऊपर, नीचे, तिर्य्यग और मध्यदेशी भेदसे किसी स्थानमें भी किसी भांति नेत्र आदि इन्द्रियोंके विषय करनेमें किसीको सामर्थ नहीं है। यह समस्त लोग उस सुक्त स्वरूपके अन्तर्गत हैं; इन सब लोगोंका कुछ भी वाह्यज्ञान नहीं है। मनके समान शीघ्रगामी होकर यदि कोई मनुष्य धनुषसे छूटे हुए बाणकी भांति निरन्तर गमन करे, तौभी वह परम कारणका अन्त देखनेमें समर्थ न होवे। वह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है, और उससे स्थूल और कुछ भी नहीं है। उस परम कारण परब्रह्मके हाथ, पांव सब दिशामें ही विद्यमान हैं, उसके नेत्र शिर और

सुख सब तरफ ही प्रकाशमान हैं, वह समस्त जगत्को परिपूरित करके निवास कर रहा है। वह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म और महत्से भी महत् है, उसमें ही सब भूत लीन हुआ करते हैं, वह सदा निश्चल भावसे निवास करता है, तौभी किसीके दृष्टिगोचर नहीं होता, अक्षर और क्षर रूपसे आत्माका द्वैधी भाव है, वह जो स्थावर जङ्गम आदि भूतोंमें विनाशि जड़रूपसे निवास करता है वही क्षर स्वरूप और दिव्य अमृत अविनाशी चैतन्य ही अक्षर स्वरूप है। अचञ्चल उपाधि दोषके जरिये अनभिभूत स्थावर जङ्गम सब भूतोंके नियन्ता ईश्वर, महत् अहंकार, पञ्चतन्मात्र, अविद्या और कर्म्म, ये अहंकार धर्म्म कामके नवद्वारसे युक्त गृहमें गमन करते हैं, इसहीसे वह हंस नामसे वर्णित होता है। तत्वदर्शी ऋषि लोग कहा करते हैं, कि जन्म रहित ईश्वरके शरीरमें भीतर गये हुए पहिले कहे हुए महदादि सम्बन्धीय हानि अंग और विविध कल्पनाके संग्रह निबन्धनसे हंसत्वकी सिद्धि होती है। 'हंस' इस पदसे जो अक्षर ब्रह्म कहा जाता है, कूटस्थ चैतन्य भी वही अक्षर ब्रह्म है इसमें कुछ भी भेद नहीं है; इसलिये तत्वज्ञानी मनुष्य उस अक्षर ब्रह्मको जानके प्राण और जन्म परित्याग करते हैं, अर्थात् जन्मके कारण अविद्याके विनाश निबन्धनसे वह कैवल्य लाभ किया करते हैं।

२३८ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, हे सत्पुत्र! तुमने जो सांख्यज्ञान संयुक्त ज्ञानका विषय पूछा था, मैंने उसे प्रकृत रूपसे यथावत् वर्णन किया; अब योगियोंका जो कुछ कर्त्तव्य है, वह सब तुम्हारे समीप कहता हूं, सुनो। हे तात! बुद्धि, मन, इन्द्रिय और सर्व्वव्यापी आत्माका एकत्व ज्ञान ही सबसे श्रेष्ठ है; चित्त जीतनेवाले, दान्त, अध्यात्म विषयोंके अनुशीलन युक्त आत्माराम यम नियममें निष्ठावान् शास्त्र तत्वज्ञ पुरुषको आचार्य्यके मुखसे उक्त ज्ञानके विषयको जानना उचित है। काम, क्रोध, लोभ, भय, और स्वप्न, इन पांचोंको पण्डित लोग योगदोष कहा करते हैं; धीर पुरुष ऊपर कहे हुए पांचो दोषोंको नष्ट करके शम गुणके जरिये क्रोधको जीतते हैं। सङ्कल्पकी त्यागके कामको विजय करनेमें समर्थ होते हैं और बुद्धिके अनुशीलनसे निद्राका नाश करनेके योग्य हुआ करते हैं; धैर्य्यके जरिये व्यभिचार आदिसे शिश्न और उदरकी रक्षा करते हैं; नेत्रसे कांटे आदिकोंसे हाथ पांवकी रक्षा करनेमें सावधान रहते हैं, मनके जरिये पर-स्त्री दर्शन आदिसे नेत्र और कानकी सावधानता सम्पादन करते हैं; यत्नादि कर्म्मोंसे बुरी चिन्तासे मन और वचनकी रक्षा किया करते हैं; अप्रमादसे भय और प्राज्ञ पुरुषोंकी सेवा निबन्धनसे दम्भ परित्याग करते हैं। योगी लोग सदा अतन्द्रित होकर इस ही प्रकार पूर्व्वोक्त योग दोषोंको जय करें, अग्नि और ब्राह्मणोंकी पूजा करें, देवताओंके निकट प्रणत होवें; हिंसायुक्त मनको भङ्ग करनेवाले अमङ्गल वचन त्याग दें। प्रधान बीजभूत प्रकाशात्मक सतोगुण प्रधान महत्तत्व ही ब्रह्मस्वरूप है। ये सब स्थावर, जङ्गम, जीव जिस बीजके सारस्वरूप हैं; वही समस्त जगत् निरीक्षण करता है। ध्यान, अध्ययन, सत्यवचन लज्जा, शीलता सरलता, क्षमा, शौच, शुद्ध आचार और इन्द्रियनिग्रह, इन सबके जरिये सत्त्वोत्कर्ष होनेपर तेजकी बढ़ती और पाप नाश होता है। जो लोग ऐसा आचरण करते हैं उनकी सब कामना सिद्ध होती और तत्त्वज्ञान उत्पन्न होता है। जो योगी सर्व्वभूतोंमें समदर्शी यदृच्छा लाभसे सन्तुष्ट, पापरहित, तेजस्वी, लघु भोजन करनेवाले और जितेन्द्रिय होवे, वह काम, क्रोधको वशमें करके महत्त-

उसके आस्पद लय स्थान प्रकृतिको वशमें करनेकी अभिलाष करें ; समाहित होकर मन और इन्द्रियोंकी एकाग्रता सिद्ध करके पूर्व्वरात्रि और अपर रात्रिके अर्द्ध भागमें बुद्धिमें मनको धारणा अर्थात् सङ्कल्पात्मक मनका निरोध करे । पञ्चेन्द्रिययुक्त जीवका एक ही इन्द्रिय छिद्र यदि चरित् हो, तो चर्म्ममय कोषके छिद्रसे जल निकलनेकी तरह उसकी शास्त्र जनित बुद्धि विषय प्रवणता निबन्धनसे चीण हुआ करती है। जैसे मत्स्यजीवी मछुवाहे जाल दंशन करनेमें समर्थ मछलीको अगाड़ो बांधते हैं, वैसे ही योगवित् यती पहले मनको निग्रह करे, अनन्तर कान, नेत्र, जीभ और नासिकाको संयम करके उन्हें मनके बीच स्थापित करनेमें यत्नवान होवे, अन्तमें जब मन सब सङ्कल्पोंको परित्याग करे। योगी पुरुष पञ्च इन्द्रियोंको ध्येय वस्तुकी ओर ले जा करके मनमें स्थापन करनेमें यत्नवान होवे। जब मनके सहित पञ्चइन्द्रिय बुद्धिके बीच स्थिति करके लयको प्राप्त होकर संकल्प जनित कलुषता परित्याग करती हैं; तब उस निर्म्मल अन्तःकरणमें ब्रह्म प्रकाशमान होता है। धूम रहित अग्नि प्रकाशमान सूर्य्य और आकाशमें स्थित बिजलीकी अग्निकी भांति उस समय आत्मा बुद्धिके बीच दीख पड़ता है। उस समय उस महान् आत्मामें अहंकार आदि सब विकार दिखाई देते हैं, और वह भूमात्मा कारण रूपसे सर्व्वव्यापक होनेसे सर्व्वत्र दीखती है। जो सब महानुभाव मनीषी ब्राह्मण लोग धृतिमान महाप्राज्ञ और सब भूतोंके हितमें रत हैं, वेही उस आत्माका दर्शन करनेमें समर्थ होते हैं। योगयुक्त पुरुष पूर्णरीतिसे तीक्ष्ण नियम अवलम्बन कर अकेले निर्ज्जन स्थानमें बैठके छः महीनेतक ऐसा ही आचरण करनेसे मुक्त हुए शुद्ध आत्मस्वरूपकी समता लाभ करते हैं। तत्त्ववित योगी लय, विक्षेप कषाय, घ्राण, श्रवण, दर्शन, रस, स्पर्श, शीत, उष्ण, शीघ्रगति, समस्त शास्त्रार्थभान और दिव्य अङ्गना आदि अद्भुत विषयोंको योगबलसे प्राप्त करके अन्तमें उन सबका अनादरकर बुद्धिके बीच उन्हें संहार करें ; क्योंकि बुद्धि कल्पित विषयोंका बुद्धिमें ही लय होना योग्य है। प्रातःकाल पूर्व्व रात्रि और अपर रात्रिमें नियमनिष्ठ योगी पहाड़की शिखर बद्धमूल वृक्षके नीचे अथवा वृक्षके पुरोभागमें योगाभ्यास करे। वह इन्द्रियोंको सब तरहसे नियमित करके इस प्रकार हृदय पुण्डरीकमें एकाग्र भावसे नित्य वस्तुकी चिन्ता करे, जैसे धनकी प्राप्तिमें रत विषय लोभी मनुष्य धनकी चिन्ता करता है ; योगसे कभी मनको उद्विग्न न करे। योगयुक्त उपायसे चञ्चल चित्तको पूर्णरीतिसे नियमित करनेमें समर्थ होवे, उस ही उपायको अवलम्बन करे, उससे कभी विचलित न होवे ; वह एकाग्र होकर जनशून्य गिरिगुफा, देवस्थान और सूने गृहमें वास करनेकी इच्छा करे। ऐसा योगी पत्नी परिग्रह न करे, केवल मन, बचन और धर्म्मसे सब विषयोंमें उपेक्षा करते हुए यताहारी होकर प्राप्त और अप्राप्त विषयोंमें समदर्शी होवे। जो पुरुष ऐसे योगीको अभिनन्दित करता है, अथवा जो पुरुष उसकी निन्दा करे, वह उन दोनोंके शुभाशुभको चिन्ता न करे। योगी पुरुष लाभसे हर्षित और हानिसे असन्तुष्ट न होवें, वह वायुके समान धर्म्मात्मा होकर सब भूतोंको समभावसे देखें। इस ही भांति छः महीनेतक नित्य योगयुक्त सर्व्वत्र समदर्शी स्वस्थचित्तवाले साधु पुरुषोंके निकट शब्द ब्रह्म पूर्णरूपसे प्रकाशित होता है। मृत, पिण्ड पत्थरके टुकड़े और सुवर्णमें समदर्शी योगी प्रजासमूहकी पीड़ासे आर्त्त देखकर इस प्रकारके योगमार्गसे विरत और मोहित न होवें ; बल्कि वित्त उपार्ज्जन आदिसे विरत रहें, नीच वर्ण शूद्र भी यदि इस मार्गमें पदार्पण करे

और धर्म्मकी इच्छा करनेवाली स्त्री भी यदि योगाभ्यासमें रत होवें, तो वे भी इस योग अवलम्बनके जरिये परम गति पावें। साधु लोग मन और बुद्धियुक्त निश्चल इन्द्रियोंके जरिये जो जन्मरहित जरा विवर्ज्जित प्राचीन सनातन पुरुषको लक्ष्य करते हैं ; वह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म और महत्से भी महत् है, चित्त जय करनेवाले योगी उस मुक्त स्वरूपको बुद्धिबलसे देखा करते हैं। महानुभाव महर्षियोंके यथावत वर्णित यह वाक्य गुरुवचनके समान शब्द और अर्थसे जानके उसे स्वयं युक्तिके जरिये परीक्षा करके शुद्धचित्तवाले मनीषि लोग भूतसंप्लव पर्य्यन्त चतुर्मुखको समताको प्राप्त होते हैं अर्थात् प्रलयकालतक ब्रह्मलोकमें ब्रह्माके सहित समान भोगके भागी हुआ करते हैं।

२३८ अध्याय समाप्त।

शुकदेव बोले, वेदवाक्यके बीच "कर्म्म करो और कर्म्म परित्याग करो," यह जो विधि निषेध है, उसमेंसे विद्याके जरिये लोग किस ओर गमन करते हैं, इसे ही मैं सुननेकी इच्छा करता हूं, आप मेरे समीप इसे ही वर्णन करिये। परस्पर वैरूप्ययुक्त ये दोनों मार्ग प्रतिकूल भावसे वर्त्तमान हैं।

भीष्म बोले, पराशरनन्दन वेदव्यासने पुत्रका ऐसा वचन सुनके उसे यह उत्तर दिया,—हे तात! कर्म्ममय और ज्ञानमय, नश्वर और अविनश्वर दोनों पथके विषयकी व्याख्या करता हूं ; सब लोग विद्याके सहारे जिस ओर गमन करते हैं, तुम एकाग्रचित्त होकर उस विषयको सुनो, इन दोनोंका अन्तर आकाशकी भांति अत्यन्त गम्भीर है। आस्तिक लोग "धर्म्म है" ऐसा वचन कहते हैं, नास्तिक लोग "धर्म्म नहीं है" ऐसा कहा करते हैं। उसके बीच नास्तिक और आस्तिकके तारतम्य पूछनेसे आस्तिकके पक्षमें वह जिस प्रकार क्लेशयुक्त होजाता है, मेरे पक्षमें भी यह उस ही प्रकार होरहा है, सब वेद जिसमें प्रतिष्ठित होरहे हैं, वह मार्ग दो प्रकारका है ; प्रवृत्ति लक्षण धर्म्म और निवृत्ति लक्षण धर्म्म उत्तम रीतिसे वर्णित है।

जीव कर्म्मके जरिये बद्ध होता और विद्यासे मुक्त हुआ करता है, इसलिये तत्वदर्शी योगी लोग कर्म्म करनेमें अनुरक्त नहीं होते। कर्म्मशील मनुष्य कर्म्मके जरिये मरनेके अनन्तर फिर शरीर धारण करता है और विद्वान् पुरुष ज्ञानके जरिये नित्य अव्यक्त अव्यय स्वरूपसे प्रकट होते हैं, कोई कोई अल्पबुद्धिमें रत मनुष्य कर्म्मकी प्रशंसा किया करते हैं, इस हीसे वे स्त्री, पुत्र आदि परिवारमें आसक्त होकर कर्म्मकी ही उपासना करनेमें रत होते हैं, जो सब धर्म्ममें निपुण मनुष्योंने श्रेष्ठबुद्धि लाभ की है, वे इस प्रकार कर्म्मकी प्रशंसा नहीं करते, जैसे नदीके जलको पीनेवाले मनुष्य कूएंका पानी पीकर उसकी प्रशंसा नहीं करते। कर्म्मशील मनुष्य कर्म्मके फल सुख, दुःख और जन्म, मृत्यु पाते हैं, और ज्ञानी लोग विद्याके सहारे उस स्थानको पाते हैं, जहां पर जानेसे शोक नहीं करना पड़ता ; वहां पर जानेसे जन्म और मृत्यु नहीं होती और फिर दूसरी बार जन्म नहीं लेना पड़ता। जिस स्थानमें विशेष विज्ञानभावसे जीव लयको प्राप्त होता है, जिस स्थानमें अव्यक्त, अचल, नित्य, अविस्पष्ट, अक्लेश, अमृत, अवियोगी परब्रह्म विराजमान है ; जिस स्थानमें सुख दुःख और मानस कर्म्मोंसे कुछ बाधा नहीं होती वहां सब भूतोंमें समदर्शी और सब प्राणियोंके हितमें रत महात्मा लोग निवास किया करते हैं।

हे तात! विद्यामय पुरुष स्वतन्त्र हैं, और कर्म्ममय पुरुष स्वतन्त्र हैं ; कर्म्ममयके बीच सत्वसराख्या प्रजापति श्रेष्ठ हैं। प्रति महीनेमें

घटती बढ़तीयुक्त और अमावस्या तिथिमें सूक्ष्म कलासे स्थित चन्द्रमाकी भांति कर्म्ममय पुरुषोंकी ह्रास वृद्धि हुआ करती है। बृहदारण्यकदर्शी याज्ञवल्क्यने आकाशमें बंक्रतन्तुकी भांति स्थित नवीन चन्द्रमाको देखकर इस विषयमें बहुतसी युक्तिपूरित उक्ति प्रकाश की है वह उनके वचनके जरिये अनुमित होती है। हे तात! मनके सहित दशों इन्द्रिय, ये एकादश विकारात्मा कलाके सहित उत्पन्न मूर्त्तिमान विराजमान चन्द्रमाको कर्म्म-गुणात्मक समझो। कमल पुष्पके बीच जलकी बंद समान वह जीव उपाधियुक्त मनके बीच जो द्योतमान चित्प्रकाश संश्रित होरहा है, और उस योग निरुद्ध चित्त जीवको क्षेत्रज्ञ समझना चाहिये। तम, रज और सत्व, इन तीनों गुणोंकी विज्ञानमय किसी जीवका गुण जानना चाहिये। विज्ञानमयकी आत्मगुण अर्थात् चिदाभास गुण चैतन्य उससे युक्त समझे; चिदाभास आत्माको परमात्माके गुण ज्ञान और ऐश्वर्य्य आदिसे संयुक्त जाने। शरीर स्वयं अचेतन होनेपर भी जीवके गुण चैतन्यके संयोगसे सचेतन होकर हाथ पांव चलाते हुए जीवित होता है। जिन्होंने भुर्लोक, भुवर्लोक आदि सातों भुवनको बनाया है, पण्डित लोग उसे ही जीवसे परम श्रेष्ठ कहा करते हैं।

२४० अध्याय समाप्त।

शुकदेव बोले, प्रकृतिसे चौबीस तत्त्वात्मक जो साधारण सृष्टि है, उसे और विषययुक्त इन्द्रियों तथा बुद्धिकी सामर्थ आदि जो कुछ असाधारण उत्तम सृष्टि है, वह भी आत्माकी सृष्टि है,—यह मैंने सुना। सम्प्रति इस लोकमें युगके अनुसार जो सब सद्व्यवहार प्रचलित हैं, जिसके जरिये साधु लोग उसके आचरणमें प्रवृत्त होते हैं, मैं फिर उस विषयकी सुननेकी इच्छा करता हूं। वेदके बीच कर्म्म करने और कर्म्म परित्यागका वचन वर्णित है; परन्तु इन दोनोंके अविरोध विषय विभागके जरिये विचार कर किस प्रकारसे मालूम करूं; आप इस होकी व्याख्या करिये मैं गुरुके उपदेशसे धर्म्माधर्म्म मूलक लौकिक रीतिको यथार्थ रीतिसे जानके धर्म्मानुष्ठानके जरिये पवित्र होकर और बुद्धिका संस्कार करके देह छोड़ कर अव्यय परमात्माका दर्शन करूंगा।

व्यासदेव बोले, कर्म्मके सहारे बुद्धिका संस्कार करनेसे आत्मदर्शन हुआ करता है, पहले प्रजापतिने स्वयं इस व्यवहारका विधान किया है, और पहलेके साधु महर्षि लोग भी वैसा ही आचरण कर गये हैं। परमर्षि लोग ब्रह्मचर्य्यसे सब लोकोंकी जय किया करते हैं जो मनके जरिये बुद्धिसे अपने कल्याणकी इच्छा करें, वे बनवासी और फलमूलभोजी होकर अत्यन्त तपस्याचरण करके पवित्र आश्रमोंमें विचरते हुए सब भूतोंमें दयायुक्त होकर धूप रहित मूषक शब्द बर्ज्जित वाणप्रस्थ आश्रममें यथा समय भिक्षा प्राप्त करके ब्रह्मत्त्व लाभ कर सकेंगे। तुम निस्तुति और निर्नमस्कार होके शुभाशुभ परित्याग कर जिस किसी वस्तुसे होसके, उस होसे तृप्ति लाभ करके वनके बीच अकेले ही विचरो।

शुकदेव बोले, "कर्म्म करो, और कर्म्म परित्याग करो," ये वेद वचन जो लौकिक वचनसे विरुद्ध होरहे हैं, इन दोनोंके प्रमाण वा अप्रमाण विषयमें किस प्रकार शास्त्रत्त्वकी सिद्धि हो सकती है। इससे पूर्व्वोक्त तीनों वचनोंके प्रमाणको सिद्धिके लिये व्यवस्था करनी उचित है। उन दोनों वाक्योंका ही किस प्रकार प्रमाण हो और सब कर्म्मोंके अविरोधसे किस प्रकार मोक्ष हुआ करतो है, इसे हो मैं सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, "योजनगन्धापुत्र महर्षि वेदव्यासने कर्म्मके जरिये चित्तशुद्ध करके आत्माका

दर्शन करूंगा,"—अपरिमित तेजसेयुक्त निज पुत्रके इस वचनकी अत्यन्त प्रशंसा करके उसके पूर्व्व प्रश्नके अनुसार वक्ष्यमाण रीतिसे यह उत्तर दिया।

व्यासदेव बोले, ब्रह्मचारी, गृहस्थ वाणप्रस्थ और भिक्षुक ये सब निज आश्रम विहित कर्म्मोंका अनुष्ठान करनेसे मोक्ष लाभ करनेमें समर्थ होते हैं, अथवा जो लोग कामद्वेषसे रहित होके अकेले ही इन चारों आश्रमोंका विधिपूर्व्वक अनुष्ठान करते हैं, वह ब्रह्मविषयमें ज्ञानवान् होनेके योग्य हुआ करते हैं। ब्रह्मप्राप्तिके विषयमें यह चतुष्पदी अधिरोहिणी प्रतिष्ठित है, इस ही निःश्रेणीमें चढ़के लोग ब्रह्मलोकमें जाते हैं। ब्रह्मचारी असूयारहित और धर्म्मार्थवित् होकर परमायुके चौथे भागके पहले भागमें गुरु अथवा गुरुपुत्रके समीप वास करे। गुरुके गृहमें जघन्य शय्यापर शयन करते हुए पहले उठके शिष्य अथवा सेवकका जो कुछ कार्य्य हो, वह सब सम्पन्न करे; कर्त्तव्य कर्म्मोंके सिद्ध होने पर गुरुकी बगलमें खड़ा रहे, सब कार्य्य जाननेवाला सेवक और सब कर्म्मोंका करनेवाला होवे। शेष कर्म्मोंको समाप्त करके ज्ञानकी इच्छा करनेवाला शिष्य गुरुके समीप पढ़े; सरल और अपवादरहित होवे; गुरुके आवाहन करनेसे उसका आश्रय ग्रहण करे; पवित्र निपुण और गुणयुक्त होकर बीच बीचमें प्रियवचन कहे। जितेन्द्रिय और सावधान होकर स्निग्ध नेत्रसे गुरुको देखे। जबतक गुरु भोजन कर न चुकें, तबतक भोजन न करे, उनके बिना जल पीये, जल न पीवे, बिना बैठे उपविष्ट न होवे और बिना निद्रित हुए शयन न करे। दोनों हाथोंको नीचे ऊपर करके गुरुके दोनों पावोंको कोमलभावसे स्पर्श करे, दहने हाथसे दहने पांव और बायें हाथसे बायें चरणकी वन्दना करे। गुरुको प्रणाम करके कहे, हे भगवन्! शिष्यकी शिक्षादान करिये; मैं यह करूंगा, इसे किया है; हे भगवन्! दूसरी बार आप जो आज्ञा करेंगे, वह भी करूंगा, इसी प्रकार सब विषयोंमें आज्ञा लेकर और विधिपूर्व्वक निवेदन करके सब कार्य्य करे, कार्य्य समाप्त करके फिर गुरुके समीप सब विषयोंका निवेदन करे, ब्रह्मचारी जिन सब गन्ध रसोंको सेवा नहीं करते, समावृत अर्थात् ब्रह्मचर्य्य कर्म्म समाप्त होनेपर समावर्त्तन संस्कारके जरिये संस्कारयुक्त होके उन सब विषयोंको सेवन करे, यह धर्म्मशास्त्रमें निश्चित है। ब्रह्मचारीके पक्षमें जो कुछ नियम हैं, उसे विस्तारपूर्व्वक कहता हूं, ब्रह्मचारी सदा उसहीका आचरण करे और सदा गुरुकी सेवा करनेमें तत्पर रहे। इस ही प्रकार गुरुकी शक्तिके अनुसार प्रसन्न करके शिष्य होकर कर्म्मके जरिये ब्रह्मचर्य्य आश्रमसे निकलकर दूसरे आश्रममें निवास करे। वेदाध्ययन, व्रत और उपवाससे आयुका प्रथम भाग बीतने पर गुरुको दक्षिणा देकर विधिपूर्व्वक समावृत होके अर्थात् गुरुगृहसे लौटके गृहस्थाश्रममें प्रवेश करे। फिर धर्म्मसे प्राप्त हुई दारा परिग्रह करके यत्नके सहित तीनों अग्निको उत्पन्न करते हुए गृहमेधी और व्रती होकर परमायुका दूसरा भाग बितानेके लिये गृहमें वास करे।

२४१ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, गृहस्थ पुरुष धर्म्मपत्नीयुक्त और सुव्रती होके अग्नि लाकर आयुके दूसरे भागके गृहमें निवास करे। कवियोंने गृहस्थकी चार प्रकारकी वृत्तिका विधान किया है, उसमेंसे पहले कुशूल धान्य अर्थात् तुच्छ धान्यके जरिये जीविका निर्व्वाह करे। दूसरा कुम्भ धान्य अर्थात् घड़े परिमित धान्य सञ्चय करके वृत्ति स्थापित करे, तीसरा अश्वस्तन अर्थात् दूसरे दिनके लिये, सञ्चय न करें। चौथा कापोती अर्थात् उञ्छवृत्ति

अवलम्बन करके जीविका निर्व्वाह करे। इन-मेंसे धर्म्मके अनुसार जो जिसके अनन्तर वर्णित हुए, वेही उससे अधिक ज्यायान और धर्म्मजि-त्तम हैं, गृहस्थ पुरुष यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान, प्रतिग्रह, इन षट् कर्म्मोंको अवलम्बन करके वर्त्तमान रहे, कोई दान और अध्ययन,इन दोनों कर्म्मोंका आसरा करके निवास करें और चौथे आश्रमी केवल ब्रह्मसत्र अर्थात् प्रणवकी उपासनामें रत रहें, इस समय गृहस्थोंके सुन्दर और महत् व्रत कहे जाते हैं। गृहस्थ पुरुष अपने लिये अन्न पाक न करावे और वृथा हत्या न करे। बकरे आदि प्राणी हो होवें अथवा अश्वत्थ आदि अप्राणी हो हो सबका ही यजुर्वेदीय छेदन मन्त्रसे संस्कार करना होगा। गृहस्थ पुरुष दिनके समय, रात्रिके आरम्भ और रात्रिकी समाप्तिमें कभी न सोवे ; दिन और रात्रिमें भोजनका जो समय निर्दिष्ट है, उसके मध्यमें फिर भोजन न करे ; ऋतुकालके अतिरिक्त भार्य्यासे सङ्ग न करे। गृहमें आके कोई ब्राह्मण अनादृत और अभुक्त रहके वास न करे,—इस विषयमें गृहस्थको सावधान होना योग्य है ; अथिति लोग सदा सत्कारयुक्त होके हव्यकव्य ढोते हुए निवास करें ; वेद-स्नान रत, व्रतस्नात स्वधर्म्मजीवी दान्त क्रियावान, तपस्वी, श्रोत्रियोंके अर्हणाके निमित्त हव्यकव्यका करना सदा ही योग्य है। दम्भके निमित्त नख लोम धारण करनेवाले, स्वधर्म्म ज्ञापक, अविधिसे अग्निहोत्र त्यागनेवाले, और बड़े लोगोंके अप्रियकार्य्य करनेवाले चाण्डाल आदि जीवोंका भी गार्हस्थ्य धर्म्ममें संविभाग है, ब्रह्मचारी सन्यासी आदि जिन्हें स्वयं पाक करना निषिध है, गृहमेधी मनुष्य उन्हें अन्नदान करें।

गृहस्थ पुरुष सदा विघसाशी और अमृत भोजी होवें, यज्ञसे शेष बचे हुए हविके सहित भोजनको अमृत कहा जाता है, और जो लोग सेवकोंके भोजन करनेके अनन्तर भोजन करते हैं, पण्डित लोग उसे ही विघसाशी कहते हैं ; इसलिये यज्ञसे शेष भोजनका नाम अमृत और सेवकोंके भोजन करनेके अनन्तर जो भोजन किया जाता है, वह विघस पद वाच्य हुआ करता है। गृही मनुष्य स्वस्त्रीमें रत, दान्त, असूयारहित और जितेन्द्रिय होकर ऋत्विक पुरोहित, अतिथि, आश्रित लोग, वृद्ध, बालक आतुर, आचार्य्य मामा, वैद्य, स्वजन सम्बन्धी बान्धव, माता, पिता, बहिन अथवा सगोत्रा स्त्रियां, भ्राता, भार्य्या, पुत्र, कन्या और सेवकोंके सहित विवाद न करे। इन सब लोगोंके संग अंश आदिके निमित्त झगड़ा परित्याग करनेमें मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हुआ करते हैं। जो लोग इन सब विवादोंके विषयोंको जय करते हैं वे सब लोकोंको निःसन्देह जय करनेमें समर्थ होते हैं। पूरी रीतिसे आचार्य्यकी सेवा करनेसे ब्रह्मलोक प्राप्त होता है ; पिताके पूजित होनेसे मनुष्य प्रजापति लोक प्राप्तिके प्रभु हुआ करते हैं ; अतिथियोंके सत्कार युक्त होनेसे इन्द्रलोक प्राप्त होता है ; ऋत्विकोंके पूजित होनेसे देव-लोक मिलता है ; कुलकी स्त्रियोंके सम्मानित होनेसे अप्सरा-लोकमें वास होता है ; स्वजनोंके आदरयुक्त होनेसे वैश्वदेव लोकमें निवास हुआ करता है ; सम्बन्धी बान्धवके सत्कारयुक्त होनेसे सब दिशामें यश फैलता है, माता और मामाके पूजित होनेसे भूलोकमें कीर्त्ति हुआ करती है, वृद्ध, बालक आतुर और कृश आदिके आदर करनेसे आकाशमें गति प्राप्त होती है। बड़ा भाई पिताके समान है, भार्य्या और पुत्र निज शरीर स्वरूप हैं ; दास दासी निज परछांईके समान हैं, और कन्या अत्यन्त कृपापात्री है ; इस लिये इन सबके जरिये उत्यक्त होनेपर भी गृह-धर्म्म परायण, विद्वान्, धर्म्मशील, जीतक्लम पुरुष क्रोधरहित होकर सदा उसे सहे। कोई धार्म्मिक मनुष्य धन लाभके लिये अग्निहोत्र आदि कर्म्म न करे ; उञ्छशिल और कपोतव्रत

भेदसे गृहस्थकी तीन प्रकारकी वृत्ति है; उसके बीच उत्तरोत्त वृत्तिही कल्याणकारी है। ऋषि लोग ब्रह्मचर्य्य आदि चारों आश्रमोंके उत्तरोत्तरको श्रेष्ठ कहा करते हैं। आश्रमोंके सब कार्य्योंको प्राप्त करनेको जो लोग इच्छा करते हैं, वे यथोक्त नियमोंका अवलम्बन करें, अथवा कुम्भधान्य वा उञ्छशिल वृत्तिके जरिये कपोतीवृत्ति अवलम्बन करें। ऐसे पूजनीय पुरुष जिस देशमें निवास करते हैं, उस राज्यको समृद्धि वर्द्धित हुआ करती है। ऐसे नियमशाली मनुष्य पहले और पीछेके दश पुरुषोंको पवित्र करते हैं। जो लोग गृहस्थ वृत्ति अवलम्बन करके व्यथा रहित होकर पहले कहे हुए नियमोंको पालन करते हैं वे राजचक्रवर्त्ती मान्धाता आदि राजाओंने जिन लोकोंमें गमन किया है, उन्हींके समान लोकोंको पाते हैं। जितेन्द्रिय लोगोंको भी ऐसी ही गतिका विषय विहित है। उदारचित्त गृहस्थोंके निमित्त स्वर्गलोक ही हितकर है; वेदघुष्ट विमानोंसे संयुक्त स्वर्गलोक नियत चित्तवाले गृहस्थोंके लिये प्रतिष्ठित है। जब कि गार्हस्थ धर्म्म स्वर्गके कारण रूपसे ब्रह्माके जरिये विहित हुआ है, तब मनुष्य क्रमसे गार्हस्थ अवलम्बन करके अन्तमें अवश्य ही स्वर्ग लोकमें वास करेंगे। इसके अनन्तर गार्हस्थसे भी परम उदार आश्रमको तीसरा आश्रम कहा जाता है, हड्डी, चर्म्म आदिके संश्लेष जनित शरीरको सुखानेवाले बनचारी लोगोंको इस आश्रममें शरीर त्यागनेसे जो फल प्राप्त होता है, उसे सुनो।

२४२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! पण्डितोंने जिस प्रकार गृहस्थ वृत्तिका विधान किया है, उसे मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया। इसके अनन्तर जिस आश्रमका विषय वर्णित हुआ है उसे कहता हूं सुनो। गृहमेधी मनुष्य परम श्रेष्ठ कपोती वृत्तिको क्रमसे परित्याग करके सहधर्म्मिणीके सहित खिन्न होकर वाणप्रस्थ आश्रमको अवलम्बन करें। हे तात! प्रीचापूर्व्वक प्रवृत्त, पुण्य देशमें निवास करनेवाले सर्व्व लोकाश्रम स्वरूप वाणप्रस्थ आश्रमवालोंके वृत्तान्त सुननेसे तुम्हारा कल्याण होगा।

व्यासदेव बोले, गृहस्थ पुरुष जिस समय निज शरीरको ढलता हुआ तथा, पुत्रको सन्तानको अवलोकन करें, तब बनवासी होवें। वे परमायुका तीसरा भाग वाणप्रस्थाश्रममें व्यतीत करें; देवताओंकी पूजा करके पूर्वोक्त तीनों अग्नियोंकी परिचर्य्या करते हुए नियुक्त रहें; सदा नियताहारी और अप्रमत्त होकर दिनके छठवें भागमें भोजन करें। इस आश्रममें बनके बीच पञ्चयज्ञ करनेके समय अग्निहोत्र, गौवें; यज्ञके अंग अकालकृष्ट व्रीहि, यव, नीवार, विघस और हवि आदि सम्प्रदान करें। वाणप्रस्थ आश्रममें भी ये चार प्रकारकी वृत्ति विहित हुई हैं। इस आश्रममें अतिथि सत्कारके लिये अथवा यज्ञ क्रिया निर्व्वाहके वास्ते कोई कोई नित्य ही प्रक्षालन करते हैं, अर्थात् जिस दिन जो कुछ प्राप्त करते हैं, उस ही दिन उसे व्यय किया करते हैं, कोई कोई मासिक सञ्चय, कोई वार्षिक सञ्चय और कोई द्वादश वार्षिक द्रव्य आदि सञ्चय कर रखते हैं। इन लोगोंके बीच कोई कोई प्रावृट्कालमें अभ्रावकाश देशमें निवास करते हैं, हेमन्तकालमें जलमें स्थित हुआ करते हैं, ग्रीष्मकालमें पञ्चतपा होते और सदा परिमित भोजन करते हैं। कोई कोई भूमिपर विपरीत भावसे अर्थात् नतशिरा और ऊर्द्ध्वपाद होकर निवास करते हैं, कोई पांवके अग्रभागसे भूमि स्पर्श करके स्थिति किया करते हैं; दूसरे लोग किसी स्थानको अवलम्बन करके स्वल्प आहारसे जीविका निर्व्वाह करते हैं, अन्य लोग अध्वर कालमें अभिषिक्त होते

हैं, इस आश्रममें कोई कोई दन्त उखलिक अर्थात् दान्तसे उखलका कार्य्य निवाहते हैं, दूसरे लोग अश्मकुट अर्थात् पत्थरके जरिये धान्य आदि शस्योंको भूसीरहित किया करते हैं। कोई कोई शुक्लपक्षमें एक ही बार क्वाथयुक्त यवागू पीते हैं, कोई कृष्ण पक्षमें उक्त क्वाथ पान करते हैं अथवा शास्त्रके अनुसार भोजन किया करते हैं, कोई कोई दृढ़व्रती मनुष्य मूलके जरिये कोई फलके सहारे और कोई फूलके जरिये जीवन धारण करते हुए यथा न्यायसे वैखानस वृत्ति अवलम्बन करके जीविका निर्व्वाह किया करते हैं। वे सब मनीषि पुरुषोंके ये सब और इनके अतिरिक्त दूसरी विविध दीक्षा हैं और उपनिषदोंके बीच जो विदित होता है अर्थात् स्थिर होके आत्मासे ही आत्मा का दर्शन करे, यह सर्व्वाश्रम साधारण धर्म्म है।

हे तात! इस युगमें सर्व्वार्थदर्शी ब्राह्मणोंके जरिये वाणप्रस्थ और गृहस्थ आश्रमसे असाधारण धर्म्म प्रवर्त्तित होरहा है। अगस्त्य, सप्तऋषि मधुच्छन्द, अघमर्षण, सास्कृति, सुदिवातण्डि, यथावास, अकृतश्रम, अहोवीर्य्य, काव्य, भाण्डव मेधातिथि, बुध, बलवान वर्णविपाक, शून्यपाल और कृतश्रम तथा जिन्होंने धर्म्मके फल सत्यसङ्कल्प आदिको प्रत्यक्ष किया है, वे प्रत्यक्षधर्म्मवाले ऋषिलोग और यायावर समूहोंने इसही धर्म्मका आचरण किया था, उसहीसे वे लोग स्वर्गमें गये हैं; धर्म्म नैपुण्यदर्शी बहुतेरे महर्षि लोग तथा उनके अतिरिक्त अनेक ब्राह्मणोंने अरण्यको अवलम्बन किया था। वैखानस, वालखिल्य सैकत और कृच्छ्र चान्द्रायण आदि परल निबन्धन कर्म्मके जरिये निरानन्द, धर्म्ममें रत जितेन्द्रिय ब्राह्मण लोग तथा प्रत्यक्षधर्म्मा महर्षि लोग वाणप्रस्थको अवलम्बन करके स्वर्गमें गये हैं; नक्षत्र, ग्रह तारासे भिन्न जो सब निर्भय ज्योति समूह आकाशमें दीख पड़ते हैं, वेही गुणवान् मनुष्योंके अवलम्ब हैं। मनुष्य जरासे जरिये परिहत और व्याधिसे प्रपीड़ित होकर अन्तमें परमायुके चौथे भागमें वाणप्रस्थाश्रम परित्याग करें। वह सदा सम्पादन करने योग्य सर्व्वस्व दक्षिणासत्र समाप्त करके आत्मयाजी, आत्मरति, आत्मक्रीड़ और आत्मसंश्रय होकर सब परिग्रह परित्याग कर आत्मामें तीनों अग्नि आरोपित करके सदा सम्पादनीय ब्रह्मयज्ञ आदि और दर्श पौर्णमास यज्ञका निर्व्वाह करनेमें रत रहें, जिस समय याज्ञिकोंको यज्ञप्रवृत्ति निवृत्त होके आत्मामें याग साधन करनेकी इच्छा होती है, उस समय देहत्याग पर्य्यन्त शरीरमें तीनों अग्नियोंको आरोपित करने होगी। हृदय गार्हपत्य अग्नि, मन अन्वाहार्य्य-पचनअग्नि और मुख आवहनीय अग्नि है यह वैश्वानर विद्याप्रोक्त प्रकरणके जरिये जानकर देहमें उक्त तीनों अग्निका याग करना होगा। आत्मयागी मनीषि भोजनके समय अन्नकी निन्दा न करके "प्राणाय स्वाहा" इत्यादि यजुर्वेदीय मन्त्रोंको उच्चारण करके पहले पञ्च प्राणोंको पांच ग्रास वा छः ग्रास अन्न प्रदान करे। अनन्तर वाण प्रस्थ मुनि केश लोम और नखोंसे परिपूरित और कर्म्मनिर्व्वाहसे पवित्र होकर उस आश्रमसे पवित्र चौथे आश्रममें गमन करे। जो ब्राह्मण सब भूतोंको अभयदान करके सन्न्यास धर्म्म अवलम्बन करता है, वह परलोकमें ज्योतिर्म्मय लोकोंको प्राप्त करके अनन्त सुख भोग किया करता है। सुशील सदवृत्तिवाले, पापरहित आत्मवित् पुरुष ऐहिक और पारलौकिक किसी कर्म्मके करनेकी अभिलाषा नहीं करते वे क्रोध मोहहीन और सन्धि विग्रहसे रहित होकर उदासीनकी भांति निवास करते हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य्य, अपरिग्रह, अभिधेय, यम और शौच, सन्तोष, तपस्या, वेदाध्ययन और ईश्वर प्रणिधानाख्य नियमोंमें निबद्ध न रहें। स्वशास्त्रीय सूत्र और आकृति मन्त्रमें विक्रम प्रकाश न करें, आत्मवित् पुरुषोंको यथेष्ट गति अर्थात् सभी-

मुक्ति वा क्रममुक्ति इच्छानुसार हुआ करती है धर्म्मपरायण जितेन्द्रिय लोगोंको कोई संशय नहीं रहता। बाणप्रस्थ आश्रमके अनन्तर श्रेष्ठ गुणोंके जरिये ब्रह्मचर्य्य आदि तीनों आश्रमोंसे समधिक रूपसे विख्यात् धर्म्मयुक्त चौथे आश्रमका विषय कहता हूं, सुनो।

२४३ अध्याय समाप्त।

शुकदेव बोले, बाणप्रस्थाश्रममें यथारीतिसे बर्त्तमान पुरुष, परम वेषवस्तु ब्रह्मको जाननेकी इच्छा करनेसे किस प्रकार शक्तिके सहित आत्मयोगका अभ्यास करेंगे।

व्यासदेव बोले, ब्रह्मचर्य्य और गार्हस्थ आश्रमके जरिये चित्तशुद्धि लाभ करनेके अनन्तर परमार्थ विषयमें जो कुछ कर्त्तव्य है, उसे तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। ब्रह्मचर्य्य, गार्हस्थ और बाणप्रस्थ, इन तीनों आश्रमोंमें चित्तके दोषोंको नष्ट करके सबसे उत्तम सन्यास धर्म्मरूपी परमपदमें प्रवज्या करे; इसलिये तुम इस ही प्रकार योगानुष्ठान करो और इसे सुनो, योगी पुरुष सहायरहित होकर अकेले ही धर्म्माचरण करें; जो आत्मदर्शी मनुष्य अकेलाही धर्म्माचरण करता है, वह सर्व्वव्यापीत्व निबन्धनसे किसी पदार्थको परित्याग नहीं करता और मोक्षसुखसे परित्यक्त नहीं होता। वह निरग्नि और निराश्रय होकर अन्नके निमित्त गांवमें जाता है, चित्तको समाधान करनेवाले पुरुष अश्व-स्तन-विधाता न होवें, अर्थात् दूसरे दिनके लिये अन्न सञ्चय न करें; लघुभोजी और नियताहारी होकर दिनमें एक बार अन्न भोजन करें; कपाल और कषाय वस्त्र धारण तरुमूलका आश्रय, असहायता और सब भूतोंके विषयमें उपेक्षा अर्थात् प्रीति-द्वेष हीनता ये सब भिक्षुकके लक्षण हैं, डरे हुए हाथी कूएंमें प्रवेश करनेसे जिस प्रकार होते हैं, वैसे ही दूसरोंके बचन जिनमें प्रविष्ट हुआ करते हैं, अर्थात् जो लोग दूसरेके जरिये आक्रुश्यमान होके भी क्रोध नहीं करते और जो वक्ताके निकट फिर गमन करनेमें बिरत रहते हैं, वेही कैवल्य आश्रममें वास करनेमें समर्थ होते हैं।

चौथे आश्रमी भिक्षु, बाह्यवस्तुओंकी ओर न देखें, कभी किसीकी निन्दा विशेष करके ब्राह्मकी निन्दा सुननी वा किसी भांतिसे कहनी योग्य नहीं है। जिससे ब्राह्मणोंका कुशल हो सदा वैसा ही बचन कहे; आत्मनिन्दाके समय चुप रहें; और मौनावलम्बन ही भवरोगकी चिकित्सा है। जिनके अकेले निवास करनेसे सूना स्थान भी लोगोंसे परिपूरित बोध होता है, लोगोंसे पूरित स्थान जिनके अभावमें सूना हुआ करता है, देवता लोग उन्हें ही ब्रह्मिष्ठ समझते हैं। जो सांपसे डरनेकी भांति लोगोंसे भयभीत होते हैं, नरक भयके समान मिष्टान्न-जनित तृप्तिसे बिरत रहते हैं और मृतक शरीरके समान स्त्रियोंसे भय करते हैं, उन्हें देवता भी ब्रह्मिष्ठ समझते हैं। जो सम्मानित होनेसे हर्षित नहीं होते, असम्मानित होनेसे क्रोध नहीं करते और जो लोग सब प्राणियोंको अभय दान करते हैं, देवता लोग उन्हें ब्रह्मिष्ठ जानते हैं; मरनेका अभिनन्दन न करे, जीवनका भी अभिनन्दन करना योग्य नहीं है; जैसे सेवक स्वामीकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करता है, वैसे ही समयकी प्रतीक्षा करें। जो लोग बचन और मनको दोष रहित करके स्वयं सब पापोंसे मुक्त हुए हैं, उन निरमित्र मनुष्यों की भयका कौनसा विषय है। सब प्राणियोंसे जो लोग अभय हुए हैं और जिनसे सब भूतोंको भय नहीं होता उन मोहसे छूटे हुए पुरुषोंको किसी प्रकार भयकी सम्भावना नहीं होसकती। जैसे इरद पद प्रक्षेपके बीच मनुष्य और पशु आदिके पांवके चिन्ह लुप्त होजाते हैं, वैसेही शरीरको शीर्ण करके समाधिस्थ होकर जो लोग योगी

हुए हैं, उनके निकट इन्द्रादि पद विहित हुआ करता है। योगमें समस्त कर्म्म फलोंकाही अन्तर्भाव होता है।

इस ही प्रकार अहिंसामें सब धर्म्म, अर्थ अन्तर्भूत हुआ करते हैं, जो हिंसा नहीं करते, वे सदा अमृत उपभोग किया करते हैं। जो लोग अहिंसक, समदर्शी, सत्य बोलनेवाले, धृतिमान्, संयतेन्द्रिय और सब भूतोंके शरण्य हैं, वे सबसे उत्तम गति पाते हैं। अवश्यम्भावी मृत्यु, इसही प्रकार आत्मानुभव स्वरूप प्रज्ञानसे तृप्त, निर्भय, आशा रहित पुरुषोंको अतिक्रम नहीं कर सकती, बल्कि वेही मृत्युको अतिक्रम किया करते हैं। स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरमें "मैं" इस अभिमान स्वरूप सर्व्वसङ्गसे जो लोग मुक्त हुए हैं, निर्व्विषयत्व निबन्धनसे शून्यकी भांति मौनभावसे जो लोग निवास किया करते हैं, और जो अदृश्य और एकचर होकर शान्तभावसे स्थिति करते हैं, देवता लोग उन्हें ब्रह्मिष्ठ समझते हैं। जिसका जीवन केवल धर्म्मके निमित्त है, धर्म्माचरण भक्त जनोंकी शिक्षाके लिये है, समाधि और व्युत्थान सब लोगोंके शिक्षाके निमित्त है, देवता लोग उन्हें ब्रह्मिष्ठ समझते हैं। जिन्हें न आशा है, न आरम्भ है, जो किसीको नमस्कार वा स्तुति नहीं करते और जो सब वासनासे मुक्त हुए हैं। देवता लोग उन्हें ब्रह्मिष्ठ समझते हैं। प्राणिमात्रही सुखमें रत हुआ करते हैं, और सबही दुःखसे अत्यन्तही डरते हैं, इसलिये श्रद्धावान् मनुष्य उनके भय उत्पन्न होनेके लिये खिन्न होकर कर्म्म करनेमें यत्नवान न होवे; क्यों कि कर्म्ममात्र ही हिंसायुक्त है, इससे उन्हें साधुओंको त्याग करना योग्य है। सब जीवोंमें अभयदान ही सब दानोंसे उत्तम है, यह दान सब प्रकारके दानोंसे समधिक भावसे वर्त्तमान रहता है; जो पहले हिंसामय धर्म्म परित्याग करते हैं, वे प्रजाससूहसे अभय प्राप्ति स्वरूप अनन्त सुखयुक्त मोक्षपद लाभ किया करते हैं। जो आत्मयाजी, योगी, बाणप्रस्थकी भांति उत्तान मुखसे "प्राणाय स्वाहा" इत्यादि अनेक मन्त्रोंके जरिये पञ्च आहुति नहीं देते, बरन प्राणादि पञ्चक और इन्द्रिय वा मनको आत्मामें लीन किया करते हैं, वे चराचर जीवोंके नाभि स्वरूप और त्रैलोकात्मा वैश्वानरके आस्पद होते हैं, उनके मस्तक आदि सब अङ्ग वैश्वानरके अवयव होते, उनके कृत अकृत सब कर्म्म वैश्वानरके कार्य्यरूपसे प्रतिपन्न हुआ करते हैं। नाभिसे हृदय पर्य्यन्त प्रादेश-परिमित स्थानमें जो प्रकट होता है, आत्मयाजी योगी उस चिन्मात्र पुरुषमें प्राण उपलक्षित निखिल प्रपञ्चको लीन करता है, वे लोकके सहित सब लोकोंमें ही उसका आत्म संस्थ अग्निहोत्र सम्पन्न होता है। जो लोग द्योतमान, सूक्ष्म तेजमय सूत्रात्माको जानते हैं, और तीनों गुणोंसे परिपूरित माया उपाधिक ईश्वरको तथा सूक्ष्म प्रत्यय स्वरूप उपाधि रहित आत्माको जान सकते हैं, वे सब लोकोंमें पूजित होते हैं, और मनुष्य तथा देवता लोग उनके सुकृतको प्रशंसा किया करते हैं।

निखिल वेद विषयादि जानने योग्य वस्तुएं कर्म्मकाण्डकी सब बिधि, प्रत्यङ्ऐक्य गम्य परलोक आदिनिरुक्त और आत्माकी सत्यस्वभावताख्यपी परमार्थता, ये सब शरीरात्मा प्रत्येय स्वरूपसे वर्त्तमान हैं। इसे जो जानता है, उस सर्व्वेश्वरकी सदा सेवा करनेके लिये देवता लोग भी अभिलाष किया करते हैं। जो भूमण्डलमें असक्त रूपसे वर्त्तमान है, प्रत्यगात्मता निबन्धनसे द्युलोकमें भी जो अप्रमेय होकर विद्यमान हैं, जो ब्रह्माण्डके बीच प्रकट हो रहा है, जो किरणकी भांति प्रसमर नेत्र, कान आदिके जरिये प्रकाशित होकर जीव भावको प्राप्त हुआ है, जो अनेक प्रतन्त्र स्थानीय देवता रूपसे संयुक्त होरहा है, उस

आसक्ति रहित चिन्मय आत्माको भोग्य शरीर और हृदयाकाश पुण्डरीकके बीच जो स्थित जानता है, देवता लोग भी उसकी सदा सेवा करनेके निमित्त अभिलाष किया करते हैं। जो कालचक्र सदा परिवर्त्तनशील होके भी प्राणियोंकी आयु अजरभावसे व्यतीत कर रहा है, छहों ऋतु जिसकी नाभि और बारहों महीने जिसके अरस्वरूप हैं, दर्शसंक्रमण आदि जिसमें सुन्दर पर्व्व स्वरूप हुए हैं, यह दृश्यमान जगत् जिसके मुखमें लीन होरहा है, वही कालचक्र जिसकी बुद्धिमें वर्त्तमान है, देवता भी उसकी सेवा करनेके लिये सदा इच्छा किया करते हैं। जो पूरी रीतिसे प्रसन्नताके आधार होनेसे जगत्के शरीरस्वरूप और स्थूल सूक्ष्म सब लोकोंमें ही सर्व्वकारण रूपसे स्थित होरहा है, वही सम्प्रदायाभिन्न स्थूल सूक्ष्म दोनों शरीरवाले जीवों और प्राण आदिकी तृप्तिसाधन करता है, प्राण आदि तृप्त होकर उसके सुखको तृप्त किया करते हैं। उस तेजमय नित्य स्वरूप पुराण पुरुषका जो आसरा करते हैं, वे लोग अनन्त अभयलोकमें जाते हैं। जिससे सब प्राणी कभी भय नहीं करते, उसे सब प्राणियोंसे कभी भय नहीं होता। इस लोक और परलोकमें अनिन्दित होकर जो दूसरेकी निन्दा नहीं करते, वेही ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण परमात्माका दर्शन करनेमें समर्थ होते हैं, अन्तमें उनका अज्ञान नष्ट होनेसे जब स्थूल सूक्ष्म दोनों शरीर नष्ट होते हैं, तब वे भोग्य लोकमें गमन किया करते हैं। जिसे न क्रोध है, न मोह है और सुवर्ण तथा लोष्ट्रमें समज्ञान हुआ है, जो कोष रहित और सन्धि विग्रहसे हीन हुए हैं, जिन्होंने निन्दा, स्तुति परित्याग की है, जिन्हें प्रिय वा अप्रिय कुछ भी नहीं है, वे चौथे आश्रमी भिक्षुक उदासीनकी भांति विचरते रहते हैं।

२४४ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, देह, इन्द्रिय और मन आदिके बीच प्रकृतिके विकारसे क्षेत्रज्ञ स्थित होरहा है अर्थात् अधिष्ठातृत्व, कर्त्तृत्व और भोक्तृत्व भावको प्राप्त हुआ है, परन्तु नेत्र आदि इन्द्रिय जड़त्व निबन्धनसे आत्माको प्रकाशित नहीं कर सकतीं, आत्मा चेतन है, इसहीसे उक्त इन्द्रियोंको प्रकाशित करता है। जैसे सारथी दृढ़, बलवान, अत्यन्त दान्त उत्तम घोड़ोंके जरिये जाने योग्य स्थानमें गमन करता है, वैसे ही आत्मा मनके सहित पाचों इन्द्रियोंके जरिये विषय-प्रदेशमें गमन किया करता है। इन्द्रियोंसे रूप आदि विषय श्रेष्ठ हैं, विषयोंसे मन उत्तम है, मनसे बुद्धि श्रेष्ठ है, बुद्धिसे आत्मा महान् है, अर्थात् शुद्ध "त्वं" पदार्थ उत्कृष्ट है, महत्तत्त्वसे उपादान अव्यक्त नामक अज्ञान श्रेष्ठ है, अव्यक्तसे अमृत स्वरूप चिदात्मा परम श्रेष्ठ है, अमृतसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है, वह उत्कर्षकी सीमा और परम गति है। इस ही प्रकार आत्मा सब भूतोंके बीच कन्याका कान्तकी भांति गूढ़ भावसे स्थिति करनेपर भी प्रकाशित नहीं होता। सूक्ष्मदर्शी योगी लोग केवल सूक्ष्म बुद्धिके सहारे उसका दर्शन किया करते हैं। वे लोग धारणायुक्त बुद्धिके जरिये मनके सहित इन्द्रियों और इन्द्रियोंके गूढ़ विषयोंको अन्तरात्मामें पूर्ण रीतिसे लय करके ध्येय, ध्यान और ध्यातृ-रूप इन तीनोंको ही विचारते हैं। "मैं ब्रह्म हूं," इस वचनके निमित्त बुद्धि वृत्तिरूपी विद्याके जरिये संस्कारयुक्त मनको ध्यानके सहारे स्थिर करके द्वैतभाव प्रविलापनके अनन्तर प्रशान्तचित्तवाले योगी कैवल्य पद पाते हैं; और इन्द्रियोंने जिसके चित्तको हरण किया है, जिसकी स्मरणशक्ति विचलित हुई है, वैसा मनुष्य काम आदिका आत्म समर्पण करके मृत्युके मुखमें पतित हुआ करता है। सङ्कल्पको नष्ट करके सूक्ष्म बुद्धिके बीच चित्त

निवेश करे, सूक्ष्म बुद्धिके बीच चित्त निवेश करे; शिषमें क्षण मुहूर्त्तादि काल करके नाश करे; क्यों कि आत्मवित पुरुष ही कालका विनाश साधन किया करते हैं। जो पुरुष इस लोकमें चित्तप्रसादके जरिये शुभाशुभ परित्याग करता है, वह प्रसन्नचित्त यति आत्मनिष्ठ होकर अत्यन्त ही सुख सम्भोग किया करता है। सुषुप्तिकालकी सुखनिद्रा अथवा निवास स्थलमें दीप्यमान निष्कम्प प्रदीपकी भांति प्रसादका लक्षण है। इस ही प्रकार पूर्व्व और अपर कालमें परमात्मामें जीवात्माका योग करते हुए लघुभोजी शुद्ध चित्तवाले योगी आत्मामें ही आत्माको अवलोकन करते हैं। हे पुत्र! ये आत्म प्रत्यय सिद्ध अनुशासन शास्त्र सब वेदोंके रहस्य हैं, ये केवल अनुमानसे अथवा आगममात्रसे मालूम नहीं होसकते सब धर्मों और सत्याख्यानमें जो सारभाग है, उसी और सब वेदोंसे उत्तम एक हजार दश ऋक्मन्त्रोंको मथके यह अमृत उद्धृत हुआ है, दहीसे नवीन घृत और काठसे अग्नि प्रकट होनेकी भांति पुत्रके निमित्त ज्ञानियोंको ज्ञान स्वरूप यह शास्त्र समुद्धृत हुआ है। हे पुत्र! यह अनुशासन शास्त्र स्नातक ब्राह्मणोंके निकट पाठ करना चाहिये; अप्रशान्त, अदान्त और जो पुरुष तपस्वी नहीं हैं, उनके समीप इसे कहना योग्य नहीं है। अवेदज्ञ, अननुगत, असूयक, असरल, अनिर्दिष्टकारी, चुगुल, अपनी बड़ाई करनेवाले और जो पुरुष तर्क शास्त्रके जरिये जले हुए हैं, उनके समीप यह अनुशासन वर्णन करना योग्य नहीं है; बड़ाईके योग्य, प्रशान्त, तपस्वी, प्रियपुत्र और अनुगत शिष्यसे यह रहस्य धर्म्म अवश्य कहना चाहिये, दूसरे लोगोंके निकट किसी प्रकारसे कहना उचित नहीं है। कोई मनुष्य यदि रत्न पूरित पृथ्वीमण्डल दान करे, तत्ववित् पुरुष उससे भी इस धर्म्मको श्रेष्ठ जाने। इससे भी गुप्त जो अतिमानुष अध्यात्म विषय है, महर्षियोंने जिसका दर्शन किया है, वेदान्तके बीच जो वर्णित हुआ करता है, और तुम मुझसे जिसका विषय पूछते हो, मैं उसे तुम्हारे समीप वर्णन करूंगा। हे पुत्र! तुम्हारे अन्तःकरणमें जो परम पदार्थ वर्त्तमान होरहा है, और जिस किसी विषयमें तुम्हें संशय है, मैं वह सब विषय तुमसे कहता हूं सुनो; और तुमसे क्या कहना होगा?

२४५ अध्याय समाप्त।

शुकदेव बोले, हे भगवन्! फिर अध्यात्म विषय विस्तारके सहित मेरे समीप वर्णन करिये। हे ऋषि सत्तम! अध्यात्म विषय किसे कहते हैं, और वह कैसा है?

व्यासदेव बोले, पुरुषके सम्बन्धमें यह अध्यात्म विषय जो पठित होता है, उसे तुम्हारे निकट वर्णन करता हूं, तुम उसकी इस व्याख्याको सुनो। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और आकाश, ये पञ्चमहाभूत समुद्रकी तरङ्गमालाकी भांति जरायुज आदि जीवोंके बीच प्रति जीवोंमें पृथक् पृथक् कल्पित हुए हैं। जैसे कछुआ निज अङ्गोंको फैलाकर फिर समेट लेता है, वैसे ही सब महाभूत शुद्र शरीरकारसे युक्त महाभूतोंमें स्थित रहके सृष्टि और प्रलय आदि विकारोंको उत्पन्न किया करते हैं; इसलिये शरीरके बीच ही सपनेकी तरह ब्रह्माण्डका उदय और प्रलय होता है; इससे स्थावर जङ्गमात्मक यह समस्त जगत अल्पभूतमय उन शरीरान्तर महाभूतोंमें सृष्टि और प्रलय निर्दिष्ट हुआ करती है। हे तात! देवता मनुष्य तिर्य्यग् आदि सब प्राणियोंमें ही पञ्च महाभूत वर्त्तमान हैं, तो भी प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले प्रजापति सृष्टि कालमें जिन कर्म्मोंके लिये जिसे उत्पन्न करते हैं, उनमें पञ्चभूतोंका वैशेषविधान किया करते हैं।

शुकदेव बोले, विधाताने शरीरके अवयव, बुद्धि और इन्द्रिय आदिमें जो पञ्चभूतोंकी विषमताकी है, वह किस प्रकार जानी जाती है। इन्द्रिय वा शब्दगुण हो कितने प्रकारके हैं, और वे किस प्रकार जाने जाते हैं।

व्यासदेव बोले, हे पुत्र ! तुमने जिस विषयमें प्रश्न किया है, उसे विस्तारके सहित यथावत वर्णन करता हूं, तुम एकाग्रचित्त होकर इस विषयका यथार्थ तत्व सुनो। शब्द श्रवणेन्द्रिय और शरीरके सब छिद्र आकाशसे उत्पन्न हुए हैं, प्राण, चेष्टा और स्पर्शेन्द्रिय, ये तीनों वायुके बिकार हैं, रूप, नेत्र और विपाक अर्थात् जठराग्नि रूपसे ज्योति त्रिविध भावसे विहित है; रस रसको इन्द्रियां और स्नेह, ये तीनों जलके गुण हैं, घ्रेय वस्तु, घ्राणेन्द्रिय और शरीरके कठोर अंश ये तीनों भूमिके बिकार हैं; इन सब ये सब इन्द्रियोंसे पञ्चभौतिक शरीर व्याख्यात् हुआ है। वायुका गुण स्पर्श, जलका गुण रस, अग्निका गुण रूप, आकाशका गुण शब्द और पृथ्वीका गुण गन्ध है; छूना, चखना, देखना, सुनना, और संघना, इन्द्रियोंके जरिये मालूम हुआ करते हैं। सङ्कल्प-विकल्पात्मक मन, निश्चय करनेवाली बुद्धि, पूर्व्ववासना स्वभाव ये तीनों स्वयोनिज हैं, अर्थात् आत्मयोनि भूतोंसे ये सब उत्पन्न हुए हैं; परन्तु सत्त्वादि गुणोंसे कार्य्य स्वरूप होके उन सत्त्वादि गुणोंको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होते। जैसे कछुआ अपने अङ्गोंको पसारके फिर नियमित करता है, वैसे ही बुद्धि सब इन्द्रियोंको उत्पन्न करके उन्हें नियमित कर रखती है। पांवके ऊपर और सिरके नीचे इन सारी शरीरके बीच जो कुछ करणीय देखा जाता है, उन सबमें ही बुद्धि वर्त्तमान है, अर्थात् देहमें "मैं" इस अनुभवका विषय बुद्धि स्वरूप है। बुद्धि शब्दादि गुणोंकी प्रेरणा करती है, अर्थात् शब्दादि स्वरूपताको प्राप्त होती हैं। बुद्धि ही मनके सहित इन्द्रियोंको प्रेरणा किया करती है, बुद्धि न रहनेपर विषय और इन्द्रियें प्रथित नहीं होती, मनुष्योंके शरीरमें पञ्चेन्द्रिय हैं, मन उनके बीच छठवां कहा जाता है, बुद्धिको सातवीं कहते हैं, क्षेत्रज्ञ अष्टम रूपसे माना गया है, नेत्रको आलोचनाके लिये मन संशय करता है, बुद्धि निश्चय किया करती है, क्षेत्रज्ञ साक्षी स्वरूप कहा जाता है, रज, तम और सतोगुण, ये स्वयोनिज होकर देवता मनुष्य सब भूतोंमें निवास करते हैं, कार्य्यसे इन सब गुणोंको जानना उचित है। उसमेंसे आत्मामें जो कुछ प्रीति संयुक्त मालूम होता है और जो प्रशान्तकी भांति पूरीरीतिसे शुद्ध है, उसे सतोगुण समझो; शरीर और मनको जो सन्तापयुक्त करता है, उसे रजोगुण जाने और जो संमोहसे संयुक्त है, तथा जिसका विषय अव्यक्त तर्कसे अगोचर वा अविज्ञेय है, उसे तमोगुण कहके निश्चय करो। किसी कारण वा अकारणसे हो प्रहर्ष, प्रीति, आनन्द, समता, स्वस्थदेहता और स्वस्थ-चित्तता हो, तो समझो कि उसमें ही सतोगुण वर्त्तमान है। अभिमान् मृषावाद, लोभ, मोह, और क्षमा, यदि कारण वा अकारणसे उत्पन्न हो तो उसे ही रजोगुणका लक्षण समझना चाहिये। मोह, प्रमाद, निद्रा, तन्द्रा, और प्रबोधिता यदि किसी प्रकारसे बर्त्तमान हो, तो उसे ही तमोगुण जानना योग्य है।

२४६ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, निश्चयात्मिका बुद्धि मनरूपसे सङ्कल्प मात्रके जरिये बिबिध पदार्थोंको उत्पन्न करती है, हृदयके प्रिय और अप्रिय सब विषय मालूम होते हैं; कर्म्म प्रेरणा तीन प्रकारकी है। इन्द्रियोंसे सङ्कल्प जनित निबन्धनसे सब विषय सूक्ष्म हैं, विषयोंसे मन सूक्ष्म, मनसे बुद्धि सूक्ष्म है, और बुद्धिसे आत्मा सूक्ष्म है,—

यह महर्षियोंको अभिमत है। बुद्धि मनुष्योंको व्यवहारिक आत्मा है, बुद्धि ही स्वयं आत्मा-स्वरूपसे स्थिति करती है, बुद्धि जिस समय विविध पदार्थोंको उत्पन्न करती है, उस समय मन शब्द वाच्य होती है। इन्द्रियोंके पृथक् भावके कारण बुद्धि विकृत होती है, इस ही निमित्त जब बुद्धि सुनती है तब कान, जब स्पर्श करती है तब त्वचा, जब दर्शन करती है तब नेत्र, जब चखती है तब जीभ और जब सूंघती है, तब घ्राण कहके वर्णित होती है, इसलिये बुद्धि पृथक् पृथक् रूपसे विकृत हुआ करती है बुद्धिके सब विकारोंको इन्द्रिय कहते हैं, चिदात्मा प्रदृश्य भावसे उन सबमें और सात्विक, राजसिक और तामसिक भावोंसे वर्त्तमान है। पुरुषाधिष्ठिता बुद्धि भी उक्त तीनों भावोंमें निवास करती है; मनुष्य कभी सुख लाभ करता है, तौभी शोकित होता है; इस संसारमें कभी कोई निरवच्छिन्न सुखशाली अथवा दुरवगाह दुःखभागी नहीं होता। जैसे तरङ्ग मालायुक्त सरित्पति समुद्र नदियोंके वेगको शान्त करता है, वैसे ही वह भावात्मिका बुद्धि सत, रज, तम, इन तीनों भावोंको अभिभव किया करती है। जब बुद्धि किसी विषयकी अभिलाष करती है, तब उसे मन कहा जाता है। सब इन्द्रिय-गोलक बुद्धिमें अन्तर्भूत होकर पृथक् पृथक् निवास करते हैं। रूप आदि ज्ञान साधनमें तत्पर इन्द्रियोंको सब भांतिसे विजय करना उचित है। जो इन्द्रिय जिस समय बुद्धिके अनुगत होती हैं, उस समय पहले बुद्धि पृथग्भूत न रहनेपर भी अन्तमें सङ्कल्पात्मक घटादि विषयोंमें वर्त्तमान हुआ करती है; अर्थात् बुद्धिसे अनुगृहीत होके इन्द्रियां सङ्कल्पजनित बाह्य विषयोंका ज्ञान करती हैं। इस ही प्रकार क्रमसे रूप आदिका ज्ञान उत्पन्न होता है, सब विषयोंका ज्ञान युगपत् नहीं होता। जैसे अरोंका रथनेमिके बीच सम्बन्ध रहता है, वैसे ही सात्विक, राजसिक और तामसिक भाव मन, बुद्धि तथा अहंकारमें विषयके अनुसार वर्त्तमान रहते हैं। जब कि एक मात्र स्त्रीसे पतिकी प्रीति, सपत्नियोंका द्वेष, दूसरेको मोह होते दीख पड़ता है, तब विषयदर्शनसे ही आन्तरिक भावोंकी उत्पत्ति होती है, इसे ही अङ्गीकार करना होगा। इस विषयमें अनुभव वैषम्यके कारण जो लोग विषयको ही त्रिगुणात्मक कहते हैं, उनका मत युक्ति पूरित नहीं है; क्यों कि एक मात्र स्त्रीमें पतिको प्रीति, सपत्नीके द्वेष और दूसरोंके मोह सदा ही वर्त्तमान नहीं रहते; इसलिये मन, बुद्धि; अहङ्कार ही सत, रज और तमोमय हैं, सब विषय तन्मय नहीं हैं। बुद्धिस्थ विषय सिद्धि अर्थात् हृदयगुहामें स्थित परब्रह्म विषयक परमार्थिक ज्ञान साधनके निमित्त मन किरणरूपी इन्द्रियोंके जरिये सत्तम परब्रह्मको छिपानेवाले अज्ञानका विनाश किया करता है। योगाचारियोंका यह योग जिस प्रकार सिद्ध होता है, उदासीन मनुष्योंका भी यदृच्छाक्रमसे उस ही प्रकार योग सिद्ध हुआ करता है, बुद्धिमान् मनुष्य इस दृश्यमान् जगत्को इस ही स्वभावसे बुद्धिमात्रसे कल्पित जानके मोहित नहीं होते; वे किसी विषयमें हर्ष वा शोक प्रकाश नहीं करते, सदा मत्सरहीन होके निवास करते हैं। काम्यपान विषय गोचर इन्द्रियोंके निर्दोष होनेपर भी दुष्टतिशाली मलिन चित्तवाले मनुष्य उसके सहारे आत्माका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होते; जिस समय पुरुष मनके जरिये इन्द्रियोंके वेगको पूर्ण रीतिसे नियमित करता है, उस समय दीपकके प्रकाशके जरिये घटादि पदार्थोंकी आकृतिके समान उसके समीप आत्मा प्रकाशित होता है। सब जीवोंका ही जिस समय मोह दूर होता है, तब मानो वास्तविक सब विषय ही उनके समीप मालूम हुआ करते

हैं, वैसे ही कण्ठगत बिस्मृत चामीकरकी भांति अज्ञानके दूर होनेसे ही आत्माकी प्राप्ति हुआ करती है। जैसे जलचारी पक्षी पानीमें बिचरते हुए उसमें लिप्त नहीं होते, वैसे ही बिमुक्त स्वभाववाले योगी लोग पूर्व्वकृत पुण्यपापसे लिप्त हुआ करते हैं। इस ही प्रकार शुद्धचित्तवाले मनुष्य बिषयोंको सेवन करनेसे भी पापस्पर्शसे रहित हुआ करते हैं। वह पुत्र कलत्र आदि स्वजनोंमें आसक्त रहके भी उनके नाशके निमित्त शोक आदिसे अभिभूत नहीं होते, इस ही प्रकार देहासङ्गी पुरुष देहकृत कर्म्मसे लिप्त नहीं होते। पूर्व्वकृत कर्म्मोंको परित्याग करके सत्यस्वरूप आत्मामें जिसका अनुराग होता है वह सब भूतोंका आत्मभूत सब बिषयोंमें असंसक्त पुरुषकी बुद्धि सतोगुणमें बिचरती है कभी बिषयोंमें प्रवेश नहीं करती। इन्द्रियें आत्माको जाननेमें समर्थ नहीं हैं, परन्तु आत्मा सदा ही उन्हें जानता है, वह इन्द्रियोंका परिदर्शक और यथायोग्य रीतिसे उनकी सृष्टि किया करता है। सूक्ष्म सत् रूप परब्रह्म और जीवात्माका यह प्रभेद मालूम करो कि इनमेंसे एकने सब बिषयोंका सृजा है, दूसरेने कुछ भी नहीं किया है। वे दोनों प्रकृतिके बशमें होके पृथक् रहने पर भी सर्व्वदा सम्प्रयुक्त हैं, जैसे मछली जलसे स्वतन्त्र होनेपर भी दोनों ही सदा सम्प्रयुक्त हैं, जैसे मशक और उड़ुम्बर पृथक् होने पर भी एकत्रित हैं, जैसे सींक मूंजमें पृथक् रहके भी संयुक्त रहती है, वैसे ही जीव और ब्रह्म एक होनेपर भी परस्परमें प्रतिष्ठित हैं।

२४७ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, सत्स्वरूप आत्मा बिषयोंको उत्पन्न करता है, जीव उसमें अधिष्ठित हुआ करता है। ईश्वर उदासीनकी भांति बिकृत प्राप्त हुए बिषयोंका अधिष्ठाता है। जैसे उर्णनाभी अभिन्न निमित्त उपादान स्वरूपसे सूत्र निर्म्माण करती है, वैसे ही ईश्वर जिन गुणोंको उत्पन्न करता है, वे उसहीके स्वभावयुक्त होते हैं। सत्वादि सब गुण तत्वज्ञानके जरिये अदर्शनयुक्त होनेपर भी निवृत्त अर्थात् घट आदि बाह्य पदार्थोंकी भांति नष्ट नहीं होते; परन्तु रज्जु सर्पकी भांति बांधको ही प्रध्वंस पदवाच्य कहना होगा। घट आदि नष्ट होनेपर भी जैसे कपालदर्शनके जरिये इस स्थानमें घट नष्ट हुआ है, इस ही भांति घटसत्वाकी उपलब्धि होती है, सत्वादि गुणोंके प्रध्वंस होनेपर उस प्रकार उनके प्रवृत्तिकी प्राप्ति नहीं होती; इसलिये सत्वादि गुणोंके नाशको निरवयव नाश कहा जाता है। तार्किक लोग कहा करते हैं, कि आत्यन्तिकी दुःखकी निवृत्ति होनेसे ही आत्मगुणकी निवृत्ति होती है। सांख्यमतवाले दार्शनिक पण्डित लोग भी दृग्दिश्य संयोगसे अनादि भावका भी नाश स्वीकार करते हैं। इस ही प्रकार निवृत्ति और बाध इन दोनों पक्षोंको बुद्धिसे आलोचना करके यथामतिके अनुसार निश्चय करे; पुरुष इस प्रकारके बिधानके जरिये महान् आत्माश्रय हुआ करता है। आत्माका आदि और अन्त नहीं है, इसे जानकर मनुष्य क्रोध हर्षसे रहित और मत्सरहीन होकर सदा बिचरण करे। इस ही प्रकार बुद्धिके धर्म्मचिन्ता आदि दृढ़ हृदयग्रन्थिको जिन्होंने अतिक्रम किया है, वह शोकरहित और संशयहीन होकर सुखसे समय व्यतीत किया करते हैं। पृथ्वीपरसे भरी हुई नदीमें गिरे हुए मनुष्य डूबते हैं, इस लोकमें तरनेकी बिद्यासे रहित मूर्खोंकी गति भी उस ही प्रकार जाननी चाहिये, तरनेकी बिद्यासे युक्त तत्ववित् पुरुष उन्मज्जन निमज्जनके सहारे क्लेशित न होकर स्थलमें बिचरते हैं, इसी प्रकार जिन्होंने अपने आत्माकी शुद्ध चिन्मात्र

अर्थात् केवल ज्ञान स्वरूप जाना है, वे ही आत्माका स्वरूप और लक्षण जानते हैं। इस ही प्रकार मनुष्य सब भूतोंकी उत्पत्ति और लयके विषयको जानके और आकाश आदि भूतोंकी विषमता अवलोकन करके अत्यन्त उत्तम सुख लाभ किया करते हैं। मनुष्य जन्म ग्रहण करने विशेष करके ब्राह्मण होनेसे यह सामर्थ प्राप्त होती है, कि आत्मज्ञान और शान्ति अवलम्बनके जरिये मुक्ति लाभ हुआ करती है। मनुष्य इसे ही जानके पापरहित होता है, निष्पाप होनेका दूसरा लक्षण और क्या है? कृतकृत्य मनीषी पुरुष इसे ही जानकर मुक्त होते हैं। अज्ञानियोंके परलोकमें अधःपतनसे जो अत्यन्त महत् भय उपस्थित होता है, ज्ञानियोंको उस भयकी सम्भावना नहीं है। ज्ञानियोंकी जो उत्तम महती गति हुआ करती है, उससे बढ़के उत्तम गति और किसीकी भी नहीं होती। कोई मनुष्य उपभोग्य स्त्री आदिको दोषसे आक्रान्त समझके उन्हें दोषदृष्टिसे देखते हैं, कोई दूसरेका वैसे दोषाक्रान्त विषयमें अनुराग देखकर शोक किया करते हैं, परन्तु ज्ञानी और अज्ञानीके बीच महत् विलक्षणता है; इसे जानके जो लोग आरोपित वा अनारोपित शोक तथा शोकभावको विषय जानते हैं, उन्हें ही जानना चाहिये, कि वे निश्चय ही कुलीन हैं। जो लोग अनभिसन्धिपूर्व्वक अर्थात् निष्काम होकर कर्म्म करते हैं, उनका वही निष्काम कर्म्म पहलेके किये हुए पापोंको खण्डन करता है, निष्काम कर्म्म करनेवाले मनुष्योंके इस जन्म और पूर्व्व जन्मके किये हुए सब कर्म्म प्रिय वा अप्रियजनक नहीं होते; इसलिये तत्वविद्या अवश्य सिद्ध करनी उचित है।

२४८ अध्याय समाप्त।

शुकदेव बोले, हे भगवन्! इस लोकमें जिस धर्म्मसे बढ़के श्रेष्ठ धर्म्म और कुछ भी न हो और जो सब धर्म्मोंसे उत्तम है, आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये।

व्यासदेव बोले, ऋषियोंने जिस पुराण धर्म्मको स्थापित किया है और जो सब धर्म्मोंसे उत्तम है, वह तुम्हारे समीप विस्तारपूर्व्वक कहता हूं, तुम चित्त एकाग्र करके सुनो। जैसे पिता आत्मज सन्तानोंको यत्नपूर्व्वक संयत करता है, वैसे ही सब भांतिसे निष्पतनशील और प्रमथनकारी इन्द्रियोंको बुद्धिके जरिये संयत करके मन और इन्द्रियोंकी एकाग्रता साधन ही परम तपस्या है, वेही सब धर्म्मोंसे उत्तम और वही परम धर्म्मरूपसे महर्षियोंके जरिये वर्णित हुआ करता है। मनके सहित इन्द्रियोंको मेधाके सहारे सन्धान करके त्रिपुटी चिन्तनमें अनासक्त होकर आत्मतृप्तकी भांति निवास करे। जब इन्द्रियें वाह्य और आभ्यन्तरिक विषयोंसे निवृत्त होके सर्व्वाधिष्ठान परब्रह्ममें निवास करेंगी, तब तुम स्वयं ही शाश्वत परमात्माको देख सकोगे। जो सब महाभाग मनीषी पुरुष ब्रह्मवित् होते हैं, वे उस धूमरहित अग्निकी भांति उपाधिरहित सर्व्वमय महान् आत्माको देखते हैं। जैसे फल फूलसे युक्त अनेक शाखावाले बड़े वृक्ष अपने फल फूलोंको यह नहीं जानते कि कहां हैं, वैसे ही अचेतन बुद्धिवाले "मैं कहां जाऊंगा, कहांसे आया हूं," इसे कुछ भी नहीं जान सकते; तब इस देहके बीच बुद्धि-व्यतिरिक्त अन्तरात्मारूपसे जो विराजता है, वही बुद्धि आदि सबका ही अभिज्ञ है और सबको ही देखता रहता है। आत्मवित् पुरुष प्रकाशमान ज्ञानदीप स्वरूप आत्माके जरिये ही आत्माको देखते हैं, इसलिये तुम आप ही अपना दर्शन करके उपाधिरहित और सर्व्ववित् होजाओ। तुम्हें केंचुलीसे मुक्त सर्पकी भांति छूटकर और इस लोकमें परम ज्ञान

प्राप्तकर सुखी होके अनेक प्रकारसे बहनेवाली लोकप्रवाहिनी, पञ्चेन्द्रिय ग्राहसे युक्त, मनके सङ्कल्प तटवाली, लोभ मोहरूपी तृणसे परिपूरित काम क्रोधरूपी सर्पसे युक्त, सत्य तीर्थवाली, मिथ्यासे अक्षोभ, क्रोधपङ्कसे संयुक्त, अव्यक्त प्रभव, शीघ्रगामिनी और अकृतात्म लोगोंसे दुस्तर और काम ग्राहसे परिपूरित नदीके जरिये संसारनदीको ज्ञानके सहारे तरना चाहिये। हे तात! कृतप्रज्ञ धृतिमान् मनीषी पुरुष संसारसागर गामिनी, वासना पाताल दुस्तरा, आत्म जन्मोद्भव जिह्वावार्त्ता जिस दुरासद नदीके पार जाते हैं, तुम उस ही नदीको तरके सर्व्वसङ्गरहित, विधूत स्वभाव, आत्मवित्, पवित्र और समस्त संसारसे पार होके प्रसन्नात्मा तथा पापरहित होकर परम श्रेष्ठ ज्ञान अवलम्बन करके ब्रह्मत्वलाभ करोगे। तुम ज्ञानरूपी पर्व्वतपर चढ़के भूमिष्ठ मूर्खोंको देखो। तुम क्रोधरहित, हर्षहीन और अनृशंस बुद्धि होनेसे सब भूतोंकी उत्पत्ति और प्रलय देख सकोगे। धार्म्मिकप्रवर तत्वदर्शी विद्वान् महर्षियोंने योगके जरिये अज्ञान रूपी नदीको सन्तरणस्वरूप इस धर्म्मको सब धर्म्मोंसे श्रेष्ठ समझा है।

हे तात! सर्व्वव्यापी आत्माका ज्ञानस्वरूप यह अनुशासन सदा हितकारी वा अनुगत पुत्र शिष्योंसे कहना चाहिये। हे तात! यह आत्मसाक्षिक आत्मज्ञानका विषय इतना ही जो तुमसे कहा है, यह सबसे महत् और गुप्त है। यह परब्रह्म न स्त्री है, न पुरुष है, और न नपुंसक ही है; यह अदुःख, असुख तथा भूत-भव्य वर्त्तमान स्वरूप है; स्त्री वा पुरुष उसे जाननेसे फिर जन्म नहीं लेते, पुनर्ज्जन्मकी प्राप्ति न होनेके ही निमित्त यह धर्म्म विहित हुआ है। हे तात! मैंने जो किसी स्थलमें जैसे सब दर्शनोंके मतोंको कहा है, वैसे ही इस आत्मज्ञानके विषयको भी वर्णन किया है, परन्तु अधिकारी भेदसे वे सब वचन किसी स्थानमें फलित और किसी स्थलमें विफल होते हैं। हे सत्पुत्र! इसलिये प्रीति, गुण और दमसे युक्त पुत्रके पूछनेपर पिता प्रसन्न होकर इस विषयको यथार्थ रीतिसे पुत्रके निकट इस प्रकार वर्णन करे, जैसे मैंने तुमसे कहा है।

२४६ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, गन्ध रस और सुखका अनुसरण तथा गन्ध आदि समलंकृत आभूषणोंका अननुरोध और उक्त भोग्य वस्तुओंमें विशेष प्रकाश न करके उदासीन भावसे निवास, मान, कीर्त्ति, तथा यश लाभमें अभिलाष रहित होना और उन सबमें उदासीनता अवलम्बन करना ही विद्वान् ब्राह्मणोंके व्यवहार हैं। गुरु सेवामें रत, ब्रह्मचर्य्य व्रत करनेवाला पुरुष यदि सब वेदोंको पढ़े, तथा ऋग, यजु और साम वेदको मालूम करे; तौभी उसे मुख्य ब्राह्मण नहीं कहा जाता, जो सर्व्वज्ञ और सब वेदोंके जाननेवाले होकर सब प्राणियोंके विषयमें स्वजनवत् व्यवहार करते हैं, और जो लोग आत्मज्ञानसे तृप्त होते हैं, कभी जिसकी मृत्यु नहीं होती, उनके वैसे कर्म्मके सहारे भी मुख्य ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति नहीं होती। जिन्होंने विविध इष्टि और अनेक दक्षिणायुक्त यज्ञ किये हैं, उनमें दया और निष्कामता न रहनेसे कदापि ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति नहीं होसकती; जब पुरुषको किसी प्राणीसे भय नहीं होता और उससे भी कोई नहीं डरते, जब वह किसी विषयकी कामना और किसी विषयमें विद्वेष नहीं करता, तब वह ब्रह्मत्व लाभ करनेमें समर्थ होता है। जब पुरुष मन, वचन और धर्म्मके जरिये किसी जीवके विषयमें अनिष्ट आचरण नहीं करता, तभी ब्रह्मत्व लाभ करनेमें समर्थ होता है। इस लोकमें एकपात्र काम

बन्धन ही विशिष्ट है। उससे बढ़के दूसरा कोई बन्धन दृढ़ नहीं है, जो लोग उस काम-बन्धनसे छूटे हैं, वेही ब्रह्मत्व लाभमें समर्थ होते हैं।

जैसे धूमाकार बादलोंसे चन्द्रमा मुक्त होता है, वैसे ही रजोगुणसे रहित धीर पुरुष काम बन्धनसे छूटकर समयकी प्रतीक्षा करते हुए धीरज अवलम्बन करके निवास करते हैं। अचलके समान स्थिर भाव, भली भांतिसे पूरित समुद्रमें दूसरे सब जल जिस प्रकारसे प्रविष्ट होते हैं, वैसे ही सब काम जिस पुरुषमें प्रविष्ट हुआ करते हैं, वेही शान्तिलाभ करते हैं; वैसे पुरुष कभी विषयके अभिलाषी नहीं होते। वे विद्वान् पुरुष सङ्कल्पमात्रके सहारे समुपस्थित सुखोंमें मनोहर होते हैं, वेही इच्छा करनेसे स्वर्ग लाभ करनेमें समर्थ हुआ करते हैं; नहीं तो स्वर्गकी इच्छा करनेवाले मनुष्य इच्छामात्रसे ही स्वर्ग लाभ करनेमें समर्थ नहीं होते। वेदका रहस्य सत्य है, सत्यका रहस्य दम है, दमका रहस्य त्याग है, त्यागका रहस्य सुख है, सुखका रहस्य स्वर्ग है, और स्वर्गका रहस्य शान्ति है। सन्तोंके कारण यदि चित्तप्रसाद लाभका अभिलाषा हो, तो वासनाके सहित भी शोक मोहको सन्तापित करके क्रन्दन करो, यही शान्तिका उत्तम लक्षण है। शोकरहित ममताहीन, शान्त, प्रसन्नचित्त, मत्सररहित और सन्तोषयुक्त होकर जो लोग समस्त ज्ञानसे तृप्त हुए हैं, वे इन छहों लक्षणोंसे सबके ही कामनीय हुआ करते हैं। बुद्धिमान् पुरुष सत्य, दम, दान, तपस्या, त्याग और शम नामक छहों सत्वगुणसे युक्त श्रवण, मनन निदिध्यासनके जरिये जिस आत्माको जान सकते हैं जीवित देहमें उस ही आत्माकी जिन्होंने बुद्धि स्वरूपसे जाना है, वेही पूर्व्वोक्त मुक्त लक्षणको प्राप्त हुए हैं। जो बुद्धिमान् पुरुष अकृत्रिम अर्थात् अजन्य हैं, इसहीसे असहाय्य, स्वभावसिद्ध और गुणाधान मलापकर्षणात्मक संस्कार-रहित शरीरमें अधिष्ठित सुकृत आत्माको जाना है, वही अव्यय सुख उपभोग करते हैं। मनको विषयोंसे रोकके आत्मविचारमें प्रतिष्ठित करते हुए योगी पुरुष आत्मासे जो तुष्टिलाभ करते हैं, दूसरे किसी प्रकारसे भी वैसी तुष्टिलाभ नहीं होती। अभुक्तान्न मनुष्य जिसके जरिये तृप्त होते हैं, वृत्तिहीन पुरुष जिससे तृप्तिलाभ करते हैं, स्नेहरहित पुरुष जिसके सहारे बलवान् होते हैं,—जो लोग उस ब्रह्मको जानते हैं, वेही वेदवित् हैं। जो शिष्ट ब्राह्मण प्रमादसे इन्द्रियोंकी पूर्ण रीतिसे रक्षा करते हुए ध्यान अवलम्बन करके निवास करते हैं, उन्हें ही आत्मरति कहते हैं। जो परम तत्वमें तत्पर और वासनारहित होकर स्थित रहते हैं, चन्द्रमाकी भांति उनका सुख बढ़ता रहता है। जैसे सूर्य्यके जरिये अन्धकार दूर हो जाता है, वैसे ही जो मननशील योगी पञ्चतन्मात्रा, महत्तत्व और प्रकृतिको परित्याग करते हैं, वे सहजमें ही संसारके दुःखोंसे छूट जाते हैं। वे अतिक्रान्त कर्म्म करनेवाले अतिक्रान्त गुण, ऐश्वर्य्य और विषयोंसे असंश्लिष्ट ब्राह्मणको जरा तथा मृत्यु स्पर्श नहीं कर सकती। वे जब सब तरहसे विरक्त और राग द्वेषसे रहित होके निवास करते हैं, उस समय जीवित शरीरसे ही इन्द्रिय और इन्द्रियोंके विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जिन्होंने प्रकृतिको परित्याग करके परम कारण परब्रह्मको जाना है, उन परम पद पानेवाले पुरुषोंको फिर संसारमें लौटकर नहीं आना पड़ता।

२५० अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, सुख, दुःख, मान अपमान सहनेवाला मनुष्य अर्थ और धर्म्मका अनुष्ठान करके शेषमें यदि मोक्ष जिज्ञासु हो, तो गुणवान्

वक्ता उस शिष्यको पहले यही महत् अध्यात्म विषय सुनावे। आकाश, वायु अग्नि, जल और पृथ्वी, ये पञ्चभूत और द्रव्य गुण, कर्म्म सामान्य, समवाय और विशेष, ये कई एक भाव पदार्थ, इनके अतिरिक्त अभाव पदार्थ तथा काल पञ्च-भूतात्मक जरायुज आदि जीव मात्रमें ही वर्त्त-मान् है। तिसके बीच आकाश अवकाश भाग है, श्रवणेन्द्रिय आकाशमय है; शारीरिक शास्त्र विधानवित् पुरुष आकाशको-शब्द गुण कहा करते हैं। गमन आदि कार्य्य वायुसे उत्पन्न होते हैं, प्राण और अपान आदि वायुमय है, स्पर्शइन्द्रिय और स्पर्श को भी वायुमय जानो। ताप, पाक प्रकाश, उष्णता और नेत्र, ये पांचो अग्निस्वरूप हैं, उसका गुण रूप, लाल, श्वेत और असितात्मक है। क्लेश, संकोच और स्नेह ये तीनों जलके धर्म्म हैं; मस्तक, मज्जा आदि जो कुछ स्निग्ध पदार्थ हैं, वे सब जलमय हैं, रसनेन्द्रिय, जिह्वा वा रस जलके गुण कहे गये हैं। धातु, संघात, पार्थिव पदार्थ, हड्डी, दांत, नख, रोम, श्मश्रु, केश, शिरा और चर्म्म, ये सब पृथ्वीमय हैं। घ्राणेन्द्रियका नाम नासिका है, गन्ध ही इस इन्द्रियका विषय हैं। पूर्व्व पूर्व्व-भूतोंके गुण उत्तरोत्तर भूतोंमें वर्त्तमान हैं; इसलिये आकाशमें केवल शब्दगुण है, वायुमें शब्द और स्पर्श है, अग्निमें शब्द, स्पर्श और रूप है; जलमें शब्द, स्पर्श रूप तथा रस है और पृथ्वीमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध, ये पांचो ही विद्यमान है; ये पांचो गुण प्राणिमात्रमें ही विद्यमान रहते हैं। मुनि लोग इस पञ्चभूत सन्तति और अविद्या, काम तथा धर्म्मको अष्टम गिना करते हैं, मनको इन सबके बीच नवां कहा करते हैं, बुद्धिको दशवीं कहते हैं, अनन्तर आत्मा ग्यारहवां है, वह सबसे श्रेष्ठ कहके वर्णित होता है। बुद्धि निश्चय करनेवाली है और मन संशयात्मक है, वह अनन्त आत्मा कर्म्मानुमान निबन्धन अर्थात् सुख, दुःख लक्षणयुक्त कर्म्मोंके आश्रयत्वके कारण क्षेत्रसंज्ञक जीवरूपसे अनुमित होता है, सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग; इन काल-चक्र जीवोंसे युक्त समस्त प्राणिपुञ्जको जो लोग स्वरूपसे पापरहित देखते हैं। वह मोहका अनुसरण नहीं करते।

२५१ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, शास्त्रवेत्ता लोग स्थूल शरी-रसे मुक्त, सूक्ष्म भूत और दुर्लक्ष्य, सूक्ष्म शरीरी आत्माको शास्त्रोक्त कर्म्म योगानुष्ठान आदिके जरिये दर्शन करते हैं अर्थात् योगी लोग समा-धिके समय लिङ्गात्माका दर्शन किया करते हैं, जैसे सूर्य्यकी किरण आकाशमण्डलमें निबिड़ भावसे निवास करनेपर भी जैसे स्थूलदृष्टिके सहारे नहीं दीख पड़ती, परन्तु गुरूपदेशसे उन्हीं सर्व्वत्र विचरते हुए देखा जाता है, वैसेही स्थूल देहसे युक्त लिङ्ग शरोर स्थूल दृष्टिसे नहीं दीखता। देहसे छूटनेपर वह अतिमानुष लिङ्ग देह सब लोकोंमें विचरती है; इसे योगी लोग देखा करते हैं। जैसे सूर्य्यके किर-णमण्डलका प्रतिबिम्ब जलमें भी दीखता है, वैसेही योगी पुरुष सत्ववन्त पुरुष मात्रमें ही प्रतिरूपसे लिङ्ग शरीरको अवलोकन किया करते हैं। संयतेन्द्रिय सत्वज्ञ योगी लोग शरीरसे विमुक्त होके उन समस्त सूक्ष्म शरीरोंको निज लिङ्ग देह स्वरूपसे देखते हैं। जिन योगयुक्त पुरुषोंने आत्मामें कल्पित कामादि व्यसनोंको परित्याग किया है और जिन्होंने जगत्कारक प्रकृतिका अद्वैध अर्थात् प्रकृतिके तदात्म योग ऐश्वर्य्यसे भी विमुक्त हुए हैं, उन्हें क्या स्वप्नके समयमें क्या जाग्रत अवस्थामें, जैसे दिन वैसे ही रात्रिके समयमें, जैसे रात्रि वैसेही दिनके समयमें अर्थात् सब अवस्था तथा सब समयमेंही लिङ्गदेह वशीभूत रहती है। उन सब योगियोंका जीव

महदहङ्कार, पञ्चतन्मात्रा, इन सातों गुणोंसे सदा संयुक्त रहके इन्द्रादि लोकोंमें सदा विचरते हुए तीनों कालमें भी मिथ्याल निवन्धनसे धावित होनेसे भी अजर और अमर हुआ करता है। स्वदेह और परदेह विज्ञ योगी यदि मन तथा बुद्धिके जरिये पराभूत हो, तो वह थोड़े समयमें भी सुख दुःखका अनुभव किया करता है। वह जब सपनेमें भी कभी सुख लाभ करता, कभी दुःख भोग किया करता है, तब वह क्रोध और लोभके वशमें होकर विपदग्रस्त होता है, वह स्वप्न समयमें बहुत सा धन प्राप्त करके प्रसन्न होता, पुण्य कर्म्मोंका अनुष्ठान करता और जैसे जाग्रत अवस्थामें सब विषयोंका दर्शन किया जाता है, वैसेही उस समयमें भी उसहोके अनुरूप सब वस्तुओंको देखा करता है। स्वप्नकालकी भांति जीव गर्भमें जठर उष्माके बीच शयन किया करता है। कोखके बीच दश महीनेतक वास करके भी जीव अन्नकी तरह जीर्ण नहीं होता। वह अत्यन्त तेजस्वी परमेश्वरके अंशभूत हृदयमें स्थित जीवात्माको तमोगुण और रजोगुण युक्त पुरुष देहके बीच देखनेमें समर्थ नहीं हैं। जो लोग योग शास्त्रपरायण होके उस आत्माको प्राप्त करनेकी अभिलाष करते हैं, वे अचेतन स्थूल शरीर, अमूर्त्त सूक्ष्म शरीर और बज्रकी भांति अर्थात् ब्रह्माके प्रलयमें भी अविनाशी कारण शरीरोंको अतिक्रम करनेमें समर्थ होते हैं। विभिन्न रूपसे विहित सन्न्यास धर्म्मके बीच समाधिके समयमें मैंने जो यह योगका विषय कहा, शाण्डिल्य मुनिने इसे सन्न्यासियोंके शान्तिका हेतु कहा है। इन्द्रिय इन्द्रियोंके विषय, मन, बुद्धि, महत्तत्व, प्रकृति और पुरुष, ये सातों सूक्ष्म विषय तथा सर्व्वज्ञता, तृप्ति अनादिका बोध, स्वतन्त्रता, सदा अलुप्त दृष्टि और अनन्त शक्ति, इस षड़ङ्गयुक्त महेश्वरको जानके, यह जगत् त्रिगुणात्मिका प्रकृतिका विपरिणाम है,—इसे जो लोग जानते हैं, वे गुरु और वेदान्त बचनके अनुसार परब्रह्मका दर्शन करनेमें समर्थ होते हैं।

२५२ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, हृदयक्षेत्रमें मोहमूलक एक विचित्र कामतरु विराजमान हुआ करता है; क्रोध और मान उसके महास्कन्ध, बिधित्सा उसके आलवाल, अज्ञान उसका आधार है; प्रमाद उसे सिंचन करनेवाला जल असूया उसका पत्र और वह पूर्व्वकृत दुष्कृतोंके जरिये सारवान हुआ करता है। सम्मोह और चिन्ता उसके पल्लव, शोक उसकी शाखा और भय उसका अङ्कुर होता है; वह छद्ममोहनी पिपासारूपी लताजालके जरिये परिपूरित हुआ करता है। अत्यन्त लोभी मनुष्य लोग आयस अर्थात् लौहमयके समान दृढ़पाशके जरिये संयत होकर उन्हीं सब वृक्षोंके फललाभकी अभिलाष करके उसे घेरकर उसकी सेवा किया करते हैं। जो लोग उन सब वासोंको वशमें करके उक्त वृक्षको छेदन करते हैं, वेही वैषयिक सुख दुःख त्यागनेकी वासना करनेपर सहजमेंही सुख दुःखसे पार होनेमें समर्थ होते हैं। अकृतबुद्धि मूर्ख लोग जो स्रक्चन्दन बनिता आदिके जरिये सदा उस कामतरुको सम्वर्द्धित करते हैं, विषग्रन्थिके आतुरघातकी भांति वही स्रकचन्दन बनिता आदिही उस बर्द्धकका विनाश किया करती हैं। कृती पुरुष योग प्रसादसे बलपूर्व्वक निर्व्विकल्पक समाधि स्वरूप उत्तम खड्गके जरिये उस मूलानुगत महावृक्षका मूल उद्धार किया करते हैं। इस ही प्रकार जो लोग केवल कामका निवर्त्तन करना जानते हैं, वे कामशास्त्रके बन्धनको छुड़ाके सब दुःखोंको अतिक्रम करते हैं। महर्षि लोग भोगायतन इस शरीरको पुर कहा करते हैं; भोगजनित सुख दुःख आदिके अभिमानिनि निवन्धन बुद्धिको इसकी स्वामिनी

कहते हैं। शरीरस्थ मन निश्चयात्मिका बुद्धिके अमात्य स्थानीय है; क्यों कि विचार परायण मन बुद्धिको भोगके लिये इन्द्रिय विषयस्वरूप समस्त धनको अर्पण करता है, इन्द्रियें पुरवासी स्वरूप हैं, इन्द्रिय स्वरूप पौरजनोंको पालनेके लिये मनकी महती क्रियाप्रवृत्ति अर्थात् यज्ञ दान आदि रूपसे दृष्टादृष्ट फलोंको साधन करनेवाली कर्म्म-प्रवृत्ति हुआ करती है। राजस और तामस नाम दोनों दारुण दोष कर्म्मफलोंको अन्यथा करते हुए चित्त-आमात्यको कलुषता सिद्ध करते हैं। पुरेश्वर मन, बुद्धि और अहङ्कारके सहित इन्द्रियस्वरूप पौरगण तथा दोषयुक्त चित्त अमात्यके जरिये निर्म्मित कर्म्मफल सुखदुःख आदिको उपजीव्य किया करता है। ऐसा होनेसे राजस और तामस दोनों दोष अविहित मार्ग अर्थात् परदारा आदि भोगके जरिये सुखादिरूपी अर्थको उपजीव्य समझा करता है, शुद्ध स्त्नमयत्न निवस्नन बुद्धि रजोगुण और सतोगुणके वशमें न होनेपर भी मनकी प्रधानताके कारण दोषकलुषित मनके सहित उसकी समता होजाती है। इन्द्रियरूपी पौरगण मनसे डरके चञ्चल होजाते हैं अर्थात् मन दुष्ट होनेपर इन्द्रियें भी दोष स्पृष्ट होकर किसी स्थानमें भी स्थैर्य्य अवलम्बन नहीं करतीं। दुष्टबुद्धि पुरुष जिस विषयको हितकर कहके निश्चय करता है, वह भी दुःखदायी अनर्थ होकर परिणाममें विनष्ट होता है। नष्ट अर्थ भी दुःखदायक हैं; क्यों कि बुद्धिके सहित मन अर्थ हानि स्मरण करके भी अवसन्न होजाता है। जब सङ्कल्परूपसे मन बुद्धिसे पृथक् होता है, तब उसे केवल मन कहा जाता है, यथार्थमें वही बुद्धि है; इसलिये उसके तापसे बुद्धि भी सन्तापित हुआ करती है। बुद्धिमें गया हुआ दुःखका फल देनेवाला रजोगुण उस बुद्धिके बीच विधृत अर्थात् प्रतिबिम्ब रूपसे स्थापित इस आत्माको आवरण करता है अर्थात् परिच्छेद परिताप आदि बुद्धिके धर्म्म तदुपहित आत्मामें प्रकाशित होते हैं, इससे मन रजोगुणके सङ्ग मिलकर सख्यता करता है अर्थात् प्रवृत्ति विषयमें उन्मुख होता है। सङ्गत मन उसही आत्मा और पौरजन इन्द्रियोंको वशमें करके रजोगुणके फल दुःखके निकट अर्पण करता है, अर्थात् जैसे कोई दुष्ट मन्त्री राजा और नगरवासी प्रजाको अपने अधीनमें करके शत्रुके निकट समर्पण करता है, वैसेही राजसिक मनके जरिये आत्मा बुद्धि और इन्द्रियां बद्ध होती हैं।

२५३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे तात युधिष्ठिर! आकाश आदि भूतोंका निर्द्धारण गर्भ जो शास्त्र द्वैपायन मुनिके मुखसे वर्णित हुआ है, हे पापरहित! तुम अपनेको परम श्लाघायुक्त समझके उसे फिर मेरे समीप सुनो, प्रकाशमान अग्निके समान अर्थात् अज्ञानसे रहित भगवान द्वैपायनने जिसका वर्णन किया है,—हे तात! मैं उसही अज्ञानको नष्ट करनेवाले शास्त्रको फिर कहता हूं। स्थैर्य्य, गरुआई, कठोरता, प्रसवार्थता अर्थात् धान्य आदिके उत्पत्तिकी निमित्तता, गन्ध, गुरुत्व, गन्ध ग्रहण करनेकी सामर्थ्य। श्लिष्टावयवत्व, स्थापन अर्थात् मनुष्य आदिके आश्रयत्व और पञ्चभौतिकमनमें जो धृतिके अंश हैं, वे सब भूमिके गुण हैं। शीतता, ह्राद, द्रवत्व, स्नेह, सौम्यता, रसनेन्द्रिय, प्रस्रवण और भूमिसे उत्पन्न हुए चावल प्रभृतिके पचानेकी शक्ति, ये जलके गुण हैं। दुर्द्धर्षता; ज्योति, ताप, पाक, प्रकाश, शोक, राग लघुता, तीक्ष्णता और सदा ऊर्द्ध्वज्वलन, ये कई एक अग्निके गुण हैं। अनुष्ण, शीत, स्पर्श वागिन्द्रिय-गोलक, गमन आदि विषयोंमें स्वतन्त्रता, बल, शीघ्रता, मूत्र आदिका त्याग उत्क्षेपण आदि कर्म्म, श्वास प्रश्वास आदिकी चेष्टा,

प्राणरूपसे चिदुपाधिता और जन्म, मरण, ये कई एक वायुके गुण हैं। शब्द, व्यापकता, छिद्रता, आश्रयत्वाभाव, आश्रयान्तर, शून्यता, रूपस्पर्श शून्यता निबन्धन अव्यक्तता अविकारिता, अप्रतिघातिता, श्रवणेन्द्रियकी उपादानता और देहान्तर्गत छिद्र स्वरूपता, ये कई एक आकाशके गुण हैं। पञ्चभूतोंके यही पचास गुण प्राचीन महर्षियोंके जरिये वर्णित हुए हैं। धीरज, उपपत्ति अर्थात् उपापोह, कौशल, स्मरण, भ्रान्ति, कल्पना अर्थात् मनोरथ वृत्ति, क्षमा, वैराग्य, राग, द्वेष और अस्थिरत्व, ये नव मनके गुण हैं। इष्ट और अनिष्ट वृत्ति विशेषका विनाश, उत्साह, चित्तकी स्थिरता, संशय और प्रतिपत्ति अर्थात् प्रत्यक्षादि प्रमाणवृत्ति, इन पांचोको पण्डित लोग बुद्धिका गुण समझते हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! बुद्धि किस कारणसे पञ्चगुणान्वित हुई और इन्द्रियां ही किस लिये गुणरूपसे वर्णित हुईं; आप इस सूक्ष्म ज्ञानका सब विषय मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे तात! साधारण रीतिसे बुद्धिके पांच गुण वर्णित होनेपर भी वेद वचनके अनुसार उसे षष्टि-गुणयुक्त कहा जाता है; क्यों कि पञ्च भूतोंके पहले कहे हुए पचास गुण और स्वयं पञ्चभूत भी बुद्धिके गुणस्वरूप कहे गये हैं, बुद्धि अपने पञ्चगुणोंके सहित पूर्व्वोक्त पचपनगुणों मिलकर साठगुणोंसे संयुक्त होती है। वे सब गुण नित्य चैतन्यके सङ्ग मिलनेसे सबवृत्तियोंके जड़ होनेपर भी चैतन्यसम्बन्धसे उनके ज्ञानरूपत्व व्यवहार हुआ करते हैं सब भूतोंकी समस्त विभूति अक्षर परब्रह्मके जरिये उत्पन्न हुई हैं; परन्तु वह उत्पत्ति नित्य नहीं है,—यह वेदमें वर्णित है। हे तात! जगत्‌को उत्पत्ति, स्थिति और लयके विषयमें दूसरे वादियोंने जो वेदविरुद्ध युक्ति कही हैं वे बिचारसे दूषित हैं; इससे तुम इस लोकमें मेरे कहे हुए नित्य सिद्ध परब्रह्मके तत्वको जानकर और ब्राह्मऐश्वर्य्य प्राप्त करके शान्त बुद्धि होजाओ।

२५४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, ये जो सब महाबलवान् राजा सेनाके बीच चेतरहित होकर पृथ्वीपर शयन कर रहे हैं, इनके बीच एक एक पुरुष अत्यन्त बलवान थे। कोई कोई दश हजार हाथीके समान बलशाली थे; ये सब युद्धभूमिमें समबल तथा तुल्य तेजवाले वीरोंके जरिये मारे गये हैं युद्धभूमिमें इनसब महाप्राणियोंको संहार करे, ऐसा मैं किसीको भी नहीं देखता हूं। ये सब बहुत बिक्रमसे युक्त और वीर्य्य तथा बलसे भरे थे; तौ भी ये महाबुद्धिमान् पुरुष प्राण रहित होके पृथ्वीपर सो गये हैं, और इन सब प्राणहीन मनुष्योंके विषयमें मृत शब्द व्यवहृत होरहा है। ये सब भयङ्कर बिक्रमो राजा लोग प्रायः बहुतेरे ही मर गये हैं; इसलिये इस विषयमें मुझे यह संशय उत्पन्न हुआ है, कि 'मृत' यह नाम कहांसे उत्पन्न हुआ है; हे देव तुल्य पितामह! स्थूल शरीर वा सूक्ष्म शरीर अथवा आत्मा, इन कई एकके बीच किसकी मृत्यु होती है। किस पुरुषसे उत्पन्न होकर मृत्यु किस लिये सब प्रजासमूहको हरण करती है। आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे तात! पहिले समय सतयुगमें अनुकम्पक नाम एक राजा था, वह युद्धमें वाहनरहित होकर शत्रुओंके वशमें होगया। बल बिक्रममें नारायणके समान उसके हरि-नाम एक पुत्र था, वह युद्धमें शत्रुओंके जरिये सेनाके सहित मारा गया। शत्रुओंके वशीभूत और पुत्र शोकसे युक्त राजा अनुकम्पकने दैव संयोगसे शान्तिपरायण होकर एक बार पृथ्वी-

मण्डलपर महर्षि नारदका दर्शन किया। उस राजाने पुत्रका मरना और शत्रुओंके जरिये जिस प्रकार बन्धन प्राप्त हुआ था, वह सब उनके निकट निवेदन किया। अनन्तर तपोधन नारदमुनि उनका वह सब बचन सुनके उस समय पुत्र शोकको दूर करनेवाला यह लम्बायमान अख्यान कहने लगे।

नारदमुनि बोले, हे पृथ्वीनाथ महाराज! यह बहुत बड़ा उपाख्यान जिस प्रकार कहा गया था, और मैंने जैसे सुना है, उसे इस समय तुम सुनो। महातेजस्वी पितामहने प्रजा उत्पन्न करनेके समय बहुतसी प्रजाकी सृष्टि की; उस समय वे सब प्रजा अत्यन्त बुद्धिमान हुई परन्तु कोई पुरुष मृत्युके वशीभूत न हुए। उस समय कोई स्थान भी प्राणियोंसे सूना नहीं था, मानो तीनों लोक प्रजासमूहसे भर गया था; इसलिये प्रजापतिके अन्तःकरणमें संहारकी चिन्ता उत्पन्न हुई उन्होंने चिन्ता करते ही संहार विषयमें हेतुयुक्त कारण पाया। हे महाराज! क्रोध वशसे उनके इन्द्रिय छिद्रोंसे अग्नि उत्पन्न हुई। हे राजन्! पितामह उस ही अग्निके जरिये सब दिशाओंको जलानेमें प्रवृत्त हुए। हे महाराज! अनन्तर ब्रह्माके कोपसे उत्पन्न हुई अग्नि द्यूलोक, भूलोक और आकाशमण्डलमें स्थित ग्रह, नक्षत्र तथा स्थावर जङ्गमके सहित समस्त जगत्को जलाने लगी। पितामहके महाक्रोधके वेगसे कुपित होनेपर उनकी क्रोधाग्निसे स्थावर जङ्गम सब जीव जलने लगे। तब पिंगल वर्ण जटासे युक्त वेदपति और यज्ञपति परवीरहन्ता महादेव पितामहके निकट उपस्थित हुए, जब भगवान् महादेव प्रजासमूहकेहितकी इच्छासे पितामहके निकट उपस्थित हुए उस समय मानो ब्रह्मा तेजसे प्रज्वलित होकर महादेवसे बोले, हे शम्भु! आज मैं तुम्हें वर ग्रहण करनेके योग्य समझता हूं; इसलिये तुम्हारी कौनसी अभिलाषा पूरी करूं; तुम्हारे हृदयमें जो प्रिय विषय विद्यमान है, आज मैं उसे पूर्ण करूंगा।

२५५ अध्याय समाप्त।

महादेव बोले, हे प्रभु पितामह! प्रजा सृष्टिके लिये ही मेरी यह प्रार्थना समझिये; आपने समस्त प्रजाकी सृष्टिकी है; इसलिये इनके ऊपर कोप न करिये। हे देव जगत्प्रभु! आपके तेजरूपी अग्निसे सारी प्रजा सब भांतिसे जली जाती है, उसे देखके मुझे करुणा हुई है, इसलिये आप इन लोगोंके ऊपर क्रोध न करिये।

ब्रह्मा बोले, मैंने क्रोध नहीं किया है और सब प्रजा न रहे,—यह भी मेरी इच्छा नहीं है केवल पृथ्वीके भारको हलका करनेके ही लिये इनके संहारकी इच्छा करता हूं। हे महादेव! इस भारसे दुःखित वसुन्धराने बहुतसे बोझेके कारण जलमें डूबती हुई सदा संहारके लिये मुझे उत्तेजित किया है, मैंने इन वृद्धिको प्राप्त हुई प्रजासमूहके संहारके विषयमें जब बुद्धिसे बहुत विचार करके भी कोई उपाय न देख सका तब मेरे शरीरसे क्रोध उत्पन्न हुआ।

महादेव बोले, हे विबुधेश्वर! आप प्रसन्न होइये, प्रजाके संहारके निमित्त क्रोध न करिये स्थावर, जंगम जीव विनष्ट न होवें, समस्त पल्वल तथा वल्वज, तृण वा स्थावर जङ्गम आदि चार प्रकारके उत्पन्न हुए जीव, ये सभी भस्म प्राय हुए हैं इससे सब जगत् उपप्लुत हुआ है। हे साधु! हे भगवन्! इसलिये आप प्रसन्न होइये, मैंने यही वर मांगा, ये सब प्रजा जो कि नष्ट हुई हैं, वे किसी प्रकार फिर आगमन न करेंगी, इससे निज तेजके जरिये ही इस तेजकी निवृत्ति होवे। हे पितामह! ये सब जन्तु जिसमें भस्म न हो जावें, आप जीवोंकी हितकामनासे वैसा दूसरा उपाय अवलोकन करिये, हे लोकनाथेश्वर! आपने मुझे अहङ्काराधिष्ठात्लमें नियुक्त किया है; इससे प्रजासमूहका

प्रजननके उच्छेद निबन्धनसे जिसमें अभाव न हो, आप वैसेही किसी उपायका विधान करिये। हे नाथ! यह स्थावर जङ्गम जगत् आपसेही उत्पन्न हुआ है। हे देवोंके देव! इसलिये मैं आपको प्रसन्न करके यह प्रार्थना करता हूं, कि सब जीव मरनेके अनन्तर बार बार जन्म ग्रहण किया करें।

नारदमुनि बोले, नियत वाक्य और सयत-चित्त देव प्रजापतिने महादेवके उक्त वचनको सुनकर अन्तरात्मामें उस तेजको समेट लिया। अनन्तर सर्व्वलोक पूजित भगवान् प्रभु पितामहने अग्निकी उपसंहार करके जीवोंके जन्म और मरणकी व्यवस्था कर दी। महानुभाव प्रजापतिके क्रोधज अग्निको उपसंहार करनेके समय उनके निखिल इन्द्रिय रन्ध्रोंसे एक स्त्री उत्पन्न हुई वह नारी काले और लाल वस्त्र पहने हुए दिव्य कुण्डलोंसे युक्त दिव्य आभूषणोंसे भूषित और उसके दोनों नेत्र और करतल काले थे; वह इन्द्रिय छिद्रोंसे निकलते ही उनकी दहनी ओर बैठ गई। विश्वेश्वर ब्रह्मा और रुद्र दोनों ही उस कन्याको देखने लगे। हे महाराज! उस समय सब लोकोंके ईश्वर आदिभूत ब्रह्मा उस कन्याको मृत्यु नामसे आवाहन करके बोले, तुम इन सब प्रजाको संहार करो। हे कामिनी! तुम शीघ्र प्रजाको संहार करनेमें प्रवृत्त होजाओ मेरे नियोगके अनुसार तुम्हारा परम कल्याण होगा। जब कमलमालिनी मृत्युदेवीसे प्रजापतिने ऐसा कहा, तब वह कन्या अत्यन्त दुःखित होकर आंसू बहाती हुई चिन्ता करने लगी। मृत्युके आंसू गिरनेसे इकबारगी सब भूतोंका नाश न होजाय, इस ही आशङ्कासे प्रजापतिने अपने दोनों हाथकी अञ्जलीमें उसके आंसुओंको ग्रहण किया और मनुष्योंके हितके लिये फिर उसके निकट प्रार्थना की।

२५६ अध्याय समाप्त।

नारदमुनि बोले, वह विशाल नैनी अबला स्वयं ही दुःख दूर करके उस समय आवर्ज्जित लताकी भांति हाथ जोड़के बोली, हे वक्तृवर! आपने मेरे समान स्त्री क्यों उत्पन्न की; मेरे समान अबलाके जरिये भयङ्कर रौद्रकर्म्म किस प्रकार साधित होवेगा मैं अधर्म्मसे अत्यन्त डरती हूं; इसलिये आप मेरे विषयमें धर्म्मविहित कर्म्म करनेकी आज्ञा करिये; आप मुझे भयार्त्त देख रहे हैं; इससे कल्याणकारी नेत्रसे अवलोकन करिये। हे प्रजेश्वर! मैं निरपराधिनी बाला हूं, बूढ़े वा युवा प्राणियोंको हरण न कर सकूंगी, मैं आपको नमस्कार करती हूं, आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये। जिसके प्रिय पुत्र, सखा, भाई, माता और पिता आदिको मैं हरण करूंगी वह यदि मुझे शाप देवें,—उस ही निमित्त मैं अत्यन्त भयभीत हुई हूं; दुःखित प्राणियोंको आंखोंके आंसू मुझे सदा जलावेंगे इसलिये मैं वैसे प्राणियोंसे अत्यन्त भयभीत होकर आपको शरणागत हुई हूं। हे देव! पाप कर्म्म करनेवाले मनुष्य ही यम लोकमें गमन करें; हे बरदायक! इससे आप मुझपर कृपा करिये। हे लोकपितामह महेश्वर! मैं आपके निकट यही प्रार्थना करती हूं, कि आपकी प्रसन्नताके लिये मुझे तपस्या करनेकी इच्छा है, आप इस विषयमें आज्ञा करिये।

ब्रह्मा बोले, हे मृत्यु! मैंने प्रजा संहार करनेके लिये तुम्हें उत्पन्न किया है, इससे जाके सब प्रजाको संहार करो, इस विषयमें और बितर्क मत करो; मैंने जैसा सङ्कल्प किया है, वह अवश्य वैसा ही होगा, उसमें कभी उलट फेर न होगा। हे पापरहित अनिन्दिते! मैंने जो बचन कहा है, उसे प्रतिपालन करो। हे पराये देशको जीतनेवाले महाबाहु महाराज! मृत्यु प्रजापतिका ऐसा बचन सुनके कुछ भी न बोली, केवल नम्रभावसे भगवानके निकट सिर झुकाकर स्थिति करने लगी; बार बार कह-

नेपर भी जब वह भामिनी चेतरहितकी भांति चुपी साध गई; तब देवेश्वर ब्रह्मा आपसे आप ही प्रसन्न हुए और उन लोकनाथने विस्मित होकर सब लोकोंको देखा। अनन्तर उन पराजयरहित भगवान्‌का क्रोध निवृत्त होनेपर वह कन्या उनके निकटसे चली गई—ऐसा हमने सुना है। हे राजेन्द्र! मृत्यु उस समय वहांसे गमन करके प्रजा संहार विषयको अनंगीकार करती हुई शीघ्रताके सहित धेनुक तीर्थमें गई, वह देवी धेनुक तीर्थमें परम दुष्कर तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुई। वह पन्द्रह पद्म-वर्ष परिमाणसे एक चरणसे खड़ी होके स्थिति करने लगी। जब मृत्यु उस स्थानमें इस प्रकार दुष्कर तपस्या कर रही थी, उस समय महातेजस्वी ब्रह्मा फिर उससे यह बचन बोले, हे मृत्यु! मेरा बचन प्रतिपालन करो। मृत्यु उनके बचनका अनादर करके शीघ्रता-पूर्व्वक फिर सातपद्म वर्ष परिमाण एक चरणसे खड़ी रही। हे मानद! इसी प्रकार पर्य्याय क्रमसे उसने तेरह पद्म वर्ष व्यतीत किया। शेषमें वह फिर अयुतपद्म वर्ष पर्य्यन्त मृगसमूहोंके सहित घूमती रही। हे महाबुद्धिमान् महाराज! मृत्यु बीसहजार वर्ष तक वायु पीके रही थी। हे राजन्! अनन्तर उसने अत्यन्त कठोर मौनव्रत अवलम्बन किया, सातहजार एक वर्षतक जलमें निवास किया। हे नृपसत्तम! अनन्तर उस कन्याने गण्डकी नदीमें गमन किया, वहां वायु और जल पीके फिर नियमाचरण करने लगी, अन्तमें वह महाभागा गङ्गा-नदी और सुमेरु पर्व्वतपर गई। वहां प्रजासमूहको हितकामनाके लिये स्थाणुकी भांति केवल निश्चेष्ट होरही। हे राजेन्द्र! अनन्तर हिमालयकी शिखरपर जहां कि देवताओंने यज्ञ किया था; वहांपर वह निखर्व्व वर्ष पर्य्यन्त अंगूठेके बल स्थित रही और परम यत्नसे प्रजापतिको प्रसन्न किया। उस समय सब लोकोंकी सृष्टि और प्रलयके कारण प्रजापति उससे बोले, हे पुत्री! यह क्या होरहा है? मेरा पहला बचन प्रतिपालन करो।

पितामहका बचन सुनके मृत्युने उन भगवान्‌से फिर कहा, हे देव! मैं प्रजासमूहका संहार न करूंगी, मैं फिर आपको प्रसन्न करती हूं। देवोंके देव पितामहने उस कन्याको अधर्म्मके भयसे डरी हुई तथा फिर प्रार्थना करती हुई देख निज वाक्यका निग्रह करके यह बचन बोले, हे शुभे! तुम इन सब प्रजाको संयत करो, इससे तुम्हें अधर्म्म न होगा। हे कल्याणि! मैंने जो कुछ कहा है, वह मिथ्या न होगा; सनातन धर्म्म इस समय तुम्हें अवलम्बन करेगा; मैं तथा दूसरे देवता लोग सब कोई तुम्हारे हितमें रत रहेंगे। तुम्हारी यह अभिलाषा तथा और जो कुछ तुम्हारे मनमें अभिलषित विषय है; उसे प्रदान करता हूं; व्याधिसे पीड़ित प्रजा तुम्हें दोषी न करेंगी। तुम प्रति पुरुषमें निज स्वरूपसे पुरुषत्वकी प्राप्त होगी; स्त्रियोंमें स्त्रीरूपी होगी और नपुंसकोंमें नपुंसकत्व लाभ करोगी।

हे महाराज! मृत्यु प्रजापतिका ऐसा बचन सुनके फिर उस अव्यय महात्मा देवेश्वरके समीप हाथ जोड़के प्रजासंहारके विषयमें अनङ्गीकार बचन ही कहने लगी। देव पितामह उस समय उससे बोले, हे मृत्यु! तुम मनुष्योंको संहार करो। हे शुभे! जिसमें तुम्हें अधर्म्म न हो, मैं उसही उपायको सोचूंगा। हे मृत्यु! तुम्हारे जिन सब आंसुओंकी बूंदोंको गिरती हुई देखके मैंने तुम्हारे सम्मुखमें हो अञ्जली धारण की थी, वेही भयङ्कर व्याधि होकर समय उपस्थित होनेपर मनुष्योंको तुम्हारे वशीभूत करेंगी। तुम सब प्राणियोंके अन्तकालमें इकबारगी मरणके निदान काम और क्रोधको प्रेरणा करोगी; ऐसा होनेसे नित्य धर्म्म तुम्हें अवलम्बन करेगा अर्थात् काम क्रोधको प्रकट कर उसहीके जरिये जीवोंका संहार करके तुम

राग द्वेषसे रहित होनेके कारण अधर्म्मभाजन न होगो। तुम इस ही प्रकार धर्म्म पालन करोगो, किसी भांति आत्माको अधर्म्ममें निमग्न न करोगो; इसलिये तुम इच्छानुसार निज अधिकारको अभिलाष करो और कामको प्रकट करके अब जीवोंकेसंहार करनेमें प्रवृत्त होजाओ।

मृत्यु नामी कामिनीने उस समय शापभयसे डरके ब्रह्मासे बोली, "वैसाही करूंगी"। अनन्तर वह प्राणियोंके अन्तकालमें काम क्रोधको प्रेरणा कर और सबको मोहित करके प्राणियोंका नाश किया करती है। पहले मृत्युके जो सब आंसू गिरे थे वेही व्याधि स्वरूप हुए हैं, उन्हीं व्याधियोंके जरिये मनुष्योंका शरीर रोगयुक्त हुआ करता है, इससे प्राणियोंके जीवन नष्ट होनेपर शोक करना उचित नहीं है इसलिये तुम शोक मत करो, बिचारके जरिये यथार्थ विषय मालूम करो। हे राजन्! जैसे इन्द्रियां सुषुप्ति अवस्थामें सत्वस्तुके सङ्ग लीन होके जाग्रत अवस्थामें फिर लौटती हैं, वैसेही मनुष्य लोग जीवन शेष होनेपर गमन करके इन्द्रियोंकी भांति पुनरागमन किया करते हैं। भयङ्कर शब्दके युक्त महा तेजस्वी भयानक वायु सब प्राणियोंका प्राणभूत है, वह वायु देहधारियोंके देहभेदसे नाना वृत्ति अर्थात् अनेक शरीरगत हुआ करता है; इसलिये वायुही सब इन्द्रियोंसे श्रेष्ठ है। देवता लोग पुण्य-क्षीण होनेसे मनुष्य होते और मनुष्य पुण्यात्मा होनेसे देवत्व लाभ करते हैं। हे राजन्! इसलिये पुत्रके निमित्त शोक मत करो, तुम्हारा पुत्र स्वर्गलाभ करके आनन्दित होरहा है। इसही प्रकार देवसृष्ट मृत्यु समय उपस्थित होनेपर प्रजाको संहार करती है, उसके वेही सब आंसू व्याधि होकर समयके अनुसार जीवोंको हरण किया करते हैं।

२५७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! ये सब मनुष्य आर्य्य, जैन, म्लेच्छ आदि शास्त्रीय धर्म्मके नानात्व निबन्धनसे उस विषयमें सन्देहयुक्त होते हैं; इससे धर्म्मका स्वरूप और लक्षण क्या है। यथा कहांसे धर्म्मकी उत्पत्ति हुआ करती है, आप मेरे समीप उसे वर्णन करिये; और धर्म्म इसलोकके लिये, वा परलोकके लिये अथवा दोनों लोकोंके निमित्त है, यह भी आप मुझसे विशेष रीतिसे कहिये।

भीष्म बोले, वेद, स्मृति और सदाचार ये तीन प्रकार धर्म्मके लक्षण हैं, और प्रयोजनको भी पण्डित लोग चतुर्थ लक्षण कहा करते हैं। महर्षि लोग धर्म्मके निमित्त हितकर कर्म्मोंको न्यूनाधिक भावसे निश्चय करते हैं, गार्हस्थ्य आश्रममें भी मोक्ष होतो है, आलसी लोग सन्न्यास अवलम्बन करते हैं, त्याग करनेसे ही मुक्ति हुआ करती है; बिषय लम्पट मनुष्य गार्हस्थाश्रमको अभिलाष करते हैं इस ही प्रकार बिषयभेदसे लोकयात्रा निवाहनेके लिये धर्म्मका नियम निर्णीत हुआ है। इस लोक और परलोक दोनों और धर्म्मके फल दीख पड़ते हैं। पापी मनुष्य निपुण भावसे धर्म्म प्राप्तिमें असमर्थ होकर पापयुक्त होता है। कोई कोई ऐसा कहा करते हैं, कि पाप करनेवाले पुरुष आपद कालमें भी पापोंसे नहीं छूटते। धर्म्मवित् पुरुष पापवादी होनेपर भी अपापवादी हुआ करते हैं, आचार ही धर्म्मको निष्ठा है; इसलिये तुम उस आचारको अवलम्बन करनेसे ही धर्म्मको जान सकोगे। धर्म्म समाविष्ठ तस्कर जब परधनको हरता है, अथवा अराजक समयमें पराये चित्तको अपना कर लेता है, उस समय वह परम सुखी होता है; परन्तु जब तस्करके धनको दूसरे लोग हर लेते हैं, तब वह राजद्वारमें उपस्थित होता है, तब जो लोग निज धनसे सन्तुष्ट हैं, वह उनकी स्पृहा किया करता है; वह निर्भय, पवित्र

और अशंकित होकर राजद्वारमें प्रवेश करता है। अन्तरात्मामें कुछ भी दुश्चरित्र नहीं देखता। सत्य कहना ही उत्तम है, सत्यसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है, सत्यसे सारा संसार विधृत हुआ करता है, समस्त जगत् सत्यसे ही प्रतिष्ठित है। रौद्र कर्म्म करनेवाले पापाचारी मनुष्य भी पृथक् पृथक् शपथ करके सत्यके आश्रयसे अद्रोह और अविसम्वादमें स्थित रहते हैं, वे लोग यदि परस्परको प्रतिज्ञा भङ्ग करें, तो निश्चयही विनष्ट होवें, परधन हरना उचित नहीं,—यह सनातन धर्म्म है। बलवान् पुरुष पूर्व्वोक्त धर्म्मको निर्ब्बलोंके जरिये प्रवर्त्तित समझते हैं, जिस समय बलवानोंको देवकी प्रतिकूलतासे निर्ब्बलता प्राप्त होती है, तब उन लोगोंकी भी धर्म्ममें रुचि हुआ करती है। अत्यन्त बलवान् पुरुष भी सुखी नहीं होते, इसलिये अनार्ज्जव अर्थात् कुटिल कार्य्योंमें बुद्धि लगानी तुम्हें उचित नहीं है। सत्यवादी पुरुष असाधु, तस्कर और राजासे भयभीत नहीं होता, वह किसी पुरुषका कुछ अनिष्ट नहीं करता; इसहीसे निर्भय और पवित्र हृदयसे निवास किया करता है। गांवमें आये हुए हरिनकी भांति तस्कर सब लोगोंके समीप शङ्कित होता है, जैसे वह स्वयं बहुतसा पाप कार्य्य करता है, दूसरेको भी वैसाही दीखता है। जो शठ होता है, वह दूसरेको भी शठ समझता है; और शुद्ध हृदय तथा सदाशयवाले पुरुष सदा आनन्दित और निर्भय होकर सब ठौर विचरते हैं, अपने दुश्चरितके विषय आत्मासे पृथक् नहीं देखते। सब भूतोंके हितमें रत महर्षियोंने "दान करना चाहिये,"—इसेही धर्म्म कहा है; धनवान् मनुष्य उसही धर्म्मको निर्द्धनोंसे प्रवर्त्तित समझता है, दैववशसे जब वह भी दीनदशासे युक्त होजाता है, उस समयमें उसे भी उस ही धर्म्ममें रुचि उत्पन्न होती है; इसलिये अत्यन्त धनवान पुरुष भी कदाचित सुखी नहीं होते। जब मनुष्य दूसरेके किये हुए कर्म्मको आत्मकृत कर्म्म कहनेकी अभिलाषा नहीं करता, तब वह जिस कर्म्मको अपना प्रिय समझता है, दूसरेके लिये उसे कभी न करेगा।

जो पुरुष पराई स्त्रीका उपपति होता है; वह स्वयं दोषी है, इसलिये वह दूसरेको क्या कह सकेगा। वह यदि दूसरे पुरुषको उक्त कार्य्य करते हुए देखे तो मुझे बोध होता है, उसे कुछ न कह सकनेसे क्षमा किया करेगा। जो पुरुष स्वयं जीवित रहनेकी इच्छा करता है, वह किस प्रकार दूसरेका बधकर सकेगा; इसलिये अपने लिये जैसी अभिलाष करे, दूसरेके वास्ते भी वैसी ही इच्छा करनी उचित है। स्वीकार आवश्यकके अतिरिक्त भोग-साधन धन आदिके जरिये दीनजनोंका भरण-पोषण करे, इस ही निमित्त विधाताने कुसीद अर्थात् वृद्धिके निमित्त धन-प्रयोग प्रवर्त्तित किया है; दीन-दरिद्रोंके पालने पोषनेके लिये ही धनकी वृद्धि करनी चाहिये, नहीं तो केवल धनकी वृद्धि हो, यह उद्देश्य अत्यन्त निकृष्ट है। जिस सत्मार्गमें निवास करनेसे देवता लोग भी सम्मुखवर्त्ती हुआ करते हैं, वैसे सत्मार्गमें सदा बिचरता रहे, अर्थात् सदा दम, दान और दयायुक्त होवे, अथवा लाभके समय यज्ञ, दान आदि धर्म्ममें अनुरक्त होना उत्तम कार्य्य है। हे युधिष्ठिर! प्रिय वाक्यसे जो कुछ प्राप्त होता है, मनीषी लोग उसेही धर्म्म कहा करते हैं, जो अपनेको प्रिय है, दूसरेके विषयमें वैसा ही करना चाहिये; जो अपनेको प्रिय नहीं है, दूसरेके सम्बन्धमें वैसा करना योग्य नहीं है। यह जो मैंने धर्म्म अधर्म्मका लक्षण वर्णन किया है, तुम उसकी आलोचना करो। पहले समयमें विधाताने साधुओंके दया प्रधान सत् चरित्रको ही सूक्ष्म धर्म्म लाभकी विधि निमित्तरूपसे विधान की थी। हे कुरु सत्तम! यही तुम्हारे निकट धर्म्मका लक्षण वर्णन किया

गया,— इसे सुनकर तुम किसी प्रकार अनात्मीय कार्य्योंमें बुद्धि-निवेश न करना।

२५८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! वेदैकगम्य, साधु समुद्दिष्ट धर्म्मका लक्षण अत्यन्त सूक्ष्म है, हमारी कोई प्रतिभा है, उसहीको अवलम्बन करके अनुमानके जरिये मैं यह सब प्रश्न करता हूं; मेरे हृदयमें बहुतसे प्रश्न थे, उनमेंसे आपने अधिकांशके उत्तर दिये हैं, अब दूसरी प्रकारका एक प्रश्न करता हूं, उस विषयमें कुतर्क करनेका मुझे आग्रह नहीं है, पूंछना ही मुख्य प्रयोजन है। हे भारत! यह प्रसिद्ध ही है, कि ये समस्त शरीरयुक्त प्राणी स्वयं ही जीवन लाभ करते हैं, स्वयं ही उत्पन्न होते हैं और स्वयं ही उत्तीर्ण अर्थात् देहाकारसे च्युत होते हैं; ऐसी जन-श्रुति है, कि अन्नसे ये सब जीव जन्म ग्रहण करते हैं, जन्म ग्रहण करके अन्नसे ही जीवित रहते हैं, और अन्त समय अन्नमें जाके प्रवेश किया करते हैं; आपने कहा है दूसरोंके सुख दुःख उत्पादनसे जो धर्म्माधर्म्म उत्पन्न होता है वह कालान्तरमें अपना सुख दुःखप्रद हुआ करता है; इसलिये केवल वेदाध्ययनसे ही धर्म्मका निश्चय नहीं किया जा सकता; क्यों कि व्यवस्थाके अभाव निबन्धनसे वैदिक धर्म्म अत्यन्त दुर्ज्ञेय है। सब पुरुषोंके धर्म्म स्वतन्त्र हैं और विषमस्थ लोगोंका स्वतन्त्र धर्म्म है; आपदका अन्त नहीं है; इसलिये धर्म्मको भी अनन्त कहना होगा। अनन्त होनेसे ही धर्म्म दुर्ज्ञेय हुआ; इसलिये अव्यवस्थित वैदिक धर्म्मका धर्म्मत्व किस प्रकार सिद्ध हो सकेगा। और सदाचारको आपने धर्म्म कहा है, परन्तु धर्म्माचरणसे ही लोगोंमें सत् हुआ करता है; इसलिये लक्ष्य और लक्षणके अन्यन्याश्रय दोष-सम्पर्कसे सदाचारको धर्म्मलक्षण रूपसे किस प्रकार स्वीकार किया जावे; यह दीख पड़ता है, कि कोई प्राकृत पुरुष धर्म्मरूपसे अधर्म्म करता है और कोई असाधारण मनुष्य अधर्म्म-रूपसे धर्म्माचरण करता है। शूद्र जातिको वेद सुनना शास्त्रमें मना होनेपर भी प्राकृत शूद्र धर्म्मबुद्धिके कारण मुमुक्षु होकर वेदान्त सुना करते हैं और अगस्त्य आदि असाधारण महर्षियोंने बहुतसे हिंसायुक्त अधर्म्माचरण किये हैं, इसलिये भ्रष्ट लोगोंमें शिष्ट लक्षण दीख पड़नेसे सदाचारका भी निर्णय करना अत्यन्त दुःसाध्य है; परन्तु धर्म्म जाननेवाले पुरुषोंने धर्म्मके यही प्रमाण निर्देश किये हैं। मैंने सुना है युग युगमें वेदोंकी घटती हुई जाती है, इसलिये कालभेदसे जब कि वेदमें भी अन्यथा देखी जाती है, तब वह अनवस्थित वेदवाक्य भी अश्रद्धेय होसकता है। सतयुगका धर्म्म स्वतन्त्र है; त्रेता, द्वापरके स्वतन्त्र धर्म्म हैं और कलियुगका धर्म्म उनसे पृथक् है, मानो यह शक्तिके अनुसार विहित हुआ है। "वेदके सब बचन सत्य हैं,"—यह केवल लोकरञ्जन मात्र है, और वेदसे निकली हुई स्मृतियें सर्व्व-मुख हुई हैं; इसलिये किस प्रकार स्मृतिवाक्य प्रमाण किया जा सकता है। सबका प्रमाण वेदवाक्य सारी स्मृतियोंके प्रमाणको सिद्ध करता है, यदि यह अङ्गीकार किया जावे, तो वेदवाक्यका निरपेक्षत्व निबन्धन प्रमाण स्वीकार करना होगा और सब स्मृतियें श्रुति-संक्षेप कहके अप्रमाण रूपसे परिगणित हुआ करती हैं; परन्तु अप्रमाणरूपी स्मृतिके सङ्ग जब श्रुतिका बिरोध दीख पड़ता है, तब मूलभूत वेदवाक्यका भी अप्रमाणत्व-निबन्धन एक पक्ष-पातिनी युक्तिके बिना प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष श्रुति तथा स्मृति दोनोंके ही अप्रमाणके कारण शास्त्रत्व सिद्धि किस प्रकार हो सकती है।

बलवान् दुरात्मा पुरुषोंके जरिये क्रियमाण धर्म्मका जो जो स्वरूप विकृत होता है, वही

प्रनष्ट होजाता है। हम स्वयं इस धर्म्मको जानें वा न जानें अथवा जानने सकें, वा न जान सकें; तो भी धर्म्म क्षुरधारसे भी सूक्ष्म और पहाड़से भी गुरुतर है। पहले धर्म्म गन्धर्व्वनगरकी भांति अद्भुतरूपसे दीख पड़ता है, अर्थात् धर्म्मकाण्डमें कहा है, कि "चातुर्म्मास-याजीको अक्षय सुकृत होता है। हम सोमपान करेंगे, अमर होंगे"—इत्यादि श्रुतिका गन्धर्व्व नगरके समान अद्भुतत्व दीख पड़ता है। अनन्तर कवियोंके जरिये उपनिषत्‌के बीच वक्ष्यमाण कर्म्म फिर अदृश्यताको प्राप्त होता है, अर्थात् कार्य्यमात्र ही अनित्य हैं; कर्म्मसे जो लोक जय किया जाता है, उसका भी नाश होता है इत्यादि उपनिषत् वाक्यसे धर्म्म अत्यन्त तुच्छ बोध होता है।

हे भारत! जैसे पशुओंके पीने योग्य क्षुद्र तालाबके जलको खेतमें सींचने पर सारा तालाब सूख जाता है, वैसेही शाश्वत धर्म्म अङ्गहीन होकर कलियुगके शेषमें अदृश्य होगा। इस ही प्रकार भविष्य विषयणी स्मृति है, कि निज इच्छा वा पराई इच्छा तथा दूसरे किसी कारणसे बहुतेरे असत् पुरुष वृथा आचार किया करते हैं, साधुओंके आचरित कर्म्मही धर्म्म रूपसे मालूम होते हैं परन्तु मूढ़ दृष्टिसे देखनेसे वही धर्म्म साधुओंमें प्रलापमात्र मालूम हुआ करता है। मूढ़ लोग साधुओंको उन्मत्त कहा करते हैं, और उनकी हंसी करते हैं। द्रोणाचार्य्य आदि महाजनोंने ब्राह्मणोंके कर्त्तव्य कार्य्यका अनादर करके क्षत्रियधर्म्म अवलम्बन किया था; इसलिये सर्व्व हितकर कोई व्यवहार प्रवर्त्तित नहीं होता। इसके अतिरिक्त आचारके जरिये निकृष्ट जाति भी उत्कृष्ट होती है, और उत्तम वर्ण भी निकृष्ट हुआ करते हैं। कभी कोई पुरुष दैवइच्छासे आचारके जरिये समान रूपसे ही रहते हैं, विश्वामित्र, जमदग्नि और वसिष्ठ आदि इस विषयमें विस्पष्ट दृष्टान्त स्थल हैं जिस आचारके जरिये एक पुरुष उन्नत होता है, वही आचार दूसरेको अवनत करता है, इसकी पर्य्यालोचना करनेसे सब आचारोंमें ही अनैक्यता अर्थात् व्यभिचारित्व मालूम हुआ करता है। प्राचीन पण्डित लोग सदासे जिस धर्म्मको स्वीकार करते चले आते हैं, आपने वह विषय ही वर्णन किया; इसलिये उस प्राचीन आचारके जरिये शाश्वती मर्य्यादा स्थापित हुआ करती है, परन्तु मुझे ऐसा मालूम होता है, कि अनादि अविद्या प्रवृत्त स्वभावसे ही सुख-दुःख कार्य्याकार्य्यकी व्यवस्था हुआ करती है। वेद प्रमाणक धर्म्मके जरिये सुख दुःख आदि कार्य्याकार्य्यकी व्यवस्था नहीं होती।

२५९ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, धर्म्म विषयमें जाजलीके सङ्ग तुलाधारकी जो सब वार्त्ता हुई थी, इस विषयमें प्राचीन लोग उस ही पुराने इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। जाजली नाम कोई वनचारी ब्राह्मण जङ्गलमें वास करते थे, उस महातपस्वीने समुद्रके किनारे बहुत तपस्या की थी। वह धीमान् मुनि संयत और नियताहारी होकर अनेक वर्ष पर्य्यन्त चीर, मृगछाला और जटा धारण करके मलिन हुए थे। हे राजन्! किसी समय वह महातेजस्वी विप्रर्षि समुद्रके जलमें वास करते हुए सब लोकोंको देखनेके लिये उत्सुक होकर मनकी भांति वेष धारण करके विचरने लगे। अनन्तर उन्होंने वन सहित समुद्र पर्य्यन्त पृथ्वीको देखकर फिर चिन्ता की, कि स्थावर जङ्गमयुक्त संसारके बीच मेरे समान वा मेरे सहित जलके बीच तथा आकाशमण्डलके नक्षत्रादि लोकोंमें गमन कर सके, ऐसा कोई भी नहीं है। वह जब जलके बीच राक्षसोंसे अदृश्यमान रहके ऐसा कह रहे थे, तब पिशाचोंने उनसे कहा, हे द्विजसत्तम!

तुम्हें ऐसा कहना उचित नहीं है, वाराणसी (काशी) में तुलाधार नाम वणिक् व्यवसायी एक महायशस्वी मनुष्य है, तुम जैसा कहते हो, वह भी वैसा वचन नहीं कह सकता। महातपस्वी जाजलीने पिशाचोंका ऐसा वचन सुनके उन्हें उत्तर दिया, कि बहुत अच्छा, मैं बुद्धिमान यशस्वी तुलाधारका दर्शन करूंगा। ऋषि जब ऐसा वचन बोले, तब पिशाचोंने उन्हें समुद्रसे उठाकर कहा, हे द्विजवर! तुम इस ही मार्गको अवलम्बन करके गमन करो। जाजली मुनि भूतोंका ऐसा वचन सुनकर मलिन-मन होकर काशीमें तुलाधारके समीप वक्ष्यमाण वचन कहने लगे।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! जाजली मुनिने पहिले कौनसा दुष्कर कर्म्म किया था, जिससे कि उन्होंने परम सिद्धि पाई; आप मेरे समीप उसेही वर्णन करिये।

भीष्म बोले, महातपस्वी जाजली मुनि घोर तपस्यायुक्त हुए थे, वह सन्ध्या और सबेरेके समय स्नान और आचमनमें रत रहते थे। वह स्वाध्यायमें रत द्विजश्रेष्ठ यथानियमसे अग्निको परिचर्य्या करते थे, वाणप्रस्थ विधान जानके वेदविद्यासे प्रदीप्त हुए थे, वह वर्षाकालमें आकाशशायी और हेमन्तमें जल संश्रयी होकर तपस्या करते थे; परन्तु यह न जानते थे, कि मैं धर्म्मवान् हूं। ग्रीष्मकालमें वायु और घाम सहते थे, तौभी अपनेको धार्म्मिक समझके अभिमान नहीं करते थे। वह भूमिपर अनेक दुःखकरी शय्यापर शयन करते थे।

अनन्तर किसी प्रावृट्कालमें उस मुनिने आकाशको अवलम्बन करके अन्तरीक्षसे बार बार गिरते हुए जलको शिरपर धारण किया था। उससे उनकी सब जटा छिन्न और ग्रथित हुई थी। वह सदा वनमें घूमनेसे मलिन और मलयुक्त हुए थे। उस महातपस्वीने कभी कभी निराहारी और वायुभक्षी होकर काठकी भांति अव्यग्र भावसे निवास किया था, किसी प्रकार विचलित नहीं हुए थे। हे भारत! उसही शाखारहित वृक्षकी भांति चेष्टाहीन मुनिके शिरपर चटकपक्षी-दम्पतीने घोसला बनाया; जब पक्षी-दम्पती तृणोंसे घोसला बना रही थी, तब उन दयावान् महर्षिने उसे निवारण न किया। वह स्थाणुस्वरूप महातपस्वी जब किसी प्रकार विचलित न हुए, तब वह विहंग-दम्पती विश्वस्त होकर सहजमें ही उन महर्षिके शिर पर वास करने लगी। वर्षाकालके बीतने और शरत्काल उपस्थित होनेपर काम मोहित पक्षी मिथुन प्राकृतिक धर्म्मके अनुसार विश्वासके वशमें होकर उस मुनिके शिरपर अण्डा प्रसव किया। उस संशितव्रती तेजस्वी विप्रने उसे जाना और जानके भी वह महातेजस्वी जाजली कुछ भी विचलित नहीं हुए; वह सदा धर्म्मनिष्ठ रहनेके कारण कभी अधर्म्ममें अभिलाष नहीं करते थे। अनन्तर वे दोनों पक्षी प्रतिदिन उनके शिरपर आके आश्वासित और हर्षित होकर वास करते थे कालक्रमसे अण्डोंके परिपुष्ट होने पर उनमेंसे बच्चे उत्पन्न हुए और जन्म लेकर वहां क्रमसे बढ़ने लगे; तौभी जाजली विचलित नहीं हुए। वह चेष्टा रहित, समाधिनिष्ठ, धृतव्रत, धर्म्मात्मा चटकपक्षीके बच्चोंकी रक्षा करते हुए उस ही प्रकार स्थिति करने लगे। समयके अनुसार चटकशावकोंके पङ्ख जमे, मुनिने उसे जान लिया। अनन्तर किसी समयमें बुद्धिमान् यतव्रती महर्षि उन पक्षियोंको देखकर परम प्रसन्न हुए। पक्षी-दम्पती भी अपने बच्चोंको पूरीरीतिसे बढ़ते देख हर्षित होकर निर्भयताके सहित उनके सहित मुनिके शिर पर वास करने लगी। जब पक्षी शावकोंके पङ्ख जम गये, तब वह उड़नेवाले होकर स्थानान्तरमें गमन करके फिर सन्ध्याके समय मुनिके शिरपर आके वास करते थे; विप्रवर जाजली उससे भी

बिचलित न हुए, किसी समय वे बच्चे जनक-जननीसे परित्यक्त होके भी मुनिके शिरपर आगमन करके फिर स्थानान्तरमें गमन करते थे। सदा उनके ऐसा आचरण करने पर भी जाजली निज स्थानसे बिचलित न हुए। हे राजन्! इस ही प्रकार सारा-दिन बिताकर पचीशावक सन्ध्याके समय निवासके लिये उस ही स्थानमें लौट आते थे किसी समय पचीवृन्द स्थानान्तरमें पांचदिन बिताकर छठवेंदिन जाजलीके शिर पर आके उपस्थित होते थे, इससे भी मुनि बिचलित न हुए। क्रम क्रमसे वे बच्चे बलवान् होनेसे स्थानान्तरमें कई दिन बिताके भी नहीं लौटते थे, कभी एक महीनेके लिये उड़के चले जाते थे; फिर लौट कर नहीं आते थे, परन्तु जाजली उस ही भांति निवास करतेथे। अनन्तर उन पचियोंके एक समय उड़के चले जाने पर जाजलीने बिस्मययुक्त होके समझा कि 'मैं' सिद्ध हुआ हूं। ऐसा ज्ञान होनेके अनन्तर उनके चित्तमें अभिमान उत्पन्न हुआ। व्रतनिष्ठ जाजली उन पचियोंको एकबारही निज मस्तकसे निकलते देखकर अपनेको सत्कारके योग्य समझके अत्यन्त प्रसन्न चित्त हुए। उस महा तपस्वीने नदीमें स्नान करके अग्निमें आहुति देनेके अनन्तर सूर्य्यको उदय होते देखकर उनकी उपासना की। जापकश्रेष्ठ जाजलीने शिरके बीच चटकशावकोंकी पूरीरीतिसे वर्द्धित करके "मैंने धर्म्म लाभ किया है" ऐसा बचन कहते हुए शून्य स्थलमें बाहुस्फोट करने लगे।

अनन्तर यह आकाशबाणी हुई कि, हे जाजली! तुम धर्म्म विषयमें तुलाधारके समान नहीं हुए। काशीपुरीमें तुलाधार नाम एक पुरुष बसता है। हे बिप्र! तुमने जैसा कहा वह भी वैसा बचन नहीं कह सकता। हे राजन्! जाजली मुनि उस आकाशबाणीको सुनके क्रोधबश होकर तुलाधारका दर्शन करनेके लिये सारी पृथ्वीपर घूमने लगे और जहांपर सन्ध्याका समय उपस्थित होता था, वहांपर निवास करते थे, बहुत समयके अनन्तर वह काशीपुरीमें पहुंचे, वहां पहुंचके तुलाधारको पुण्य-बस्तुओंको बेचते हुए देखा। मूलधनोपजीवी तुलाधार विप्रवर जाजलीको आते देखकर ही परम सन्तुष्ट होकर उठ खड़े हुए और स्वागत प्रश्नसे उनका सत्कार किया।

तुलाधार बोले, हे ब्रह्मन्! आप अभी आये हैं, इसे मैंने निःसन्देह जाना है। हे द्विजवर! अब मैं जो कहता हूं, उसे सुनो। आपने समुद्रके तटपर सजल स्थानमें महती तपस्या की है, पहले कभी धर्म्मका नाम भी नहीं जानते थे, अर्थात् "मैं धार्म्मिक हूं" आपको ऐसा ज्ञान नहीं था। हे बिप्र! अन्तमें जब आप तपस्यासे सिद्ध हुए, तब पचियोंके बच्चे शीघ्रही तुम्हारे शिरपर उत्पन्न हुए, आपने उनका यथायोग्य सत्कार किया। हे द्विज! जब बच्चे पङ्खवाले होकर आहारके लिये उड़के चले गये, तब आपने मनमें यह निश्चय किया, कि "चटक पचियोंका पालन करनेसे धर्म्म हुआ है।" हे द्विजसत्तम! अनन्तर मुझे उद्देश्य करके जो आकाशबाणी हुई, तुम उसे सुनके क्रोधके वशमें हुए और उसही निमित्त इस स्थानमें आये हो। हे द्विजवर! इसलिये मैं आपका कौनसा प्रियकार्य्य सिद्ध करूं, उसे ही कहिये।

२६० अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, उस समय जब बुद्धिमान् तुलाधारने जापकप्रवर जाजलीसे ऐसा बचन कहा, तब उन्होंने बच्यमाण बचनसे उसे उत्तर दिया।

जाजली बोले, हे वणिक्पुत्र! तुम समस्त रस, गन्ध, बनस्पति औषधी और फलमूलोंको बेचा करते हो, तुमने नैष्ठिकी बुद्धि कहांसे पायी और किस प्रकार तुम्हें ऐसा ज्ञान

हुआ। हे महाप्राज्ञ! तुम इस ही विषयको बिस्तारपूर्व्वक मेरे समीप वर्णन करो।

भीष्म बोले, हे राजन्! यशस्वी ब्राह्मणके ऐसा पूछनेपर धर्म्म अर्थके तत्वको जाननेवाला तुलाधार वैश्य उस समय ज्ञानतृप्त कठोर तपस्वी जाजलीसे सब सूक्ष्म धर्म्म कहने लगा।

तुलाधार बोला, हे जाजली! लोकमें सब भूतोंके हितकर जो पुराण-धर्म्मको जानते हैं, मैं रहस्यके सहित उस सनातन धर्म्मको जानता हूं; जीवोंसे द्रोह न करके अथवा आपदकालमें अल्प द्रोह आचरण करके जो जीविका निबाही जाती है, वही परम धर्म्म है। हे जाजली! मैं वैसा ही वृत्ति अवलम्बन करके जीवन व्यतीत किया करता हूं। मैंने पृथक् छिन्न तृणकाठोंसे यह गृह बनाया है। हे विप्रर्षि! अलक्त, पद्मक और तुङ्गकाष्ठ, कस्तूरी आदि विविध सुगन्धित वस्तु और नमक आदि रसकी वस्तुयें, मद्यके अतिरिक्त इन सब वस्तुओंको मैं दूसरेके हाथसे खरीदके कपटरहित होकर वचन, मन और कर्म्मके जरिये बेचा करता हूं। हे जाजली! जो सब प्राणियोंके सुहृत् तथा सब जीवोंके हितमें रत रहते हैं, वेही धर्म्म जाननेवाले हैं।

हे जाजली! मैं किसीको किसी विषयमें अनुरोध नहीं करता, किसीके सङ्ग बिरोध नहीं करता, किसीसे द्वेष नहीं करता और किसीके समीप किसी वस्तुकी इच्छा नहीं करता। मैं सब भूतोंमें समदर्शी हूं, इसलिये तुम मेरा व्रत अवलोकन करो। हे जाजली! सब भूतोंमें मेरा तुलादण्ड समान भावसे खड़ा है। हे विप्रवर! मैं आकाशमण्डलमें स्थित विविध रूपवाले बादलसमूहोंकी भांति जगत्की बिचित्रता देखकर दूसरेके किये हुए कार्य्योंकी प्रसंसा नहीं करता और निन्दा भी नहीं करता हूं। हे बुद्धिमान् जाजली! इस ही भांति तुम मुझे सब भूतों और ढेले, पत्थर तथा सुवर्णमें समदर्शी समझो। जैसे अन्धे, बहरे और उन्मत्त आदि पुरुषोंके इन्द्रियगोलक उस ही इन्द्रियाधिष्ठातृ देवताओंके जरिये आच्छादित होनेपर भी वे लोग श्वास लेते हुए जीवन धारण किया करते हैं, मैं उसे देखकर अपनेमेंही वैसी उपमा दिया करता हूं। जैसे बूढ़े, आतुर और दुर्व्वल पुरुष बिषयोंसे निस्पृह होते हैं, वैसे ही अर्थ और काम्य वस्तुके उपभोग बिषयमें मुझेभी स्पृहा नहीं है। जब यह जीव किसी प्राणीसे नहीं डरता और इससे भी दूसरे भयभीत नहीं होते; जब जीव किसी बिषयकी कामना नहीं करता और किसीसे भी द्वेष नहीं करता, तब वह ब्रह्मलाभ किया करता है। जिसका भूत भविष्य कोई धर्म्म नहीं है, जिससे किसी भूतको भय नहीं होता, वही अभयपद पाता है। मृत्युमुखके समान क्रूर बचन कहनेवाले कठोर दण्डधारी जिस पुरुषसे सब लोग व्याकुल होते हैं, उसे महत् भय प्राप्त होता है। मैं यथावत् वर्त्तमान पुत्र पौत्रोंके सहित अहिंसामय महानुभव बूढ़ोंके चरित्रका अनुवर्त्तन किया करता हूं। किसी अंशमें बिरुद्ध सदाचारसे मोहित शाश्वत वैदिक धर्म्म अनुदिष्ट हुआ है, इस ही निमित्त चाहे बिद्यावान् हों, चाहे जितेन्द्रिय ही हों, वा काम क्रोध बिजयी बलवान् हो क्यों न हों, सब पुरुष ही धर्म्म बिषयमें मोहित हुआ करते हैं। जो दान्त पुरुष द्रोहरहित अन्तःकरणसे साधुओंके सङ्ग सदाचरण करता है, हे जाजली! वह बुद्धिमान् पुरुष आचारके जरिये शीघ्र ही धर्म्मलाभ करनेमें समर्थ होता है। जैसे नदीके प्रवाहमें बहता हुआ काठ यदृच्छावशसे दूसरे काठके सङ्ग मिल जाता है और उस स्थानमें दूसरे काष्ठ परस्पर मिल जाते हैं; कभी तृण काठ करीष आदि नहीं दीख पड़ते, मनुष्योंके कर्म्मप्रवाहके जरिये पुत्र स्त्री आदि संयोग बियोग भी वैसा ही है। जिससे कोई जीव भी किसी प्रकार व्याकुल नहीं होते, हे

मुनि! वेही सब भूतोंसे सदा अभय लाभ करते हैं। हे विद्वन्! जैसे वाड़वानलसे किनारेपर रहनेवाले सब जलचर और चिल्लार करनेवाले हिंसक मेड़ियेसे बनचर जीव डरते हैं, वैसे ही जिससे सब लोक उद्वेगयुक्त हुआ करते हैं उसे महत् भय प्राप्त होता है इस ही प्रकार जीवोंको अभय दानरूपी आचार जिसमें सब तरहके उपायसे उत्पन्न हो, उस विषयमें यत्न करना उचित है। जो लोग सहायसम्पत्तिसे युक्त होते हैं, वे इस लोकमें ऐश्वर्य्यशाली और परलोकमें परम सुखी होते हैं। इस हीसे कवि लोग सब शास्त्रोंमें अभयदाता पुरुषोंको ही सबसे श्रेष्ठ कहा करते हैं। जिनके अन्तःकरणमें थोड़ा सा वाह्यसुख लेखाकी भांति प्रतिष्ठित है, वे भी कीर्त्तिके लिये अभयदान करें और निपुण मनुष्य भी परब्रह्मकी प्राप्तिके लिये अभयदानमें दीक्षित होवें। तपस्या, यज्ञ, दान और बुद्धियुक्त बचनसे इस लोकमें जो सब फल भोग हुआ करते हैं, अभयदानके सहारे वे सब फल प्राप्त होते हैं। जगत्‌में जो लोग सब प्राणियोंको अभयदक्षिणा दान करते हैं, वे सब यज्ञ-याजनके फलस्वरूप अभयदक्षिणा पाते हैं। सब प्राणियोंको अहिंसासे बढ़के श्रेष्ठ धर्म्म और कुछ भी नहीं है। हे महामुनि! जिससे कोई जीव कभी किसी प्रकार व्याकुल नहीं होते, उसे सब प्राणियोंसे अभय प्राप्त होता है; और जिससे गृहगत सर्पकी भांति सब लोग व्याकुल होते हैं, वह ऐहिक और पारलौकिक धर्म्म प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होता, जो सब प्राणियोंके आत्मभूत और समान भावसे सब जीवोंको देखते हैं, देवता लोग भी उस ब्रह्मलोक आदिके अनभिलाषी साधक पदके इच्छुक होकर उनके आचरित मार्गमें विचरण करते हुए मोहित होते हैं। हे जाजली! जीवोंको अभय दान सब दानसे उत्तम है; यह मैं तुम्हारे समीप सत्य ही कहता हूं; इसलिये आप इस विषयमें श्रद्धा करिये। सब काम्य कर्म्म स्वर्ग-फल साधनके हेतु कभी सुभम होते, कभी स्वर्ग-फल भोगान्तर पतन आदिके निमित्त दुर्भग हुआ करते हैं; इसलिये काम्य कर्म्मोंकी क्षयिष्णुता देखकर सज्जन लोग सदा उसकी निन्दा किया करते हैं। हे जाजली! स्थूल धर्म्म यज्ञ आदिसे सूक्ष्म अभयदान धर्म्मका अनुष्ठान करनेसे फलहीन नहीं होता, ब्रह्म-प्राप्ति और स्वर्गलाभके लिये वेदमें शम दम आदिके साधन और यज्ञ आदि धर्म्म विहित हुए हैं। अभय दान धर्म्म अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे वह पूर्ण रीतिसे जाना नहीं जाता; वेदके बीच किसी स्थलमें वैधहिंसाकी विधि है, कहीं पर अहिंसाकी विधि बलवती हुई है; इससे वैदिक धर्म्म अत्यन्त ही अन्तर्गूढ़ है! सब आचार जाननेके लिये उद्यत होने पर भी उसके बीच अनेक प्रकारके विभिन्न व्यवहार मालूम हुआ करते हैं। जिन सब बैलोंको वृषण-काटे जाते हैं, और नासिकामें छेद किया जाता है। वे बहुत सा बोझा ढोनेमें समर्थ हुआ करते हैं; मनुष्य उनका बन्धन और दमन करते हैं। जो जीवोंको मार कर भक्षण करते हैं, उनकी निन्दा क्यों नहीं करते; मनुष्य लोग मनुष्योंको दासत्व शृङ्खलमें बांध रखते हैं। दूसरा जातकी बात तो दूर रहे, वे लोग स्वजातिके लोगोंको रात दिन बध, बन्धन और निरोध करके दुःख भोग कराते हैं; इसके अतिरिक्त अपने बध, बन्धनसे जो दुःख होता है, उस विषयमें भी वे लोग अनभिज्ञ नहीं हैं; पञ्चइन्द्रिय-युक्त जीवोंमें सब देवता ही निवास किया करते हैं। सूर्य्य, चन्द्रमा, वायु, ब्रह्मा, प्राण, ऋतु और यम, ये सब देवता जिस जीवदेहमें निवास करते हैं, उन जीवोंके बेचनेमें जब कोई फल नहीं है, तब मृतजीवोंके विषयमें विचारकी क्या आवश्यकता है। बकरे, अग्नि; मेढ़े, घोड़े, जल, पृथ्वी, गौ, बछड़े और सोमरस

बेचनेसे मनुष्य सिद्ध नहीं होता। हे ब्रह्मन्! इसलिये तेल, घृत, मधु और औषधि बेचनेकी वार्त्ता कुछ कार्य्यकरी नहीं है। मनुष्य लोग दंश मच्छरोंसे रहित स्थानमें सहजमें ही सम्वर्हित पशुओंको उनकी माताके प्रिय जानके भी अनेक भांतिसे आक्रमण करके बहुतसे कीचड़युक्त देश तथा मशकोंसे परिपूरित स्थानमें स्थापित करते हैं; दूसरे धूर्त्त लोग वाहनोंके जरिये पीड़ित होकर अवसन्न होते हैं; मुझे बोध होता है, ऐसे पशु पीड़न कर्म्मकी अपेक्षा भ्रूणहत्या अधिक पापयुक्त नहीं है। जो लोग कृषिकर्म्मको उत्तम समझते हैं, मैं उनकी भी प्रशंसा नहीं करता; क्यों कि कृषि कर्म्म भी अत्यन्त दारुण है। हे जाजली! लोहमुख हल भूमि और भूमिमें रहनेवाले सर्प आदि प्राणियोंको नष्ट करता है, और हलमें जुते हुए बृषभोंकी ओर देखो वे कितना क्लेश सहा करते हैं। गऊ अबध्य हैं, इसहीसे उनका नाम अघ्नी है; इसलिये कौन पुरुष उन्हें मारनेमें समर्थ हुआ करता है। जो पुरुष वृषभ अथवा गऊको हिंसा करता है वह बहुत ही अमङ्गल किया करता है। जितेन्द्रिय ऋषियोंने नहुषके समीप यह विषय कहा था। उन्होंने कहा था, गऊ मातृस्वरूप और वृषभ प्रजापति स्वरूप है; तुमने उनका बध किया है। हे नहुष! इससे तुमने बहुत ही अकार्य्य किया है, तुम्हारे निमित्त हम सब कोई व्यथित हुए हैं। हे जाजली! जैसे इन्द्रका ब्रह्महत्याका पाप स्त्रियोंमे रज रूपसे निक्षिप्त हुआ था, वैसेही उन महाभाग ऋषियोंने नहुषके किये हुए गो-वृषभ हत्याके पापको सब प्राणियोंके बीच एक सौ एक रोग रूपसे निक्षेप किया। ब्रह्महत्या और गौहत्याका पाप समान है, इसीसे लोग नहुषको भ्रूणहत्या करनेवाला कहा करते हैं,—इससे हम लोग उसका होम न करेंगे। उन समस्त तत्वार्थदर्शी महानुभाव जितेन्द्रिय शान्त महर्षियोंने नहुषके विषयमें ऐसा कहकर तथा ध्यानपूर्व्वक उसे गोहत्या करनेमें प्रवृत्त न देखकर उसके किये हुए पापोंको प्रजासमूहमें रोगरूपसे संक्रामित किया था। हे जाजली! इस लोकमें ऐसा घोर अकल्याणकर आचारके प्रचलित रहनेपर भी अर्थात् मधुपर्क्कमें पशुवध आदि प्रथित रहनेपर भी तुम निपुण भावसे उसे समझनेमें समर्थ नहीं होते हो। कारणके अनुसार धर्म्माचरण करे, जिससे जीवोंको भय न हो, उसे ही धर्म्म जाने; गतानुगतिक होके लोक व्यवहार न करे। हे जाजली! सुनो जो लोग मुझपर प्रहार करें, अथवा जो प्रशंसा करें, वे दोनों ही मेरे पक्षमें समान हैं; मुझे हर्ष-बिषाद कुछ भी नहीं है। मनीषी लोग इस ही प्रकार धर्म्मकी प्रशंसा किया करते हैं, यति लोग भी युक्तिपूरित उक्त धर्म्मको सेवा किया करते हैं, धर्म्मशील मनुष्य सदा निपुण नेत्रसे उक्त धर्म्मको अवलोकन करते हैं।

२६१ अध्याय समाप्त।

जाजली मुनि बोले, तुमने तुला धारण करके यह धर्म्म प्रवर्त्तन किया है, इससे जीवोंके स्वर्गद्वार और जीविकाका अवरोध होता है। कृषिसे अन्न उत्पन्न होता है, तुम भी उसहीसे जीवन धारण किया करते हो; पशु हिंसा न करनेसे यज्ञ पूर्ण नहीं होता, तुम उसही यज्ञको निन्दा करके नास्तिकता प्रकाशित करते हो। लोग प्रवृत्ति मूलक धर्म्मको परित्याग करके कदाचित् जीवन धारण करनेमें समर्थ नहीं होते।

तुलाधार बोला, हे द्विज जाजली! मैं निज इत्तिका विषय कहता हूं, मैं नास्तक नहीं हूं और यज्ञको भी निन्दा नहीं की है, यज्ञवित् पुरुष अत्यन्त दुर्लभ हैं; मैं ब्राह्मण यज्ञको नमस्कार करता हूं। जो सब ब्राह्मण यज्ञ प्रक-

रण जानते हैं, उन्होंने योगरूप निज यज्ञ परित्याग करके इस समय हिंसामय क्षत्रिय यज्ञ अवलम्बन किया है। हे ब्रह्मन्! वित्तपरायण लोभी आस्तिक लोगोंने वेद वाक्योंको न जानके सत्यकी भांति भासमान मिथ्याके प्रवर्त्तन करनेके "कारण इस यज्ञमें यह दक्षिणा दान करनी योग्य है," इस ही प्रकार यज्ञका प्रशस्तता साधन की है। हे जाजली! इसही निमित्त यजमानके साध्य सत्वमें भी यथायोग्य दक्षिणा दान न करनेसे चोरी और अकल्याणकर विपरीत कार्य्योंकी उत्पत्ति हुई है। नमस्कार स्वरूप हवि, स्व-शाखोक्त वेदपाठ और औषध स्वरूप सुकृतसे प्राप्त हुआ जो हव्य है, उसहीके जरिये देवता लोग प्रसन्न हुआ करते हैं, शास्त्र निदर्शनके अनुसार देवताओंकी पूजा हुआ करती है। कामनावान् मनुष्योंके इष्टापूर्त्तसे विगुण सन्तानोंकी उत्पत्ति होती है। यजमानके लोभी होनेसे उसकी सन्तान भी लोभी होती है; यजमानके रागद्वेषसे रहित होनेसे उसकी सन्तान भी वैसीही हुआ करती है। यजमान अपनेको जैसा समझता है, सन्तान भी वैसीही होती है। आकाशसे निर्म्मल जल बरसनेकी भांति यज्ञसे ही प्रजा समूहकी उत्पत्ति हुआ करती हैं। हे ब्रह्मन्! अग्निमें डाली हुई आहुति सूर्य्यमण्डलमें पहुंचती है, सूर्य्यसे वृष्टि उत्पन्न होती है, वर्षासे अन्न उत्पन्न हुआ करता है, और अन्नसे ही प्रजासमूहकी उत्पत्ति होती है। यज्ञनिष्ठ मनुष्योंने फलानुसन्धान न करके यज्ञसे ही सब काम्य वस्तुएं पायी हैं। उस समय यज्ञके प्रभावसे पृथ्वीमें बिना जोते ही शस्य उत्पन्न होते और वृक्षोंमें अनायास ही फल लगते थे; इसहीसे लोग कृषिकार्य्यके निमित्त भूमिमें रहनेवाले सर्प आदि प्राणियोंकी हिंसामें लिप्त नहीं होते थे। तिसके अनन्तर मनुष्य यज्ञ आदि कर्म्मोंके फल कर्त्ताको नहीं देखते थे। जो लोग "यज्ञ करनेसे फल है, वा नहीं"—इसही भांति सन्देहयुक्त होकर किसी प्रकारका यज्ञ करते हैं, वे लोग असाधु, दम्भी, धन लोलुप और लोभी कहके विख्यात होते हैं। हे द्विजवर! जो पुरुष कुतर्कसे वेदोंका अप्रमाण सिद्ध करता है, वह उसही अशुभ कर्म्मसे पापाचारियोंके लोकमें गमन किया करता है, और उसीही इस लोकमें पापात्मा वा अत्यन्त अकृतप्रज्ञ कहा जाता है, वैसे पुरुषकी कभी मुक्ति नहीं होती। नित्य कर्म्मोंको अवश्य करना चाहिये, उनके न करनेसे भय होता है, इसे जो लोग जानते हैं, वेही ब्रह्मनिष्ठ हैं। इस लोकमें जो पुरुष अपनेमें वयोवर्णका अध्यास करके कर्त्तृत्व मालूम नहीं करते वेही ब्राह्मण हैं; अर्थात् कर्त्तृत्वभिमान और फलाभिलाष परित्याग करके कर्म्माङ्गोंमें ब्रह्मदृष्टि करते हुए जो लोग अशन पान आदिकी भांति कर्म्म किया करते हैं, उन्हें ही ब्रह्मनिष्ठ कहा जाता है। ऐसे ब्राह्मणोंके कर्म्म विगुण होने और अपवित्र कुत्ते, शूकर आदि पशुओंके जरिये विघ्नित होनेपर भी श्रेष्ठ रूपसे परिगणित हुआ करते हैं, यह श्रुतिमें वर्णित है; परन्तु मेरा यह कर्म्म इस विघ्नसे नष्ट हुआ है, ऐसा ज्ञान होनेपर उसके लिये प्रायश्चित्त करना होगा, यह भी वेदमें वर्णित है। जो सब पुरुष सत्य कहने और इन्द्रिय संयमकोही यज्ञ समझते हैं, परम पुरुषार्थ प्राप्त करनेमें जिन्हें लोभ होरहा है; वित्त वा विषयोंसे जिनको तृप्ति हुई है और जो दूसरे दिनके लिये अर्थसंग्रह नहीं करते, वेही अमत्सरी हुआ करते हैं। जो सब योगनिष्ठ पुरुष क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके तत्वको जानते तथा प्रणव अध्ययन करते हैं, वे दूसरोंको सन्तुष्ट किया करते हैं। सब देवता और समस्त वेदस्वरूप प्रणव ब्रह्मवित पुरुषमें प्रतिष्ठित होरहे हैं। हे जाजली! उसही ब्रह्मवित् पुरुषके तृप्त होनेसे आदित्य आदि देवता तृप्त और संतुष्ट होते हैं। जो सब रसोंसे तृप्त

हुए हैं, वे जैसे कोई दूसरे रसान्तरका अभिनन्दन नहीं करता, वैसेही प्रज्ञान तृप्ति पुरुषोंको अनायास ही नित्यतृप्ति हुआ करती है।

धर्म्मही जिनका एक मात्र अवलम्ब है, धर्म्मसे ही जो लोग सुखी हुआ करते हैं, उन्होंने ही समस्त कार्य्याकार्य्योंके निश्चय किये हैं, और कर्म्मके जरिये जिनका अन्तःकरण शुद्ध हुआ है वह प्राज्ञ पुरुष हमारे स्वरूपसे बुद्धिके बीच चिदाभासमय पुरुषसे बढ़के और कोई भी नहीं है,—इसे ही अवलोकन करते हैं। जो सब ज्ञान विज्ञानसे युक्त सात्विक पुरुष संसारके पार जानेकी अभिलाष करते हैं, वे लोग जिस स्थानमें जानेसे शोक नहीं करना होता च्युत नहीं होना पड़ता, व्यथित नहीं होना पड़ता, उस ही पुण्याभिजन नाम अत्यन्त पुण्यप्रद पवित्र ब्रह्मलोक पाते हैं। वे स्वर्गकी कामना नहीं करते, धनसाध्य कर्म्मोंसे परब्रह्मकी पूजा करनेके अभिलाषी नहीं होते, केवल साधुमार्ग अर्थात् योगमें निवास करते हुए अहिंसाके जरिये ईश्वरकी आराधना किया करते हैं। वे लोग बनस्पति, फलमूलोंको हवनीय रूपसे जानते हैं, धनार्थी ऋत्विक् वैसे निर्द्धन यजमानोंका याजन नहीं करते; उक्त द्विजातियोंके सब कर्म्म समाप्त होनेपर भी वे लोग प्रजासमूहके विषयमें अनुग्रहको अभिलाष करके अपनेको ही अर्घ कल्पना करते हुए मानसयज्ञ पूर्ण किया करते हैं। लोभी ऋत्विक सब वैसे निर्द्धन पुरुषोंका याजन नहीं करते, तब अवश्यही वे लोग मोक्षकी इच्छासे रहित पुरुषोंका ही याजन किया करते हैं। साधु लोग स्वधर्म्माचरणके जरिये दूसरोंका उपकार करते हैं, वे लोग समबुद्धिके कारण धर्म्मफलकी कामना नहीं करते। हे जाजली! इस ही लिये मैं सर्व्वत्र समबुद्धि होरहा हूं, अर्थात् सत् और असत् वृत्तिकी विभिन्नता निबन्धनसे मैं सदाचरणका ही अनुसरण किया करता हूं। हे महामुनि! कर्म्मठ वा उपासक ब्राह्मण लोग इस लोकमें सदा जो सब पुनरावृत्तिप्रद मार्ग प्रदर्शक और अपुनरावृत्ति प्रदमार्ग पदर्शक यज्ञ याजन करते हैं वे उस ही देवयान पथके जरिये पितृलोक और देवलोकमें गमन किया करते हैं। हे जाजली! देवयान् पथसे गमन करनेपर भी कर्म्मठ पुरुषोंका पुनरागमन हुआ करता है, और मनको निग्रह करनेवाले उपासकोंको पुनरावृत्ति नहीं होती, अर्थात् दिव्य पथसे गमन करनेपर भी दोनोंके सङ्कल्पभेद निबन्धनसे कर्म्मठ ब्राह्मणोंकी आवृत्ति और उपासकोंकी अनावृत्ति हुआ करती है; इसलिये कर्म्ममें रत कर्म्मठ ब्राह्मणों और मनको निरोध करनेवाले उपासक ब्राह्मणोंमें बहुत ही विलक्षणता है। सत्य सङ्कल्प उपासकोंकी मनकी सङ्कल्पसिद्धिके जरिये वृषभ स्वयं जुतके हल खींचते हैं और गौवें दूध दोहन किया करती हैं; उनके मानसिक यज्ञ सङ्कल्पसे ही सिद्ध होते हैं; वे लोग सङ्कल्प सिद्ध होनेसे यूपदक्षिणा आदि यज्ञके द्रव्योंको मनसे ही उत्पन्न किया करते हैं। जिन्होंने इसही प्रकार योगाभ्यासके जरिये चित्तशोधन किया है, वे मधुपर्कमें गो हिंसा कर सकते हैं। हे ब्रह्मन्! जो लोग उस प्रकार विशुद्धचित्तवाले नहीं हैं, वे लोग पशुहिंसा करनेसे अवश्यही प्रत्यवायभागी होंगे, इसलिये उनके लिये औषधियोंसे ही यज्ञसाधन विहित हुआ करता है। त्यागका ऐसा माहात्म्य होनेसे ही मैंने त्यागका पुरष्कार करके तुम्हारे समीप वैसा वचन कहा है। जिसे आशा और आरम्भ नहीं है, वे किसीको नमस्कार वा प्रशंसा नहीं करते, जो क्षीण नहीं हैं, परन्तु जिनके सब कर्म्म क्षीण हुए हैं, देवता लोग उन्हें ब्राह्मण जानते हैं। जो पुरुष वेद श्रवण, देवजप्न ब्राह्मणोंको दान नहीं करता और स्त्रियोंकी वृत्ति लाभकी इच्छा किया करता है, वह असुर स्वभाववाला मनुष्य देव-

मार्ग वा पितर मार्ग किसी पथमें भी गमन करनेमें समर्थ नहीं होता। आशाहीनता आदि पूर्व्वोक्त वाक्यको देवताकी भांति सेवनीय समझनेसे यथा विधि यज्ञस्वरूप परमात्माको प्राप्त किया जाता है।

जाजली मुनि बोले, हे वणिक्! मैंने आत्मयाजी योगियोंके तत्वको नहीं सुना है, इस ही निमित्त तुम्हारे निकट यह दुर्ज्ञेय विषय पूछता हूं। पहलेके महर्षियोंने इस प्रकार योगधर्म्मको आलोचना नहीं की है, इससे लोकके बीच यह रहस्य धर्म्म प्रवर्त्तित नहीं हुआ है। हे महाप्राज्ञ वणिक्! यद्यपि आत्मतीर्थ अर्थात् आत्मस्वरूप यज्ञभूमिमें पशुतुल्य मन्दबुद्धि मनुष्य मानसिक यज्ञजनित सुखलाभ करनेमें समर्थ नहीं होते, तब वे लोग किस कर्म्मके जरिये सुखलाभके अधिकारी होंगे उसे तुम मेरे समीप वर्णन करो। मैं तुमपर अत्यन्त श्रद्धा करता हूं।

तुलाधार बोले, जिन सब दम्भिकोंके यज्ञ श्रद्धाहीनताके कारण अयज्ञरूपसे प्रतिपन्न हुआ करते हैं, वे लोग आन्तरिक वा बाह्य कोई यज्ञ करनेके योग्य नहीं हैं। श्रद्धावान् मनुष्योंको एक ही गऊके जरिये बाह्यक्रतु सिद्ध हुआ करता है; क्योंकि घृत, दूध, दही, विशेष करके पूर्णाहुति, असमर्थके विषयमें गोपूंछसे पितृतर्पणके निमित्त पूंछके रोम, अभिषेक आदि निबन्धनमें गोश्टङ्ग और खुररज, इन सात प्रकारकी वस्तुओंसे गोयज्ञके कार्य्य सिद्ध हुआ करते हैं। इस पशुहिंसारहित घृतादिके बीच यज्ञविधिसे घृत आदि वस्तु देव उद्देश्यसे बिनियोगके लिये मानसिक श्रद्धाको पत्नीरूपसे कल्पना करनी होती है; क्योंकि अपत्निक पुरुषका वैदिक यज्ञ सिद्ध नहीं होता। यज्ञको अत्यन्त सेवनीय-देवत समझनेसे यज्ञरूपी विष्णुको यथावत् प्राप्त किया जाता है। अपवित्र पशुओंसे पुरोडास ही पवित्ररूपसे वर्णित हुआ करता है। हे जाजली! जिससे आत्मसाधन होता है, वही यज्ञभूमि है, आत्माही सरस्वती आदि समस्त नदी और पवित्र शैलस्वरूप है; इसलिये आत्माको न जानके अन्य तीर्थोंका अतिथि मत बनो। हे जाजली! इस लोकमें जो लोग इस ही भांति अहिंसामय धर्म्माचरण करते हैं और अर्थित वा समर्थित तारतम्यके अनुसार धर्म्मानुष्ठान किया करते हैं, वे शुभलोकोंको पाते हैं।

भीष्म बोले, तुलाधार इस ही प्रकार युक्तिसङ्गत वा सदा साधुओंसे सेवित इस समस्त धर्म्मको प्रशंसा किया करता है।

२६२ अध्याय समाप्त।

तुलाधार बोला, साधु वा असाधुओंसे अवलम्बित इस पथको उत्तम रीतिसे मालूम करो, ऐसा होनेसे ही उसका जैसा फल है उसे जान सकोगे। ये सब अनेक जातीय पक्षी इस स्थानमें विचर रहे हैं तुम्हारे उत्तम अङ्गसे जो उत्पन्न हुए थे, वे सब और बाज तथा दूसरी जातिके पक्षी भी इनके बीच विद्यमान हैं, इन सबोंने अपने घोसलोंमें प्रवेश करनेके निमित्त हस्तपदादि संकुचित किये हैं। हे ब्रह्मन्! इसलिये इस समय तुम इन्हें आवाहन करके देखो। यह देखिये, पक्षीवृन्द तुमसे समाहृत होके तुम्हारा सम्मान कर रहे हैं। हे जाजली! पुत्रोंको आह्वान करो, तुम इनके पिता हुए हो, इसमें सन्देह नहीं है।

भीष्म बोले, अनन्तर उस जाजली मुनिके बुलाने पर पक्षियोंने अहिंसामय धर्म्म वचनके अनुसार प्रत्युत्तर दिया। हे ब्रह्मन्! हिंसाके जरिये किया हुआ कर्म्म इसलोक और परलोकमें श्रद्धा नष्ट करता है, श्रद्धा नष्ट होनेपर श्रद्धाहीन मनुष्यको विनष्ट किया करता है, लाभ हानिमें समदर्शी, श्रद्धावान्, शान्त, दान्त पुरुष "यज्ञ करनायोग्य है"—ऐसे ही अभिसन्धि करके अर्थात्

कर्तृत्वाभिमान अथवा फलाभिसन्धि न करके यदि यज्ञका अनुष्ठान करें, तो उनके अनुष्ठित यज्ञसे कदापि अनिष्ट फलकी उत्पत्ति न होवे। हे द्विज! ब्रह्मविषयणी श्रद्धाको सूर्य्यके समान प्रकाशमान सत्वकी पुत्री अर्थात् सात्विकी कहा जाता है; वह श्रद्धा पालन करती है, इसहीसे सावित्री और शुद्ध जन्म प्रदान करती है, इसीसे प्रसवित्री रूपसे कही जाती है। वाक्य, मन वा श्रद्धाके उस बहिरङ्ग अर्थात् जप और ध्यानजनित धर्म्मसे श्रद्धा ही सब प्रकार श्रेष्ठ है। हे भारत! मन्त्र आदि उच्चारण करनेके समय स्वर-वर्ण विपर्य्ययके जरिये जो वाक्य नष्ट होता है, और व्यग्र चित्तसे जो देवताओंके ध्यान आदि विनष्ट होते हैं, श्रद्धा उसका समाधान करती है; परन्तु वचन, मन और कर्म्म, श्रद्धाहीन पुरुषकी परित्राण करनेमें समर्थ नहीं होते। पुराण जाननेवाले पण्डित लोग इस विषयमें ब्रह्माकी कही हुई यह गाथा कहा करते हैं, कि पवित्र और अश्रद्धावान् तथा श्रद्धावान् और अपवित्र पुरुषके वित्तको देवता लोग यज्ञ कर्म्ममें समानही समझते हैं। श्रोत्रिय होके भी जो पुरुष कृपणता व्यवहार करता है, और धान्य बेचके भी जो वदान्य होता है, देवताओंने विचार करके उन दोनोंके अन्नको समान भावसे कल्पना किया था। प्रजापतिने उस ही लिये उनसे कहा था, हे देवतावृन्द! तुम सबने जो कुछ कहा है, वह अत्यन्त विषम हुआ है। वदान्य पुरुषके श्रद्धायुक्त अन्न भक्षणीय हैं, अश्रद्धासे सिद्ध हुए अन्न भक्षणीय नहीं है, और कृपण तथा वृद्धि जिवीका अन्न न खाना चाहिये। केवल अश्रद्धावान् मनुष्य देवताओंको हवि दान करनेके योग्य नहीं हैं, उनका भी अन्न अभक्षणीय है; ऐसा धर्म्म जाननेवाले पुरुष कहा करते हैं। अश्रद्धा ही परम पाप स्वरूप है, और श्रद्धा ही पापको दूर किया करती है। जैसे सांप अपनी पुरानी केंचुली परित्याग करता है, श्रद्धावान् मनुष्य उस ही प्रकार पाप परित्याग किया करते हैं। श्रद्धाके सहित निवृत्ति मार्गको अवलम्बन करना ही सब पवित्रताके बीच श्रेष्ठ है, राग आदि दोषोंसे जो लोग निवृत्त हुए हैं, वेही श्रद्धावान् और पवित्र हैं, उन्हें तपस्या, शीलता और धर्म्म अभ्याससे क्या प्रयोजन है। ये श्रद्धामय पुरुष सात्विकी, राजसी और तामसी भेदसे तीन प्रकारकी श्रद्धाके बीच जैसी श्रद्धासे युक्त होते हैं, तब वह उस ही नामसे अर्थात् सात्विक, राजसिक और तामस नामसे प्रसिद्ध हुआ करते हैं। धर्म्मार्थदर्शी साधुओंने इसही प्रकार धर्म्म वर्णन किया है; धर्म्मदर्शन नाम मुनिसे पूछकर उससेही हम लोगोंने इस प्रकार धर्म्मका लक्षण जाना है। हे महाप्राज्ञ जाजली! तुम श्रद्धा करनेसे परम पदार्थ पाओगे; जो वेदवाक्यमें श्रद्धावान् और वेदार्थ अनुष्ठान करनेमें श्रद्धा किया करते हैं, वेही धर्म्मात्मा हैं। हे जाजली! जो लोग कर्त्तव्य मार्गमें निवास करते हैं, वेही गौरवयुक्त हैं।

भीष्म बोले, अनन्तर महाप्राज्ञ तुलाधार और जाजली मुनि थोड़े ही समयमें सुर लोकमें जाके निज कर्म्मके उपार्ज्जित अपने अपने स्थानको पाके सुख पूर्व्वक विहार करने लगे। तुलाधारके जरिये इसही प्रकार अनेक तरहके विषय कहे गये थे; तुलाधारने पूर्णरीतिसे सनातन धर्म्म जाना था, और जाजली मुनिके समीप कहा था।

हे कौन्तेय! द्विजश्रेष्ठ जाजलीने उस विख्यात वीर्य्य तुलाधारका सब वचन सुनके शान्तिमार्ग अवलम्बन किया था। तुलाधारने यथा विहित दृष्टान्तके जरिये मौनव्रती विप्रवर जाजलीके निकट इस ही प्रकार अनेक भांतिके विषय कहा था; तुम अब फिर किस विषयको सुननेकी इच्छा करते हो।

२६३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, पुरुष-पशुओंके विषयमें कृपा करनेके निमित्त महा राजा विचख्नुने जो कुछ पहले कहा था, प्राचीन लोग इस विषयमें उस ही प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। उक्त राजा गोमेध यज्ञमें वृषभोंके शरीरको कटे हुए देखने और गौवोंका अत्यन्त बिलाप सुननेसे कातर होके यज्ञभूमिको देखकर लोकके बीच गौवोंको "स्वस्ति होवे"—यही वाक्य निश्चय किया था। गोहिंसा आरम्भ होनेपर उक्त राजाके जरिये यही आशीर्व्वचन कल्पित हुआ था। जिनकी मर्य्यादा बिचलित हुई है वैसा बिमूढ़ शरीर ही आत्मा है, वा देहके अतिरिक्त कोई दूसरा आत्मा है ऐसे संशययुक्त चित्तवाले नास्तिक पुरुषोंने यज्ञादिके जरिये बड़ाई पानेकी अभिलाष करते हुए पशुहिंसाकी प्रशंसा की है; परन्तु सब अर्थ और वेदोंके तत्वको जाननेवाले धर्म्मात्मा मनुने सब कर्म्मोंमें ही अहिंसाकी प्रशंसा की है। इच्छानुसारी मनुष्य यज्ञके अतिरिक्त स्थलमें भी पशुहिंसा किया करते हैं, इसलिये प्रमाणके जरिये हिंसा और अहिंसा दोनोंके बलाबलको जान कर सूक्ष्म धर्म्म अवलम्बन करे, सब प्राणिओंके बिषयमें हिंसा न करना ही धर्म्मावर्म्मोंमें उत्तम है। गांवके समीप निवास करते हुए संशितव्रती होकर वेदविहित चतुर्म्मास याजियोंको अक्षयपुण्य होता है, इत्यादि फलश्रुति परित्याग करके आचारबुद्धिके जरिये पुरुष गृहस्थाचार रहित होवे, सन्न्यास धर्म्म अवलम्बन करे, पुरुषोंके बिषयमें यही कल्याणकारी है, ऐसा ही समझके निष्कर्म्म अवलम्बन करना चाहिये, और जो फलकी इच्छा करके कर्म्म करनेमें प्रवृत्त होते हैं, वे अत्यन्त क्षुद्र मनुष्य हैं।

यदि मनुष्य यज्ञवृक्ष-यूपोंको उद्देश्य करके वृथा मांस भक्षण करें, तो वह कुछ भी प्रशंसनीय धर्म्म नहीं है। यज्ञ करनेवाले मनुष्य कभी वृथा मांस भक्षण नहीं करते, मद्य, मांस, मछली, मधु, आसव, कृश रोदन अर्थात् तिल मिले हुए चावलोंका भक्षण करना धूर्त्तोंके जरिये प्रवर्त्तित हुआ है, यह वेदके बीच वर्णित नहीं है। अभिमान, मोह और लोभके वशमें होकर मनुष्योंकी मद्य सेवनमें इच्छा हुआ करती है। ब्राह्मण लोग सब यज्ञोंमें सर्व्वव्यापी आत्माको ही जानके तृप्त होते हैं; दूध और फूलोंसे उसकी पूजा हुआ करती है, उसमें मधु मांस आदिका प्रयोजन नहीं है। जो सब यज्ञीय वृक्ष वेदमें वर्णित हैं, और जो कुछ करने योग्य यथा जो कुछ शुद्ध आचारके सहारे संस्कारयुक्त हुआ करता है, महत् सत्व और शुद्ध अन्तःकरणके सहित वह सभी देवाई रूपसे विहित हुआ है।

युधिष्ठिर बोले, शरीर और समस्त आपदा आपसमें बिबाद किया करती हैं, अर्थात् आपदा शरीरको अवसन्न करती हैं, और शरीर भी आपदको नष्ट करनेकी इच्छा किया करता है; इससे अत्यन्त हिंसारहित पुरुषको शरीरयात्राका निर्व्वाह किस प्रकार सिद्ध होसकता है।

भीष्म बोले, जिससे शरीर ग्लानि युक्त वा मृत्युके वशीभूत न हो, वैसे ही कार्य्योंमें प्रवृत्त होना चाहिये, समर्थ होनेपर धर्म्माचरण करे, अर्थात् शरीरके अनुकूल धर्म्म कार्य्य करे, धर्म्मके अनुरोधसे शरीर नष्ट न करे।

२६४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आप हमारे परम गुरु हैं, इससे हिंसामय कार्य्यदुष्कर होनेसे भी गुरु वचनके अनुसार यदि उसे अवश्य करना पड़े, तो बिलम्ब वा शीघ्रताके सहित किस प्रकारसे उसकी परीक्षा करनी होगी, उसे ही कहिये।

भीष्म बोले, पहिले समयमें अङ्गिरा-वंशमें चिरकारीके किये हुए कर्म्मके जरिये जो घटना हुई थी, प्राचीन लोग इस विषयमें उस ही

व्यभिचार दोषमें स्त्री अपराधिनी नहीं है, पुरुष ही अत्यन्त महत् व्यभिचार दोषका आचरण करनेसे अपराधी हुआ करता है। भर्त्ता ही स्त्रियोंके लिये परम श्रेष्ठ और परम देवता स्वरूप है; इसलिये उसहीके वेषधारी इन्द्रको अवलोकन करने पर पुरुष न मालूम होनेसे निज पति जानके ही जब मेरी माताने इन्द्रको अङ्ग समर्पण किया है, तब उसका इसमें कुछ अपराध नहीं हो सकता; देवराज ही इस विषयमें सब तरहसे अपराधी हैं। स्त्रियां अल्प-बलवाली होनेसे सब कार्य्योंमें ही पुरुषोंके अधीन हैं; इसलिये उनके कुछ अपराध नहीं हो सकते। पुरुष सब बिषयोंमें अपराधी है, क्यों कि जबर्दस्ती किये हुए व्यभिचार विषयमें स्त्रियोंका अपराध नहीं है; पुरुष ही उस बिषयमें सब प्रकारसे दोषी हैं। मैथुन जनित तृप्तिके निमित्त किसी स्त्रीने इन्द्रके बिषयमें जो वचन कहा था, देवराज उन्हीं सब वचनोंको व्यक्त रूपसे स्मरण करा देनेसे सब तरहसे निःसन्देह अपराधी हुआ है; इसलिये इन्द्रके अपराधसे मुझे मातृहत्या करनी योग्य नहीं है। जो हो, एक तो स्त्री, उस पर भी सर्वाधिक गौरवशालिनी माता अवध्य है, इसे पशुके समान मूर्खपुरुष भी विशेष रूपसे जानते हैं; इसलिये मैं किस प्रकार माताका जीवन नष्ट करूंगा। पण्डित लोग पिताको देवताओंका समवाय कहा करते हैं, अर्थात् पिताको सन्तुष्ट करनेसे स्वर्ग मिलता है और मर्त्य तथा अमर्त्योंके समवाय स्नेहके कारण माताके निकटवर्त्ती हुआ करता है, अर्थात् माता इस लोकमें पालियती और अदृष्टके अनुसार परलोकमें परम सुख प्रदान किया करती है।

चिरकारीके चिरकारित्व निबन्धनसे इस ही प्रकार बहुत बिचार करते हुए बहुत समय बीत गया। तिसके अनन्तर उसका पिता उसहीके सम्मुख आ पहुंचा। महाबुद्धिमान् मेधातिथि गौतम तपस्यामें समय बिताते थे, उस समय वह निज पत्नीका मरना अनुचित समझकर अत्यन्त सन्तापित होकर दुःखसे आंसू बहाने लगे, वह शास्त्रके पढ़ने और धीरजके प्रभावसे पश्चाताप करके बोले, तीनों लोकके ईश्वर इन्द्र अतिथि-व्रत अवलम्बन करके ब्राह्मणका रूप बनाकर मेरे आश्रमपर आये थे, मैं उन्हें वचनसे प्रसन्न करके स्वागत प्रश्नसे आदर करके यथा रीतिसे पाद्य अर्घ प्रदान किया और कहा, कि आज मेरे आश्रममें तुम्हारा आगमन होनेसे मैं सनाथ हुआ हूं। देवराज प्रसन्न होंगे, ऐसा समझके मैंने ये सब बचन कहे थे, इस बिषयको चिन्ता करनेसे मालूम होता है, यह अमङ्गल उपस्थित हुआ है, अर्थात् इन्द्रकी चपलतासे मेरी स्त्रीमें दोषस्पर्श होनेसे अहल्याका उसमें कुछ अपराध नहीं हुआ है। इसलिये इस विषयमें अहल्या, मैं और स्वर्गपथगामी इन्द्र, इन तीनोंके बीच कोई भी अपराधी नहीं है, धर्म्मसम्बन्धीय प्रमाद ही इस विषयमें अपराधी है। उर्द्धरेता मुनि लोग कहते हैं, प्रमादसे ही ईर्षाजनित बिपद उपस्थित होती है, मैं इर्षासे आकर्षित होकर पापसागरमें डूबा हूं; सती सीमन्तिनी भरणीयभार्य्याने न जाननेसे ही पर पुरुषका संसर्ग किया, मैंने उसे मारनेकी आज्ञा दी है, इस समय कौन मुझे उस पापसे परित्राण करेगा। मैंने प्रमादके वशमें होकर उदारबुद्धि चिरकारीको मातृहत्या करनेकी आज्ञा दी है, आज यदि वह चिरकारी हो तो वही मुझे इस पापसे परित्राण करेगा। हे चिरकारिन्! तुम्हारा कल्याण होवे, हे चिरकारी! तुम्हारा मङ्गल हो, आज यदि तुम चिरकारी बनो, तभी तुमने यथार्थ चिरकारी नाम धारण किया है। आज तुम मुझे और अपनी माताको परित्राण करो; मैंने जो तपस्या उपार्ज्जनकी है उसकी रक्षा करो और आत्माको पापपुञ्जसे परित्राण करके

चिरकारी नामसे विख्यात् होजाओ। तुम्हारी असाधारण बुद्धिमत्तासे चिरकारित्व गुण स्वभावसिद्ध है, आज तुम्हारा वह गुण सफल होवे, तुम चिरकारी होजाओ। हे चिरकारी! माताने तुम्हें प्राप्त करनेकी लालसासे बहुत समयतक आशा की थी, बहुत समय तक गर्भमें धारण किया था; इसलिये अब तुम अपने चिरकारित्व गुणको सफल करो। हे चिरकारी! हम लोगोंका चिरसन्ताप देखके तुम मेरी आज्ञाको पालन करनेमें प्रवृत्त होकर भी बोध होता है, विलम्ब कर रहे हो।

हे राजन्! महर्षि गौतमने उस समय इस ही प्रकार अत्यन्त दुःखित होकर निकट आये हुए चिरकारी पुत्रको देखा, चिरकारी भी पिताको देखकर अत्यन्त दुःखित हुआ और शस्त्र त्यागके सिर झुकाकर पिताको प्रसन्न करनेकी इच्छा की। अनन्तर गौतम उसे सिर झुकाके पृथ्वीमें गिरते और पत्नीको लज्जासे पत्थरके समान देखकर अत्यन्त हर्षित हुए, परन्तु महात्मा गृहस्थ गौतमने निर्ज्जन जङ्गलके बीच उस पत्नी और समाहित पुत्रके सहित उस समय पृथक् भाव अवलम्बन नहीं किया। उनके "बध करो"—ऐसी आज्ञा देकर निज कर्म्म साधन करनेके लिये प्रवासमें चले जानेपर उनका पुत्र माताके निमित्त हाथमें शस्त्रलेकर भी विनीतभावसे खड़ा था, अनन्तर उन्होंने आश्रममें आके अपने दोनों चरणोंपर गिरे हुए पुत्रको देखकर यही समझा, कि चिरकारी भयसे शस्त्र ग्रहण करनेकी चपलताको रोकता है। अनन्तर पिताने बहुत समयतक प्रशंसा करके मस्तक सूंघकर दोनों भुजा पसारके पुत्रका आलिङ्गन किया और "चिरजीवी हो" ऐसा वचन कहके उसे आशीर्व्वाद दिया। प्रीति और हर्षसे युक्त होकर महाप्राज्ञ गौतम इस ही प्रकार पुत्रको अभिनन्दित करते हुए वक्ष्यमाण रीतिसे कहने लगे। हे चिरकारी! तुम्हारा कल्याण होवे; तुम सदाके वास्ते चिरकारी बनो। हे सौम्य! सदाके वास्ते तुम्हारा चिरकारित्व हुआ, मैं कभी दुःखित न होऊंगा, मुनिसत्तम विद्वान् गौतमने धीरबुद्धिवाले चिरकारी लोगोंके गुणोंको वर्णन करके यह सब गाथा कही थी। सदा विचार करके लोगोंके संग मित्रताबन्धन करे, बहुत समयतक विचार करके किये हुए कार्य्यकी परित्याग करे, बहुत समयतक सोचके मित्रता करनेसे वह चिरस्थायी हुआ करती है। राग, दर्प, अभिमान, द्रोह, पापकर्म्म, अप्रिय कार्य्य और कर्त्तव्यके अनुष्ठान विषयमें चिरकारी मनुष्य श्रेष्ठ होता है। सुहृत, बन्धु, सेवक और स्त्रियोंके अव्यक्त अपराधके विषयमें चिरकारी पुरुष उत्तम हुआ करता है। हे कुरुवंशवर्द्धन भारत! इस ही प्रकार गौतम पुत्रके चिरकारित्व निबन्धनसे वैसे कर्म्मके जरिये उस समय प्रसन्न हुए थे; इसलिये पुरुषको कार्य्यमात्रमें ही इस ही प्रकार विचार करके निश्चय करनेसे कभी परितापग्रस्त नहीं होना पड़ता, जो लोग सदा दोषको धारण किया करते हैं, चिरकाल ही कर्म्ममें नियमित रहते हैं, वे तनिक भी पश्चातापयुक्त कार्य्यमें लिप्त नहीं होते, सदा वृद्धोंकी उपासना करे, सदा उनके पश्चात् बैठकर उनका सत्कार करे, सदा धर्म्मकी सेवामें नियुक्त रहे और सदा धर्म्मकी खोज करे। सदा विद्वानोंका सङ्ग, शिष्ट पुरुषोंकी सेवा और आत्माको विनीत करनेसे सदाके लिये अनवद्यता प्राप्त हुआ करती है, दूसरेके बहुत समयतक पूछनेपर धर्म्मयुक्त वचन कहे, ऐसा होनेसे सदाके लिये दुःखित नहीं होना पड़ेगा। महातपस्वी द्विजश्रेष्ठ गौतम उस आश्रममें कई वर्ष व्यतीत करके अन्तमें पुत्रके सहित स्वर्गमें गये।

२६५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे साधुप्रवर पितामह! राजा किस प्रकार प्रजाकी रक्षा करे, किस भांतिसे ही दण्डविधान रहित करके प्राणिहिंसासे निवृत्त रहे; उसे ही आपसे पूछता हूं, आप ऊपर कहे हुए विषयको मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, राजा सत्यवानके संग द्युमत्सेनके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासका प्राचीन लोग इस विषयमें उदाहरण दिया करते हैं। हमने सुना है, पिताकी आज्ञासे सत्यवानके जरिये दण्डार्ह पुरुष बधके लिए उपस्थित होने पर "दण्डनीय पुरुषोंके दण्ड न होनेका विषय पहले किसीने नहीं कहा है," सत्यवानने ऐसा ही कहा था। कभी अधर्म्म धर्म्म होता है और धर्म्म भी कभी अधर्म्म हुआ करता है; परन्तु प्राणिहिंसा करना धर्म्म है,—यह कभी सम्भव नहीं होसकता।

द्युमत्सेन बोले, हे सत्यवान! अहिंसा ही यदि धर्म्म हुआ, तो राजा डाकुओंके दमन करनेके लिये उनका वध न करनेसे वर्णसङ्कर आदि अनेक दोष उत्पन्न होते हैं, जबकि हिंसा न करनेसे धर्म्मकी रक्षा नहीं होती, तब केवल अहिंसाको ही किस प्रकार धर्म्म कहा जासकता है। और अधर्म्म प्रधान कलियुगमें "यह वस्तु मेरी है, यह उसकी है," ऐसा निश्चय नहीं होसकता; और डाकुओंको न मारनेसे तीर्थयात्रा तथा वाणिज्य व्यवहार आदिका निभना अत्यन्त कठिन है; इसलिये हिंसाके जरिये जिसमें वर्णसङ्कर न हो, वह विषय यदि तुम्हें विदित हो, तो उसे तुम मेरे समीप वर्णन करो।

सत्यवान बोले, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन तीनों वर्णोंको ब्राह्मणोंके अधीन करना उचित है, ऊपर कहे हुए तीनों वर्णोंके धर्म्मपाशमें बद्ध होनेपर दूसरे प्रतिलोम और अनुलोमजात सूत मागध आदि सङ्कर जातीय पुरुष क्षत्रियादिकोंकी भांति धर्म्माचरण करेंगे। उनके बीच जो पुरुष ब्राह्मणोंका वचन अतिक्रम करेगा, ब्राह्मण उसका विषय राजासे कहे कि यह पुरुष मेरा वचन नहीं सुनता; इससे राजा उसके लिये दण्ड विधान करे, नीतिशास्त्रकी विधिपूर्व्वक आलोचना न करके शरीरके अविनाश विषयमें जो शास्त्र विहित हुआ है; उसमें अन्यथा करना उचित नहीं है। जब राजा डाकुओंके मारनेमें प्रवृत्त होता है, तब उनके पिता, माता, भार्य्या और पुत्र आदि निहत हुआ करते हैं; इसलिये दूसरेके अपकार करनेपर भी राजाको अवश्य पूरी रीतिसे विचार करना चाहिये। दुष्ट पुरुष किसी समय साधु चरित्रवाले होते हैं, और असाधुओंसे भी साधु सन्तान उत्पन्न हुआ करती हैं; इसलिये मूल सहित संहार न करना चाहिये, यह सनातन धर्म्म है; हिंसा न करनेसे भी दूसरे कार्य्योंके कारण प्रायश्चित्त विहित होता है, यह निश्चय वचन है। उद्वेजन अर्थात् सर्व्वस्व हरना, भय दिखाना, बांधना विरूप करना और वध दण्डसे डाकुओंको स्त्री आदिकी पुरोहित समाजमें कष्ट देना उचित नहीं है। जब डाकू लोग पुरोहितके समीप शरणागत होके कहें, कि "हे ब्रह्मन्! हम अब फिर ऐसा कार्य्य नहीं करेंगे," तब उन्हें छोड़ना उचित है, यही विधाताका शासन है। दण्ड और मृगछालधारी सिरमुंडे सन्न्यासी यदि निन्दित कर्म्म करें, तो उन्हें भी अवश्य शासन करना चाहिये, बड़े लोग भी यदि शासन कर्त्ताके निकट बार बार अपराध करें तो उन्हें डाकुओंकी भांति वधदण्डमें दण्डित न करके देशसे निकाल देना चाहिये।

द्युमत्सेन बोले, निज निज नियमोंसे प्रजापालन किया जा सकता है, वे सब नियम जब तक लङ्घित न हों, तब वही धर्म्मरूपसे वर्णित हुआ करते हैं। वध दण्ड न करके राजा सबकोही पराभूत कर रखे, ऐसा होनेसे ऊपर कहे हुए डाकू लोग उत्तम रीतिसे सुशासित हुआ

करेंगे, मृदुस्वभाव, सत्यनिष्ठ, अल्पद्रोह करनेवाले और अवमन्यु पुरुषोंके अपराधी होनेपर पहले उन्हें धिक्कारके जरिये दण्ड देना विहित था। अनन्तर उन लोगोंको वाक् दण्डसे शासन करना व्यवहृत हुआ था, कुछ समयके अनन्तर उक्त अपराधियोंके विषयमें सर्व्वस्व हरण रूपी दण्डप्रचलित हुआ; अब कलियुगके प्रारम्भसे बधदण्ड व्यवहृत हुआ है। एक पुरुषके मारे जानेपर भी दूसरा नहीं डरता; इसलिये डाकुओंके पक्षवाले सब लोग ही बधके योग्य हैं। सुना है कि दस्यु पुरुष मनुष्य देवता, गन्धर्व्व और पितरोंमेंसे किसीका भी आत्मीय नहीं है; इसलिये डाकुओंके बध करनेसे उनकी भार्य्या आदिका बध नहीं होता; क्यों कि उन लोगोंके सङ्ग किसीका भी सम्बन्ध नहीं है। जो मूर्ख पुरुष श्मशानसे मुर्देका अलङ्कार और पिशाच तुल्य मनुष्योंसे देवताओंकी शपथ करके वस्त्र आदि हरण करता है, उस नष्टबुद्धि पुरुषके विषयमें सदाचार निर्देश करनेमें कौन पुरुष समर्थ होसकता है।

सत्यवान् बोले, अहिंसाके जरिये यदि दुष्टोंको साधु बनानेमें सामर्थ न हो, तो कोई यज्ञ आरम्भ करके उनका नाश करना चाहिये, क्यों कि पापी लोग यज्ञके पशु होकर स्वर्गमें गमन किया करते हैं, यह वेदमें वर्णित है; इसलिये बधाई पुरुषोंको भी यज्ञके बीच प्रवेश कराके उनका उपकार करना उचित है। राजा लोग लोकयात्रा निबाहनेके लिये परम तपस्या किया करते हैं, वे उत्तम चरित्रवाले होनेपर भी "हमारे राज्यमें डाकू हैं," ऐसा जाननेसे, वैसे डाकुओंसे लज्जित होते हैं। भय दिखानेसे ही प्रजा साधु होती है, राजा इच्छानुसार दुष्कृतशाली प्रजाको नहीं मारता। यज्ञमें प्रयोजन होनेसे सुकृतके जरिये उन्हें प्रचुर रीतिसे शासन किया करता है। राजाके सदाचार करनेसे प्रजा उसहीके अनुसार सदाचार अवलम्बन करती है; श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करते हैं, साधारण पुरुष भी उसहीके अनुसार चला करते हैं। लोग इस ही प्रकार क्रमसे कल्याण लाभ करते हैं, मनुष्य बड़े लोगोंके अनुवर्त्तनसे सदा निरत हुआ करते हैं। जो राजा अपने चित्तको सावधान न करके दूसरेको शासन करनेकी इच्छा करता है, उस विषयेन्द्रियोंके वशमें रहनेवाले राजाकी प्रजा हंसी किया करती है, जो पुरुष दम्भ और मोहके वशमें होकर राजाके सङ्ग तनिक भी अनुचित व्यवहार करे, उसे जिस उपायसे होसके, शासन करना उचित है; ऐसा होनेसे वह पापसे निवृत्त होगा। जो पापकर्म्म करनेवाले पुरुषको पूर्ण रीतिसे शासन करनेकी इच्छा करे, पहले उसे आत्म-नियमित करना योग्य है। अनन्तर पुत्र सहोदर आदिको महत् दण्डके सहारे शासित करना उचित है। जिस राज्यमें पाप करनेवाले नीच लोग अत्यन्त महत् दुःख नहीं पाते, अवश्य ही वहां पापकी बढ़ती और धर्म्मकी घटती हुआ करती है; करुणाशील विद्वान् ब्राह्मणोंने ऐसेही अनुशासन किये हैं। हे तात! अत्यन्त करुणाके सबब प्रजासमूहके विषयमें धीरज देनेवाले पितामहके जरिये मैं इस ही प्रकार अनुशिष्ट हुआ था। सतयुगमें राजाओंने इस ही प्रथम कल्प शासन अर्थात् अहिंसामय दण्डसे ही पृथ्वी मण्डलको वशमें किया था। त्रेतायुगमें तीनपाद धर्म्मके सहारे प्रजा शासन होता था, द्वापरमें दोपाद धर्म्म और कलियुगमें एकपाद धर्म्म प्रवृत्त हुआ है। धिगदण्ड, वाक् दण्ड, आदान दण्ड और बधदण्ड युगके क्रमसे प्रजासमूहके विषयमें प्रवृत्त हुआ करते हैं। कलियुगके उपस्थित होनेपर समय-विशेषमें राजाके दुश्चरित्रसे धर्म्मके सोलह अंशोंका एक अंश मात्र, शेष रहेगा। हे सत्यवान्! यदि अहिंसामय प्रथम कल्प दण्डविधानसे धर्म्म शङ्कर हो, तो परमायु, शक्ति और काल निर्देश

करके राजा दण्डको आज्ञा करे। सत्यके निमित्त अर्थात् ब्रह्म प्राप्तिके हेतु इस लोकमें अत्यन्त महत् धर्म्मफलको त्यागना न चाहिये जीवोंके ऊपर कृपा करके स्वयम्भू मनुने उसे कहा है।

२६६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! समस्त ऐश्वर्य्य, ध्यान, यश, श्री, वैराग्य और धर्म्म, इन छहों गुणोंका हेतु जो योग धर्म्म जीवोंके विषयमें अविरोध भावसे जिस प्रकार उभयभागी अर्थात् गार्हस्थ और सन्न्यास, इन दोनोंमें उपयोगी होता है, आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये। गार्हस्थ पञ्चसूना अनिवार्य्य है, जो धर्म्ममें समस्त विषय सब भांतिसे परित्यज्य है, उक्त दोनों धर्म्म एक ही कार्य्यकेलिये प्रवृत्त होने पर अर्थात् गृहस्थ पुरुष न्यायसे प्राप्त हुए धनके जरिये जीविका निर्व्वाह करनेसे तत्वज्ञाननिष्ठ, अतिथिप्रिय, श्राद्ध करनेवाले तथा सत्यवादी होनेसे मुक्त होंगे। और योगी पुरुष प्राणायामसे पापोंको जलाकर धारणासे किल्विष नाश, प्रत्याहारके जरिये सङ्ग परिहार और ध्यानके सहारे जीवत्व आदि गुणोंको परित्याग करें; इसलिये उक्त दोनों धर्म्मोंके तुल्यअर्थ होनेपर भी उनके बीच कौन कल्याणकारी है।

भीष्म बोले, गार्हस्थ और योग धर्म्म दोनों ही महा ऐश्वर्य्यसे युक्त तथा अत्यन्त दुश्चर हैं, दोनोंमें ही महत् फल हैं, और दोनों धर्म्म साधुओंके आचरित हैं; इस समय मैं तुम्हारे समीप उक्त दोनों धर्म्मोंका प्रमाण वर्णन करता हूं, एकाग्रचित्त होकर सुननेसे धर्म्म विषयमें तुम्हारा संशय दूर होगा। हे युधिष्ठिर! प्राचीन लोग इस विषयमें कपिल और गौके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं तुम उसे सुनो। पहिले समयमें राजा नहुष नित्य-निश्चय पुरातन वेदविधि देखकर गृहमें आये हुए अतिथियोंके निमित्त गऊ मारनेमें प्रवृत्त हुए थे मैंने ऐसा सुना है; अदीन स्वभाववाले सत्वगुण अवलम्बी, संयममें रत नियताहारी, ज्ञानवान् कपिलने वधके लिये लाई गई उस गऊको देखा था। वह भयरहित सत्यसंश्रयी, अशिथिल और नैष्ठिकी बुद्धिसे युक्त थे—इस ही लिये उस गऊको देखकर 'हा वेद!' ऐसा वचन कहके आक्षेप प्रकाश किया था। स्यूमरश्मि ऋषि योगबलसे उस गऊके शरीरमें प्रवेश करके कपिल मुनिसे बोले, क्याही आश्चर्य्य है! यदि सब वेद ही गर्हित रूपसे सम्मत हुए तब दूसरा कौन हिंसारहित धर्म्म लोगोंको अभिमत होगा। सन्तोषयुक्त श्रुतिबलसे विज्ञानदर्शी तपस्वी लोग ऋषियोंसे प्रकट हुए वेदवाक्योंको नित्य विज्ञानमय परमेश्वरका वाक्य कहके मान्य करते हैं, इसलिये वेदवाक्यके एक अक्षरको भी अप्रमाणित करनेमें किसीकी सामर्थ नहीं है। जो फलकी आशासे रहित, दोषहीन वीतराग और अव्याप्त समस्त कामत्व निबन्धनसे सब प्रकार निरारम्भ है, उस परमेश्वरके वचन वेदोंमें क्या किसी पुरुषको कुछ कहनेकी शक्ति है।

कपिल बोले, मैंने वेदोंकी निन्दा नहीं की है, और किसी विषयमें कुछ विषम वाक्य कहनेकी इच्छा भी नहीं करता, पृथक् पृथक् आश्रमवालोंके सब कर्म्म एक प्रयोजनके हैं, इसे मैंने सुना है। क्या सन्न्यासी, क्या वाणप्रस्थ, क्या गृहस्थ, क्या ब्रह्मचारी, सब ही परम पद लाभ किया करते हैं। चारों आश्रमोंसे ही आत्माको प्राप्त किया जाता है, इस ही लिये ब्रह्मचर्य्य आदि चारों आश्रम देवयान पथ रूपसे प्रसिद्ध हैं, इन चारोंमें उत्कर्ष और अपकर्ष तथा बलाबलके विषय वर्णित हुए हैं, कि सन्न्यासी मोक्षलाभ करते हैं, वाणप्रस्थ ब्रह्म लोक पाते

है, गृहस्थ पुरुष स्वर्ग लोकमें गमन किया करते हैं, और ब्रह्मचारी ऋषिलोकमें वास करते हैं। ऐसा ही जानके स्वर्गादिप्रद यज्ञादि कर्म्म आरम्भ करें; यही वैदिक मत और वेदके प्रकारणान्तरमें कर्म्म न करनेकी भी विधि है, इस ही प्रकार नैष्ठिकी जनश्रुति भी श्रवणगोचर हुआ करती है, अर्थात् सन्न्यास ही सबके विषयमें परम मोक्ष साधन है। जो सब काम्य वस्तुओंको परित्याग करते हैं, वे परब्रह्मको जानके परमपद पाते हैं। कर्म्म न करनेसे कोई दोष नहीं होता, परन्तु यज्ञ आदि कर्म्मोंके अनुष्ठान करनेसे हिंसा आदिसे बहुतेरे दोष हुआ करते हैं। जब शास्त्र इस प्रकार है, तब कर्म्म त्याग और कर्म्मानुष्ठानके बलाबल अत्यन्त ही दुर्व्विज्ञेय हैं, क्यों कि दोनोंमें ही निन्दा और प्रशंसाकी तुल्यता है। आगमशास्त्रोंके अतिरिक्त जो कुछ हिंसाशास्त्र हैं, यदि वे प्रत्यक्ष हों और तुमने उन्हें देखा हो, तो उसे ही कहो।

स्यूमरश्मि बोले, "स्वर्गकी इच्छाकरनेवाले पुरुष यज्ञ करें" सदा ऐसी ही जनश्रुति सुनी जाती है। पहले फलकी कल्पना करके उसके अनन्तर यज्ञ विस्तृत हुआ करता है। बकरे, घोड़े, मेढ़, गऊ, पक्षियें और गांव तथा जङ्गलकी सब ओषधियें प्राणियोंके अन्न हैं; यह वेदमें प्रतिपन्न हुआ है; इसलिये जो जिसका अन्न है, उसके खानेमें कोई दोष नहीं है। प्रतिदिन सन्ध्या और भोरके समयमें अन्न निरूपित हुआ करता है; पशुसमूह और समस्त धान्य यज्ञके अङ्ग हैं; यह भी वेदके बीच विहित है। प्रजापतिने ऊपर कहे हुए पशुओंको यज्ञके लिये उत्पन्न किया है, और उन्हींके जरिये देवताओंका यज्ञ कराया था। ऊपर कहे हुए पशु, ग्राम और अरण्यभेदसे सात प्रकारके हैं, वे परस्पर श्रेष्ठ हैं। गऊ, बकरे, मनुज, घोड़े, मेढ़, खच्चर और गदहे, ये सातों ग्रामपशु हैं; और सिंह, बाघ, बराह, अश्व, भैंसे, भालू और बन्दर; ये सातों जङ्गली कहके वर्णित हुआ करते हैं। यज्ञमें विनियुक्त भूभागको महर्षि लोग उत्तम संज्ञक कहा करते हैं और यह पहलेसे ही पण्डितोंके जरिये अनुज्ञात हुआ है। कौन विद्वान् पुरुष अपनी शक्तिके अनुसार मुक्तिके उपाय करनेमें अभिलाषी नहीं होता; सब कोई अपनी सामर्थ्यके अनुसार यज्ञ कार्य्य करें। मनुष्य, पशु, वृक्ष और समस्त ओषधियें स्वर्गकी कामना किया करती हैं, स्वर्गके अतिरिक्त सुख नहीं है। ओषधि, पशु, वृक्ष, वीरुत्, घृत, दूध, दही, हवि भूमि, दिक् श्रद्धा और काल, ये बारह और ऋक्, यजु, साम तथा यजमानको मिलाके सोलह, और अग्निस्वरूप गृहपति सप्तदश रूपसे कहे जाते हैं। येही सत्तरह यज्ञके अङ्ग हैं, यज्ञ ही लोकस्थितिका मूल है, यह वेदमें प्रतिपन्न है। घृत, दूध, दही, शकृत्, आमिक्षा, त्वक्, पुच्छलोम, शींग और खुरके जरिये गोयज्ञका कार्य्य सिद्ध हुआ करता है। सब वस्तुओंमेंसे यज्ञके लिये प्रत्येकमें जो जो विहित होता है, वह सब एकत्रित होकर दक्षिणायुक्त ऋत्विकोंके सहित यज्ञको पूर्ण करता है। ऊपर कही हुई सब सामग्रियोंको समाप्त करनेसे यज्ञ निवृत्त हुआ करता है। यज्ञके लिये ही सब वस्तुएं उत्पन्न हुई हैं, यह यथार्थ श्रुति कानोंसे सुनी जाती है। प्राचीन मनुष्य इस ही भांति यज्ञके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होते थे; वे किसीकी हिंसा नहीं करते थे फलकी कामनासे कोई कर्म्म नहीं करते थे। और किसीसे द्रोह नहीं करते थे। "यज्ञ करना कर्त्तव्य है," ऐसा समझके फलकी इच्छा न करके जो लोग यज्ञ करते हैं, उनके यज्ञमें पहले कहे हुए सब यज्ञाङ्ग और यज्ञमें कहे हुए यूपकाष्ठ यथारीतिसे विधिपूर्व्वक निज निज कार्य्योंसे परस्परका उपकार करते हैं। जिसमें सब वेद प्रतिष्ठित

होरहे हैं, मैं उस ऋषिप्रणीत आम्नाय-वाक्यका दर्शन करता हूं, कर्म्म-प्रवर्त्तक ब्राह्मण वाक्य-दर्शन निबन्धनसे विद्वान् लोग भी उस वेद-वाक्यको अवलोकन किया करते हैं। ब्राह्मणसे यज्ञकी उत्पत्ति होती है और ब्राह्मणमें यज्ञ अर्पित हुआ करता है, सब जगत् यज्ञका आसरा किये हैं, और यज्ञ भी सदा जगत्‌की अवलम्बन कर रहा है। ओंकार ही वेदका मूल है, इसलिये प्रणवका उच्चारण करके यज्ञादि कार्य्योंको करना चाहिये। नमःस्वाहा, स्वधा, वषट् इत्यादि मन्त्रोंके यथा शक्ति जिसके गृहमें प्रयोग होते हैं; त्रिभुवनके बीच उसे ही परलोकका भय नहीं है; सब वेद और सिद्ध महर्षि लोग इस विषयमें ऐसा ही कहा करते हैं। ऋक्, यजु, साम आदि शब्द, ये सब विधि पूर्व्वक प्रयुक्त होकर जिसमें निवास करते हैं, वेही द्विज-पदवाच्य होते हैं। हे द्विज! आग्नया-धान, सोमपान और इतर महायज्ञोंसे जो फल होता है, उसे तो आप जानते हैं। इस-लिये विचार न करके यजन और याजन करना उचित है। स्वर्गप्रद ज्योतिष्ठोमादि अनुष्ठानके जरिये जो यज्ञ करते हैं, परलोकमें उन्हें अत्यन्त महत् स्वर्ग फल प्राप्त हुआ करता है। जो यज्ञ नहीं करते, उनका यह लोक और परलोक नष्ट होता है। जो वेदगत अर्थवाद जानते हैं, उस अर्थवादके दोनों फल सामर्थ्य ही इस विषयमें प्रमाण है, यह भी उन्हें अविदित नहीं है।

२६७ अध्याय समाप्त।

कपिल बोले, सविशेष अवस्थामें स्थित, यम नियम आदिसे युक्त, योगी लोग इस्थूल रूपसे परिच्छिन्न ब्रह्माण्ड पर्य्यन्त कर्म्म फल अवलोकन करते हुए परमात्माका दर्शन किया करते हैं; सब लोकोंके बीच इन लोगोंके सङ्कल्प कभी मिथ्या न होवे। जो सर्दी, गर्म्मीसे उत्पन्न हुए हर्ष विषादसे रहित हैं, जो किसीको नमस्कार वा आशीर्व्वाद नहीं करते, ज्ञानयुक्त होनेसे वासनाके हेतु सब पापोंसे जो लोग मुक्त हुए हैं, वे स्वभावसिद्ध पवित्र और आनेवाले दोषोंसे रहित योगी पुरुष परम सुखसे विचरते रहते हैं। अपवर्ग और सन्न्यास विषयकी बुद्धिसे जिन्होंने निश्चय किया है, वे ब्रह्माभिलाषी ब्रह्मभूत योगी लोग ब्रह्मको ही अवलम्बन किया करते हैं, जिन्हें शोक नहीं है, और रजोगुण नष्ट हुआ है, उनके निमित्त नित्य सिद्ध सनातन लोक निर्म्मित है, परमपद पाके फिर उन्हें गृहस्थ धर्म्मकी क्या आवश्य-कता है।

स्यूमरश्मि बोले, यदि यही परम उत्कर्ष और यही चरम-गति हुई, तोभी बिना गृह-स्थोंके आसरेसे दूसरे आश्रमोंके निर्व्वाह नहीं होसकते। जैसे जननीका आसरा करके सब जन्तु जीवन धारण करते हैं, वैसे ही गृहस्था-श्रमके अवलम्बसे सब आश्रमवाले वर्त्तमान रहते हैं। गृहस्थ ही यज्ञ किया करता है, गृहस्थ ही तपस्या करता है; सुखकी इच्छा करके जो कुछ चेष्टा की जाती है, गार्हस्थ ही उसका मूल है। प्राणिमात्र ही सन्तानके उत्पन्न होनेसे सब भांतिसे सुखी होते हैं, गृहस्थाश्रमके अतिरिक्त दूसरे किसी आश्रममें भी वह पुत्रो-त्पत्ति सम्भव नहीं होती, वाह्य ओषधि धान्य आदि और शैलज ओषधि सोमलता इत्यादि जो कुछ दीख पड़ती हैं, प्राण उन ओषधि स्वरूप है; क्यों कि अग्निमें दी हुई आहुति आदित्यके निकट उपस्थित होती है, सूर्य्यसे वर्षा उत्पन्न होती है, जल बरसनेसे अन्न उप-जता है, और अन्नसे प्रजासमूहकी उत्पत्ति हुआ करती है। इसलिये ओषधि स्वरूप प्राणसे पृथक् जब दूसरा कोई पदार्थ नहीं दीखता, तब गृहस्थाश्रम ही जगत्‌की उत्पत्तिका कारण

है; 'गृहस्थाश्रममें मोक्ष नहीं होती' किस पुरुषका यह बचन सत्य होसकता है। श्रद्धा-रहित, बुद्धिहीन, सूक्ष्म दर्शन विवर्ज्जित, प्रतिष्ठाहीन, आलसी, श्रान्त और निज कर्म्मसे सन्तापयुक्त, कार्य्यल आदि दोषोंसे गृहस्थ धर्म्म प्रतिपालन करनेमें असमर्थ मूर्ख पुरुष ही प्रवज्याधर्म्ममें शमगुणकी अधिकता दर्शन किया करते हैं। तीनों लोकोंके हितके निमित्त यह नित्य निश्चल मर्य्यादा है, कि भगवान् वेदवित् ब्राह्मण जन्म पर्य्यन्त पूजनीय हैं। प्रमाणान्तरोंसे अगम्य स्वर्गादि और ऐहिक कर्म्म-फलसिद्धि विषयमें जो सब मन्त्र हैं, वह गर्भाधानके पहलेसे ही द्विजातियोंमें निवास करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है।

मृत-देहको जलाना, फिर शरीर प्राप्ति, मरनेके अनन्तर श्राद्ध तर्पण आदि वैतरणीके समयमें गऊदान, आद्य श्राद्धके समयमें वृषोत्सर्ग और सब पिण्डोंमें जल सिञ्चन, ये सब मन्त्र-मूलक हैं; ज्योतिर्म्मय, कुशापर सोनेवाले क्रव्यात् और पितर लोग मृतकके सम्बन्धमें ऊपर कहे हुए कार्य्योंकी मन्त्रसम्मत कहा करते हैं; वेद जब इन मन्त्रोंके कारणताकी घोषणा कर रहे हैं और मनुष्य लोग जब पितर देवता तथा ऋषियोंके निकट ऋणी हैं, तब किसी पुरुषको किस प्रकार मोक्ष होसकती है। सब मन्त्र शरीर हीन मुक्त पुरुषोंके उपकारके लिये नहीं हैं; इसलिये उस प्रकार अशरीरता लक्षण मोक्ष नहीं है। वेदवाक्योंका जिसमें पूर्ण रीतिसे ज्ञान नहीं होता, वह सत्यकी भांति आभासमान मिथ्याधर्म्म है; सम्पत्ति-रहित आलसी पण्डितोंके जरिये वह मिथ्या धर्म्म प्रवर्त्तित हुआ है, जो वेदवित् ब्राह्मण वेदशास्त्र विहित यज्ञादिकोंका अनुष्ठान करता है, वह पापोंसे आह्वत वा आकर्षित नहीं होता; बल्कि वह यज्ञ और यज्ञीय पशुओंके सहित ऊर्द्धलोकमें गमन करता है; और वह स्वयं सर्व्वकामसे तृप्त होकर दूसरोंको तर्पित किया करता है; इसलिये अग्निहोत्र आदि कर्म्म समुचित उपासनारूपी ज्ञानसे ही मोक्ष होती है, इससे वह गृहस्थाश्रममें ही सिद्ध हुआ करती है। वेदोक्त कर्म्ममें अनादर, शठता वा मायासे पुरुष महत् ब्रह्मपद नहीं पाता, वेद जाननेवाले ब्राह्मण ही वेदोक्त कर्म्मोंके अनुष्ठानसे ब्रह्मपद प्राप्त किया करते हैं।

कपिलमुनि बोले, दर्शपौर्णमास, अग्निहोत्र और चातुर्म्मास यज्ञ बुद्धिमान् मनुष्योंकी चित्त-शुद्धिके कारण हुए हैं; इसलिये उक्त यज्ञादि कर्म्मोंमें सनातन धर्म्म विद्यमान है, हिंसायुक्त पशुबध आदि कार्य्योंमें कोई धर्म्म नहीं है। जो यज्ञादिकोंका अनुष्ठान नहीं करते, वेही धैर्य्यशील हैं, इससे वेही राग आदि दोषोंसे रहित ब्रह्मज्ञ शब्दके वाच्य होते हैं। वेही सन्न्यासी ब्रह्मदर्शनके जरिये अमृताभिलाषी देवर्षि और पितरोंकी तृप्तिसाधन किया करते हैं। जो सब भूतोंके आत्मभूत और सब प्राणियोंमें समदर्शी हैं, गुणाभिलाषी देवता लोग भी उस निर्गुण पुरुषके पदलाभ करनेमें मुग्ध हुआ करते हैं। बाहु, वाक्य, उदर और उपस्थ, ये चारों द्वारकी भांति जिसे आवरण कर रखते हैं; देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, ये चारों जिसके भोगसाधन सुखस्वरूप हैं, मनुष्य गुरूपदेशसे इस शरीरके भीतर स्थित सर्व्वमय पुरुषको विराट, सूत्र, अन्तर्य्यामी और शुद्ध-चैतन्य इन चारों भांतिसे जानता है। जो उसे जाननेकी इच्छा करे, वह दोनों भुजा, बचन, उदर और उपस्थकी उत्तम रीतिसे रक्षा करनेमें यत्नवान् होवे। बुद्धिमान पुरुष जुआ न खेले, दूसरेका वित्त न हरे, जिसके सङ्ग यौन-सम्बन्ध होनेकी सम्भावना नहीं है, उसे याजन न करे, क्रुद्ध होके किसीके ऊपर प्रहार न करे; जो लोग इस ही प्रकार व्यवहार करते हैं, उनके हाथ पांव उत्तम रीतिसे रक्षित होते हैं। आक्रोश

करनेकी इच्छा न करे, तथा बचन न कहे, खलता और लोगोंके अपवादको परित्याग करे ; जो लोग सत्यव्रती, मितभाषी और प्रमाद रहित हैं, उनका बचनरूपी द्वार उत्तम रीतिसे रचित हुआ करता है। अनशन (उपवास) अवलम्बन न करे और अधिक भोजन भी न करना चाहिये, अलोलुप होकर साधुओंमें मिलित होवे, इस लोकमें देहयात्रा निबाहनेके लिये थोड़ासा आहार करे ; जो लोग ऐसा आचरण करते हैं, उनके जठर द्वारकी उत्तम रीतिसे रक्षा हुआ करती है। यज्ञ सम्बन्धी पत्नीसे विभक्त न होवे, यथा विधि परिणीता पत्नीके रहते दूसरी पत्नी का पाणिग्रहण करके प्रथम परिणीता पत्नीको धर्म्म, अर्थ, काम विषयमें विभागवती न करे और ऋतुकालके अतिरिक्त दूसरे समयमें पत्नीको आह्वान न करे, स्वयं भार्य्याव्रत अर्थात् परस्त्री त्याग व्रत धारण करे ; जो लोग ऐसा आचरण करते हैं, उनके उपस्थ द्वारकी रक्षा हुआ करती है। जिस मनीषी पुरुषके उपस्थ, उदर, बाहु और बचन ये चारों द्वार पूर्ण रीतिसे रक्षित हुए हैं, वही ब्रह्मपदवाच्य होता है ; और जिसके पहले कहे हुए सब द्वार रक्षित नहीं होते उसके सब कार्य्य ही निष्फल होते हैं, वैसे पुरुषको तपस्यासे क्या प्रयोजन है, यज्ञकी ही कौनसी आवश्यकता है, और धैर्य्यका ही क्या प्रयोजन हैं ; जिसके उत्तरीय वस्त्र नहीं है, जो आस्तरणशून्य स्थानमें बाहुकी तकिया रूपसे सिरसे नीचे रखके शयन किया करते हैं, उन दम गुणावलम्बी पुरुषोंको देवता लोग ब्राह्मण समझते हैं। जो मननशील होकर एकबारही सुख वा दुःखका अनुशीलन न करके सुख दुःख आदि सब विषयोंमें रत रहते हैं, देवता लोग उन्हें ब्राह्मण समझते हैं। किसी प्राणियोंसे जिन्हें भय नहीं है, और जिनसे सब प्राणियोंको भय नहीं होता; जो सब भूतोंके आत्मभूत हैं, देवता लोग उन्हें ब्राह्मण समझते हैं। दान और यज्ञादि क्रियाके फल चित्तशुद्धिके बिना मनुष्य ब्राह्मण्य क्या है, उसे नहीं जान सकते ; मूढ़ लोग वह सब न जानके ही स्वर्गकी कामना किया करते हैं। जो सदाचार अवलम्बन करनेसे संश्रित आश्रमोंमें निज कर्म्मोंके सहित तपस्या अर्थात् वेदान्त श्रवणादि स्वरूप आलोचना संसारके मूल अज्ञानको जलाती है, वही अनादि है, मुमुक्षु पुरुषोंका नित्य अनुष्ठेय है, सत्य फलक और धर्म्म में ग्रथित सदाचार आचरण करनेमें असमर्थ मनुष्य प्रत्यक्ष फलमय नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि संज्ञक परम ऐश्वर्य्ययुक्त अविनाशी कर्म्मोंको अनैकान्तिक और निष्फल देखते हैं। आचार ही निरापद्धर्म्म है, उनमें प्रमाद नहीं है, और काम, क्रोध आदिका आक्रमण नहीं है। इस लोकमें यज्ञादि कार्य्य अत्यन्त दुर्ज्ञेय हैं ; यद्यपि वे जाने जाते हैं, तौभी अत्यन्त दुष्कर हैं, यद्यपि उसका अनुष्ठान किया जाता है, तौभी उसका परिणाम क्षययुक्त हुआ करता है, इसे ही तुम आलोचना कर रहे हो।

स्यूमरश्मि बोले, हे भगवन् ! कर्म्मकरो अथवा कर्म्म त्याग करो, इस ही प्रकार परस्पर बिरुद्ध दोनों पक्षके उपदेश देनेवाले वेद वाक्यकी प्रमाणता जिस प्रकार सिद्ध होती है, और जिस प्रकार त्याग सफल हुआ करता है, ये दोनों पथ ही वेदमें बर्णित हैं ; अतएव आप उनकी यथार्थता मेरे समीप बर्णन करिये।

कपिल बोले, आप ब्रह्म प्राप्तिके उपाय भूत योगमार्गमें स्थित होकर इस जीवदेहमें प्रत्यक्ष दर्शन करिये, आप कर्म्मठ होकर जो अभिलाष किया करते हैं, इस लोकमें उस सुख आदिका अनुभव स्वरूप प्रत्यक्ष क्या है ?

स्यूमरश्मि बोले, हे ब्रह्मन् ! मैं स्यूमरश्मि हूं, ज्ञान प्राप्तिके लिये इस गोशरीरमें प्रविष्ट

हुआ हूं; कल्याणकी इच्छा करके सरल भावसे प्रत्युत्तर देता हूं, और निज पक्षको समर्थ न करनेके लिये नहीं कहता हूं, मुझे यह घोर संशय है, आप उसे दूर करिये। आप सत्यमें निवास करते हुए इस शरीरमें प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं, इससे आप जिस प्रकार उपासना किया करते हैं, उसमें प्रत्यक्ष पदार्थ क्या है; प्रधान तर्क वेदविरोधी लोकायत, आर्हत, सौगत और कापालिक आदि सब शास्त्रोंको परित्याग करके यथावत् आगम शब्दका अर्थ मुझे विदित हुआ है। वेदवाक्य और वेदार्थनिर्णायक पूर्व्व मीमांसा, उत्तर-मीमांसा, सांख्य, पातञ्जल और तर्क शास्त्रोंका भी आगम कहा जाता है, इसलिये आश्रम धर्म्मोंको अतिक्रम न करके सब आगम शास्त्रोंकी उपासना करनेसे फल सिद्धि हुआ करती है। आगमोंके निश्चय निबन्धनसे गता-गति, दिव्य भोगोंकी प्राप्ति आदि प्रत्यक्षरूपी सिद्धि दृष्टिगोचर होती है। जैसे एक नौकामें निबद्ध दूसरी नौका बन्धनके सहित नदीके प्रवा-हमें ह्रियमान् होकर किसी पुरुषको दूसरे किनारे पर नहीं पहुंचा सकती, हे विप्र! हम लोग उस ही प्रकार कर्म्म-नौकामें निबद्ध होकर पूर्व्व कर्म्म वासना-बन्धनसे जन्म, जरा, मृत्यु प्रवाहके पार होनेमें असमर्थ हैं। हे भगवन्! इसलिये मैं आपका शरणागत शिष्य हुआ हूं, आप मुझे इस प्रत्यक्ष पदार्थ ज्ञानकी शिक्षा दीजिये। इस संसारमें कोई पुरुष भी त्यागशील नहीं है, कोई सन्तुष्ट नहीं है, कोई पुरुष भी शोकहीन नहीं है, कोई मनुष्य रोग रहित नहीं है, कोई चिकिर्षा शून्य नहीं है, कोई पुरुष आसक्तिहीन नहीं है, और जिसमें पारिपाट्य न हो, ऐसा पुरुष हो नहीं है। आप भी मेरी भांति प्रसन्न होते और शोक किया करते हैं, और आप लोगोंमें भी समस्त इन्द्रिय-विषय सब जीवोंके सहित समान ही हैं; इसलिये मैंने सुखाभिलाषी सब वर्णोंके सुखको अनुभव किया है। अब यदि सुखका निर्णय करना हो, तो अपचयहीन सुख कौनसा है, आप मुझे उसहीका उपदेश करिये।

कपिल मुनि बोले, सब वैदिक शास्त्र समस्त प्रवृत्तिके बीच जो मोक्ष विषयके अनु-ष्ठान करनेका उपदेश करते हैं, उस मोक्षका अनुष्ठान जिसमें है, वही अपचयरहित सुखका अवलम्ब है। जो पुरुष ज्ञानका अनुसरण करता है, उसके शम दम आदिके हेतुसे उत्पन्न हुआ ज्ञान समस्त संसारका बिनाश किया करता है। ज्ञानके बिना जो वैदिक कर्म्ममें प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, वह प्रवृत्ति ही जन्म मरण प्रवाहरूपी क्लेशसे प्रजासमूहको पीड़ित करती है। आप ज्ञानी और सब तरहसे निरा-मय हैं; इसलिये आप लोगोंके बीच क्या किसीने कभी ऐकात्म ज्ञान प्राप्त किया है। कोई कोई वितण्डावादी शास्त्रके यथार्थ मर्म्मको न जानके काम और क्रोधमें फंसनेसे अहङ्कारके वशमें हुआ करते हैं। शास्त्र-दस्यु पुरुष शास्त्रोंके अभिप्रायको न जानके स्वगत, स्वजा-तीय और विजातीय, इन तीनों परिच्छेदोंसे रहित ब्रह्मवस्तुका अपलाप करते हुए शम दम आदिके साधनमें उदासीनता अवलम्बन करके दम्भ और लोभके वशमें हुए हैं। वैसे मनुष्य केवल फलाभावको देखते हैं; ज्ञान, ऐश्वर्य्य आदि गुणोंको आत्मसंवेद्य समझके दूसरेमें योजना नहीं करते; उन तमोगुण प्रधान देहधारियोंके लिये तम ही परम अव-लम्ब है, जिस जन्तुकी जैसी प्रकृति है, वह वैसी ही प्रकृतिके वशवर्त्ती होता है, उसके काम, क्रोध, द्वेष, दम्भ, मिथ्या, मद आदि प्रकृतिसे उत्पन्न हुए गुणसमूह सदाही वर्द्धित हुआ करते हैं। जो सिद्धान्त वाक्यमें निरत यतिलोग परमग-तिकी कामना किया करते हैं, वे ध्यानपूर्व्वक यह सब आलोचना करके शुभाशुभ परित्याग करें।

स्यूमरश्मि बोले, हे ब्रह्मन्! मैंने शास्त्रके अनुसार कर्म्मकी प्रशस्तता और सन्नास धर्म्मकी अप्रशस्तता वर्णन की है, शास्त्रके अर्थको बिना जाने वाक्यके बिलाससे प्रवृत्ति नहीं होती। न्यायके अनुगत जो कुछ व्यवहार है, वही शास्त्र और जो अन्यायके अनुगत है, वही अशास्त्र है, ऐसी ही जनश्रुति श्रुतिगोचर हुआ करती है। यह निश्चय है, कि शास्त्रके अतिरिक्त कोई प्रवृत्ति नहीं होती, वेदशास्त्रोंसे जो भिन्न है, वही अशास्त्र है, यह वेदमें प्रतिपन्न है। अविज्ञानके वशमें होकर हतप्रज्ञ हीनबुद्धि तमसे आवृत बहुतेरे पुरुष जो प्रत्यक्ष-सिद्ध पदार्थका ही मान्य किया करते हैं, वे लोग केवल इस लोकको ही देखते हैं, वे कृतहानि और अकृताभ्यागम आदि शास्त्रके दोषोंको नहीं देखते। जो अन्यान्य अवैदिक मतको अवलम्बन करके लोकायत नास्तिक लोग शोक किया करते हैं, हम लोग वैसे मतका आसरा करनेसे उन्हीं लोगोंकी भांति शोकभाजन होंगे। शीत उष्ण आदि स्पर्श पशु, पामर और पण्डित आदि सबके पक्षमें समान हैं, हम लोग आत्माका अनुभव न कर सकनेसे स्वरूप निष्ठासे रहित हीनविषयोंमें बुद्धियुक्त हैं, इस ही लिये अज्ञानसे छिपे हुए हैं। सिद्धान्त-विषयमें सब तरहसे उपापोह-कुशल होकर आपने अनन्त वाक्य प्रकाश करके एक मात्र सुखार्थी वर्ण और चारों आश्रमोंके प्रवृत्ति विषयमें हमारे चित्तकी शान्तिरूपी जलसे अभिषिक्त किया। केवल योगयुक्त सब तरहसे कृतकृत्य चित्त बिजयी पुरुष शरीर मात्रके सहारे धर्म्माचरण करने और वेदवाक्यको अवलम्बन करके "मोक्ष है," यह वचन कहनेमें समर्थ होता है, अर्थात् जो लोग सब तरहसे धर्म्माचरण कर सकते हैं, उन्हें ही "मोक्ष है,"—इस वचनका उल्लेख करना उचित है। जिस पुरुषने नीतिशास्त्रको अतिक्रम किया है, सब लोग ही उसकी निन्दा किया करते हैं, उसके पक्षमें कुटुम्बगण संश्रित कर्म्म करना अत्यन्त दुष्कर है; दान, अध्ययन, यज्ञ, सन्तानोत्पत्ति और समस्त व्यवहार, यह सब करनेपर भी यदि किसीको मोक्ष न हो, तब उस कर्त्ता और कार्य्यको धिक्कार है और वैसा परिश्रम भी निरर्थक है। यदि वेदवाक्यका अमान्य करके कोई ऊपर कहे हुए कर्म्मोंको न करे, तो उसकी नास्तिकता प्रकाशित होती है। हे भगवन्! इसलिये मैं आपके समीप एक मोक्ष विषयका ही वृत्तान्त विस्तारके सहित शीघ्र सुननेकी अभिलाष करता हूं, आप उसे वर्णन करिये; मैं आपके निकट आया हूं आप मुझे शिक्षा दीजिये। हे ब्रह्मन्! आप मोक्षके विषयको जिस प्रकार जानते हैं, मैं वैसी ही शिक्षाकी इच्छा करता हूं।

२६८ अध्याय समाप्त।

कपिल मुनि बोले, वेद ही सब लोगोंके धर्म्म शिक्षामें प्रमाण है; इसलिये वेद वाक्यका अमान्य करना किसीको भी उचित नहीं है। सब वेदवाक्य दो भागोंमें विभक्त हैं, पहला कर्म्मोपासना काण्ड, दूसरा ज्ञानकाण्ड, इन दोनों काण्डोंको ही सबको जानना योग्य है। जो लोग कर्म्मोपासना काण्डमें निपुण हुए हैं, वे परब्रह्मको जाननेके अधिकारी होते हैं। गर्भाधान आदि वैदिक संस्कारोंसे जो शरीर शुद्ध होता है, वैसे पवित्र शरीरवाले ब्राह्मण ब्रह्मविद्याके योग्य पात्र हुआ करते हैं। मोक्षके उपयोगी चित्त शुद्धि रूप कर्म्म फलोंकी सीमा नहीं है, इसे प्रत्यक्ष देखिये। यह फल अनुमान् वा ऐहिक प्रमाणके जरिये नहीं जाना जाता; यह इस लोकमें सात्त्विक प्रत्यक्ष फल है। धन संग्रहसे रहित, लोभहीन, राग, द्वेष वर्जित निष्काम पुरुष धर्म्म जाननेसे यज्ञ

किया करते हैं। सत्पात्रको दान करनेसेही धनकी सार्थकता होती है, जिन लोगोंने कभी पाप कर्म्मका सहारा नहीं लिया है, अग्निहोत्र आदि कर्म्मोंके अनुष्ठानमें सदा रत रहते हैं; जिनके मनके सङ्कल्प पूर्ण रीतिसे सिद्ध हुए हैं। पवित्र ज्ञानमें निश्चय हुआ है; जिन लोगोंमें क्रोध, असूया, अहङ्कार और मत्सरता नहीं है; ज्ञानके उपाय श्रवण, मनन और निदिध्यासनमें जिनकी निष्ठा है; जन्म, कर्म्म और विद्या, ये तीनों ही जिनके पवित्र हैं, जो सब प्राणियोंके हितमें रत हैं, वेही सत्पात्र हैं; उन्हें ही दान करनेसे धनकी सार्थकता हुआ करती है।

पहिले समयमें जनक आदि राजा और याज्ञवल्क्य आदि बहुतेरे ब्राह्मण गृहस्थ होके भी निज कर्म्मोंका समादर करते हुए विधिपूर्व्वक योगके अनुष्ठानमें नियुक्त थे। वे सब भूतोंमें समदर्शी सरलतायुक्त, सन्तुष्ट और ज्ञाननिष्ठ थे, धर्म्म और धर्म्म फल सत्य सङ्कल्पत्व आदि उन लोगोंको प्रत्यक्ष दीखते थे। वे लोग पवित्र और निरुपाधिक ब्रह्ममें श्रद्धावान् थे; वे लोग पहले चित्तशुद्धि करके व्रताचरण करते थे। कृच्छ्रकाल और दुर्गम स्थलमें भी सब कोई मिलके धर्म्मका अनुष्ठान करते थे, वही उन लोगोंका परम सुख था। उन लोगोंको किसी प्रकार प्रायश्चित्त करनेकी आवश्यकता नहीं थी, वे लोग सत्य धर्म्मको अवलम्बन करके अत्यन्त तेजस्वी हुए थे; विषय बोध करानेवाली बुद्धिसे अनुरुद्ध नहीं होते थे, धर्म्म छल, और वञ्चना आदि नहीं जानते थे; वे सब कोई इकट्ठे होकर अहिंसामय धर्म्मका अनुष्ठान करते थे, उन लोगोंके लिये कदाचित् कोई प्रायश्चित्त विहित नहीं था; क्यों कि जो लोग वैसी रीतिसे निवास करें, उनके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है; मैंने ऐसा सुना है कि दुर्व्वल और असमर्थ पुरुषोंके ही लिये प्रायश्चित्त विहित हुआ है।

इस ही भांति अनेक प्रकारके यज्ञ करनेवाले प्राचीन ब्राह्मण तीनों वेदोंको अनुशीलन करते हुए बृद्ध हुए हैं, पवित्रता और सच्चरित्रताके सहारे यशस्वी हुए हैं, तथा नित्य यज्ञ करते हुए आशाबन्धन विमोचन किये हैं, उन ज्ञानवान् ब्राह्मणोंके यज्ञ और वेदोक्त कर्म्म आगमके अनुसार निर्व्वाहित हुआ करते हैं; जिन लोगोंके काम क्रोध वशीभूत हुए हैं, वे दुस्तर कर्म्मोंको किया करते हैं, उनके सम्बन्धमें सब शास्त्र और समस्त सङ्कल्प यथा समय फलित होते हैं। जो लोग निज कर्म्मोंसे विख्यात् और स्वभावसे ही पवित्र चित्तवाले हैं, उन सरल, शमनिरत, निज कर्म्मोंको विधिपूर्व्वक करनेवाले योगियोंके सब कर्म्म अनन्त ब्रह्ममें अर्पित हुआ करते हैं, हमलोगोंकी शाश्वती श्रुति इसे प्रतिपादन करती है। वैसे अदीन स्वभाववाले दुष्कर कर्म्मशील निज कर्म्मसे सम्पूर्ण काम मनुष्योंकी तपस्या ही अविद्याको निवर्त्तन करनेमें समर्थ होती है। जो सदाचार साधुओंके आपद्धर्म्माचारसे विभिन्न है, सावधानतासे युक्त और काम क्रोधके जरिये अनभिभूत है, जिसके बीच पहले समयमें सब वर्णोंकी समस्त जातियोंमें अपूज्य लोगोंका पूजन और पूजने योग्य पुरुषोंका अपूजन आदि कोई व्यतिक्रम नहीं था; ब्राह्मण लोग कहते हैं, सूक्ष्म धर्म्मके अनुष्ठानमें असमर्थ पुरुषोंके जरिये वह एक ही सदाचार चार प्रकारके रूपसे विभक्त होकर चारों आश्रमोंके नामसे प्रसिद्ध हुआ है। उस अद्भुत, प्राचीन, नित्य, निश्चल सदाचारकी विधिपूर्व्वक अवलम्बन करनेसे साधु पुरुष गृहसे निकलके अर्थात् सन्न्यास धर्म्मके सहारे परम गति प्राप्त किया करते हैं। चारों आश्रमोंके बीच जो लोग ऊपर कही हुई विधिसे सदाचार अवलम्बन करते हैं, उनको मोक्ष हुआ करती है। कोई कोई घरसे निकलके बनवासी होते हैं, कोई ब्रह्मचारी होके गृहस्थाश्रम अवलम्बन

करके अन्तमें जङ्गलका सहारा लेते हैं। उक्त सदाचारसे युक्त द्विजाति लोग मुक्त होकर ज्योतिर्मय शरीर धारण करके आकाशमण्डलमें निजस्थानपर स्थित तारा वा नक्षत्रोंकी भांति दीख पड़ते हैं। ज्ञानी पुरुष वैराग्यसे वेदविहित अनन्त ब्रह्मत्व पाते हैं, वैसे पुरुषोंको यदि फिर संसारमें आना पड़े तो वे प्रारब्ध-कर्म्मसे योनि-प्रवेशके निमित्त पापफल दुःखादिसे लिप्त नहीं होते। जिन लोगोंने इस ही प्रकार ब्रह्मचर्य्य करते हुए शुश्रुषु होकर आत्मनिश्चय किया है और योगयुक्त हैं, वेही यथार्थ ब्राह्मण हैं; उनसे अतिरिक्त ब्राह्मण विप्रकी आकृति मात्र अर्थात् काठके हाथीकी भांति केवल नाम धारी हैं; इस ही प्रकार शुभ वा अशुभ कर्म्महो पुरुषके नामको प्रकाशित करते हैं। जिनकी चित्तवृत्ति शुद्ध हुई है, वे त्वं पदार्थका दर्शन और तत्त्वमसि वाक्यके अर्थको जाननेसे सब वस्तुओंको ही अनन्त ईश्वरमय समझते हैं, यही हम लोगोंकी शाश्वती श्रुति है। वासना-हीन, शुद्धस्वभाववाले मोक्षके अभिलाषी मनुष्योंको जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्त्याभिमानी विश्व तैजस प्राज्ञोक्त चौथी अर्थात् परमात्म विषय-वाली जो उपनिषत विद्या है। उस ही निमित्त धर्म्म सब वर्ण और आश्रमोंके सम्बन्धमें साधारण हुआ करता है, अर्थात् सम, दम, उपरम, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधि स्वरूप धर्म्म वर्णाश्रम मात्रमें ही साधारण है। शुद्ध निरुद्धचित्त-वाले ब्राह्मण तुरीय ब्रह्मको पाते हैं। सन्तोष मूल त्यागशाली पुरुषको ज्ञानका अधिष्ठान कहा जाता है; जिसमें अपवर्गप्रद, ब्रह्म साक्षात्कारस्वरूपिणी नित्यवृत्ति वर्त्तमान है, वही सम्प्रदाय परम्परासे प्रचलित यतिधर्म्म है। उक्त धर्म्म आश्रमान्तर धर्म्मसे मिश्रित हो, अथवा न हो वैराग्यके अनुसार आराध्य होता है। कल्याणके लिये परम पुरुषके समीप जो मनुष्य गमन करते हैं, उनके बीच दुर्व्वल पुरुष भी अवसन्न नहीं होते, पवित्र पुरुष ब्रह्मपदकी कामना करके संसारसे मुक्त होते हैं।

स्यूमरश्मि बोले, हे ब्रह्मन्! जो लोग प्राप्त धनसे विषयसम्भोग; दान, यज्ञ और अध्ययन करते हैं, तथा जो लोग सन्न्यास धर्म्मको अवलम्बन करते हैं; परलोकमें उनके बीच कौन पुरुष स्वर्गविजयी होता है। मैं इसे ही पूछता हूं, आप मेरे समीप इस ही विषयको यथावत् वर्णन करिये।

कपिल मुनि बोले, सब दान ही शुभ और गुण युक्त हैं, परन्तु त्याग करनेसे जो सुख होता है, उसे दान करनेवाले अनुभव नहीं कर सकते। त्यागशील पुरुष अनेक इष्ट सुख लाभ करते हैं, इसे तुम भी अनुभव करते हो।

स्यूमरश्मि बोले, आप गृहस्थ होके भी ज्ञाननिष्ठ हैं, कर्म्मकाण्ड विषयमें भी निश्चय किये हैं; परन्तु आश्रममात्रमें ही निष्पत्तिकालमें एक ही मोक्ष फल वर्णित हुआ करता है। ज्ञान और कर्म्मकी तुल्य प्रधानता अथवा प्रधान और निकृष्ट भावसे कुछ विशेषता नहीं दीख पड़ती; इसलिये आप इस विषयको विधि पूर्व्वक मेरे निकट यथावत् वर्णन करिये।

कपिल मुनि बोले, कर्म्मसे स्थूल और सूक्ष्म शरीर शोधित हुआ करता है। ज्ञान ही मोक्षका साधन है, सब कर्म्मोंके सहारे चित्तके दोष दूर होनेपर ब्रह्मानन्द स्वरूप प्रीतिज्ञानमेंही निवास किया करती है। सब प्राणियोंमें दयारूपी अनृशंसता क्षमा, शान्ति, अहिंसा, सत्य वचन, सरलता, अद्रोह, अनभिमान, लज्जा, तितिक्षा और कर्म्मसे उपरति, येही ब्रह्म प्राप्तिके उपाय हैं; ज्ञानी लोग इस ही उपायके सहारे परमपद पाते हैं। विद्वान् पुरुष मन ही मन इस ही प्रकार कर्म्म निश्चय मालूम करे; सब भांतिसे शान्त स्वभाव, पवित्र चित्त, ज्ञाननिष्ठ और सन्तोष युक्त ब्राह्मणोंकी जो गति मिलती है, उसे ही परमगति कहा जाता

है, जिसमें परम गतिका लक्षण निरूपित हुआ है, वही वेदोंसे जानने योग्य कर्म्म ब्रह्म-स्वरूप है, कर्म्मके अनुष्ठान और ब्रह्मज्ञान लाभ करके भी जो लोग निरहङ्कारस्वरूपसे दीखते हैं, पण्डित लोग उन्हें ही वेदज्ञ कहते हैं; उनके अतिरिक्त मनुष्य भाथी नामक चर्म्म कोष स्वरूप है, अर्थात् वे लोग केवल सांस लेते और छोड़ते हैं। वेदवित् पुरुष जानने योग्य सब विषयोंको ही जानते हैं, वेदमेंही समस्त ज्ञेय विषय प्रतिष्ठित हैं; वर्त्तमान, अतीत और अनागत, सब विषयोंकी ही निष्पत्ति वेदमें विहित हुई है। यह दृश्यमान् जगत् प्रतीति कालमें वर्त्तमान रहता है, और वाधकालमें इसका अभाव होता है, अर्थात् ज्ञानवान् मनुष्योंके निकट प्रतीयमान जगत् मायानगरकी भांति असत् है, और अज्ञानियोंके निकट यह यथार्थमें असत् होनेपर भी बज्रपिञ्जरेकी भांति दृढ़ हुआ करता है। तत्त्वज्ञ पुरुषोंके समीपमें यह परिदृश्यमान् सब विषय ही सत्, असत् और निर्विशेष सविशेष लय स्थान सब शास्त्रोंमें ही यह निष्पत्ति निरूपित हुई है। क्षेत्र, आराम, गृह-पशु, पत्नी, गृह पुत्र, शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और अहङ्कार पर्य्यन्त परित्यक्त होनेपर निर्विकल्प समाधि अवस्थामें पूर्णरीतिसे आत्मदर्शन हुआ करता है, यह वेदवाक्यसे निश्चित हुआ है। मनुष्योंके जो एक सौ आनन्द हैं, गन्धर्व्वोंका वह एक ही आनन्द है, इत्यादि क्रमसे सौगुणा वर्द्धमान् ब्रह्मानन्दमें अकामहत श्रोत्रियको जो आनन्द होता है, वही आनन्द स्वरूप सन्तोष अपवर्गोंके अनुगत और प्रतिष्ठित होरहा है, जो अबाधित सत्य स्वरूप अधिष्ठानत्व निबन्धन है, जो मूर्त्तामूर्त्त प्रपञ्चात्मक है, जो सबके आत्मस्वरूपसे विदित और स्थावर जङ्गम शरीरोंमें तदात्म-निबन्धनसे जानने योग्य है, जो दुःखरहित सुख स्वरूप है, जो सबसे श्रेष्ठ मङ्गलमय है, और जिससे अव्यक्तकी उत्पत्ति हुई है, वही अपरिणामी परब्रह्म है। तेज अर्थात् इन्द्रिय बिजयकी सामर्थ क्षमा अर्थात् बुराई करनेवाले पुरुषके विषयमें भी क्रोध न करना, शान्ति अर्थात् निष्कामत्व निबन्धन सब कार्य्योंसे उपरति, ये तीनों ही शुभ और अनामय हैं अर्थात् दुःखसे रहित सुख प्राप्तिके हेतु हैं, जो लोग बुद्धिके सहारे देखते हैं, वेही बुद्धि नेत्रवाले पुरुषोंके उक्त क्षमा तेज और शान्तिके जरिये अज्ञान दूर होने पर आकाशकी भांति आसक्ति रहित अकृत्रिम जिस सनातन ब्रह्मको पाते हैं, ब्रह्मवित्से अभिन्न उस परब्रह्मको नमस्कार करता हूं।

२६९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत पितामह! वेदोंमें धर्म्म, अर्थ और काम, ये तीनों बिषय वर्णित हैं, तिसके बीच कौनसे विषयका लाभ होना उत्तम है आप मेरे समीप उसे ही कहिये।

भीष्म बोले, पहले समयमें कुण्डधारने प्रीतिपूर्व्वक भक्तके निमित्त जो उपकार किया था, इस बिषयमें वही इतिहास तुम्हारे समीप कहता हूं। किसी निर्द्धन ब्राह्मणने फलकी कामनासे "धर्म्म करूंगा" इस ही प्रकार चिन्ता की थी। अनन्तर धर्म्म भी धनसाध्य है, ऐसा बिचार करके यज्ञके लिये धनकी इच्छासे घोर तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुआ। अन्तमें वह दृढ़निश्चय करके देवताओंकी पूजा करने लगा, परन्तु देवपूजा करके भी अभिलषित धन न पाया। अनन्तर उसने सोचा, कि ऐसा भी कोई देवता है, जो मनुष्योंसे जड़ीकृत न हुआ हो और जो शीघ्र ही मेरे ऊपर प्रसन्न हो सके। ब्राह्मण चित्त स्थिर करके इस ही प्रकार चिन्ता कर रहा था, उस ही समय देवताओंके अनुचर कुण्डधार नाम जलधरको अपने समीपमें स्थित देखा। उस महाबाहु कुण्डधारको देखते

ही उसे भक्ति उत्पन्न हुई, सोचा कि यही मेरे कल्याणका उपाय करेगा ; क्यों कि इसका रूप कल्याणकारी बोध होता है। ऐसा सोचके वह अकेला उस देवके निकट जाके बोला, यही मुझे शीघ्र ही बहुतसा धन दान करेगा। अनन्तर ब्राह्मण अनेक प्रकारसे माला, गन्ध और धूप आदि बहुतसी पूजाकी सामग्रियोंसे जलधरकी पूजा की। थोड़े ही समयके बीच जलधर सन्तुष्ट होकर ब्राह्मणके उपकारके विषयमें अत्यन्त तत्पर होकर यह वचन बोले, कि ब्रह्महत्या करनेवाले, मद्य पीनेवाले, चोर और भग्नव्रती पुरुषोंकी निष्कृतिके विषय साधुओंके जरिये विहित हुए हैं ; परन्तु कृतघ्न पुरुषोंकी किसी प्रकार भी निष्कृति नहीं है। आशाका पुत्र धर्म, असूयाका पुत्र क्रोध और निष्कृतिके भी लोभ नामक पुत्र है ; परन्तु कृतघ्न लोग पुत्रलाभके अधिकारी नहीं होते। अनन्तर उस ब्राह्मणने उस समय कुशकी शय्यापर सोनेसे कुण्डधारके प्रभावसे सब भूतोंको देखा ; तपस्या इन्द्रियविजय और भक्तिवशसे भोगवर्ज्जित वह शुद्धचित्तवाला ब्राह्मण रात्रिमें कुण्डधारके विषयमें भक्तिका निदर्शन देखा। हे युधिष्ठिर ! उसने उस समय देखा कि "महाभाग महातेजस्वी माणिभद्र वहांपर देवआज्ञासे याचकोंको फल बांट रहे हैं" । उसने देखा, कि वेही देवता लोग शुभकर्म करनेवाले पुरुषोंको राज्य तथा धन आदि दान कर रहे हैं और अशुभ कर्म्म करनेवालोंसे पहलेके दिये हुए राज्य आदि प्रत्याहरण कर रहे हैं। हे भरतकुलतिलक ! अनन्तर महातेजस्वी कुण्डधार यक्षोंके सम्मुख देवताओंके समीप पृथ्वीपर गिरे। देवताओंके वचनके अनुसार महात्मा माणिभद्र पृथ्वीपर गिरे हुए कुण्डधारसे बोले, हे कुण्डधार ! क्या कामना करते हो ?

कुण्डधार बोले, यह ब्राह्मण मेरे ऊपर अत्यन्त भक्तियुक्त हुआ है; इसलिये देवता लोग यदि मुझपर प्रसन्न हुए हों, तो इसके ऊपर कुछ कृपा करें, मैं यही कामना करता हूं, और उसके सिद्ध होनेसे मैं सुखी होऊंगा ।

अनन्तर माणिभद्र देवताओंके वचनके अनुसार महातेजस्वी कुण्डधारसे फिर कहने लगे। माणिभद्र बोले, हे कुण्डधार ! उठो, उठो तुम्हारा कल्याण हो ; तुम कृतकृत्य और सुखी होगे , यह विप्र यदि धनार्थी हुआ हो, तो इसे धन दान करूं । यह ब्राह्मण तुम्हारा सखा है, इससे यह जितना धन मांगे, वह असंख्य होनेपर भी देवताओंकी आज्ञासे मैं इसे वही दूंगा, हे युधिष्ठिर ! कुण्डधार मनुष्य जीवन अत्यन्त चञ्चल और अस्थिर हैं, ऐसा समझकर ब्राह्मणकी तपस्याके निमित्त मनोयोगी हुए ।

कुण्डधार बोले, हे धन देनेवाले ! मैंने ब्राह्मणके लिये धनकी प्रार्थना नहीं की है, मैंने अनुगत भक्तके ऊपर कृपा की है, इसलिये दूसरी प्रकारकी कुछ अभिलाष करता हूं, रत्नपूरित पृथ्वी अथवा बहुतसे रत्न सञ्चय की मैं भक्तके लिये इच्छा नहीं करता हूं, यह धार्म्मिक हो, यही मेरा अभिलाष है ; इसकी बुद्धि धर्ममें रत हो, यह धर्मको उपजीव्य करके जीवनका समय बितावे और यह धर्मको ही प्रधान जानके धर्मात्मा हो, मेरा यह अनुग्रह सफल होवे ।

माणिभद्र बोले, राज्य और विविध सुख ही धर्मके फल हैं, इससे यह शारीरिक क्लेशसे रहित होके सदा उन सब फलोंको भोग करे।

भीष्म बोले, महायशस्वी कुण्डधारने बार बार धर्महीके लिये प्रार्थना की, क्यो कि निष्काम धर्म ही काम और अर्थसे उत्तम है, अनन्तर देवता लोग उस कुण्डधारके ऊपर प्रसन्न हुए ।

माणिभद्र बोले, हे कुण्डधार ! सब देवता लोग तुम्हारे और इस ब्राह्मणके ऊपर प्रसन्न हुए हैं, यह ब्राह्मण धर्मात्मा होगा और

इसकी मति धर्म्ममें ही अविचलित भावसे स्थित रहेगी। हे युधिष्ठिर! अनन्तर जलधर दूसरे पुरुषके लिये अत्यन्त दुर्लभ इच्छानुसार वर पाके प्रसन्न और कृतकार्य्य हुए, द्विज सत्तम भी अपने समीपमें सूक्ष्म चीरवस्त्र देखकर निर्वेद-युक्त हुए।

ब्राह्मण बोला, मैं जब धर्म्मज्ञानसे अनभिज्ञ हूं, तब और कौन पुरुष धर्म्मज्ञ होगा। इस-लिये मैं धर्म्मके जरिये जीवन व्यतीत करनेके लिये वनमें गमन करूं, वही मेरे विषयमें कल्या-णकारी है।

भीष्म बोले, हे महाराज! वह द्विजवर निर्वेद होकर देवताओंकी कृपासे उस समय वनमें जाके घोर तपस्या करने लगा; क्रमसे वायुभक्षी होकर अनेक वर्ष बिताया; तौभी उसका जीवन नष्ट न होनेसे वह अद्भुत बोध हुआ। बहुत समयतक धर्म्ममें श्रद्धावान् और उग्र तपस्यामें वर्त्तमान रहनेसे उसे दिव्य दृष्टि उत्पन्न हुई, ऐसी बुद्धि प्रकट होनेपर उसने विचारा, कि अब मैं प्रसन्न होकर यदि किसीको धन दान करूं, तो मेरा वचन मिथ्या न होगा। अनन्तर वह प्रसन्न बदन होकर फिर तपस्या करने लगा। जो वह केवल अभि-ध्यान किया करता था। सिद्ध होके बार बार उसहीकी चिन्ता करने लगा, कि मैं प्रसन्न होकर यदि किसी पुरुषको राज्य दान करूं, तो वह शीघ्र ही राजा होजाय, मेरा वचन कदापि मिथ्या न होगा। हे भारत! उस ब्राह्मणकी तपस्याके योगसे सुहृदतासे आक-र्षित होकर कुण्डधारने उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिया, अनन्तर द्विजवरने सहसा कुण्डधारको समागत देखके विस्मित होकर उन्हें आलिङ्गन कर विधिपूर्व्वक पूजा की। उस समय कुण्डधार बोले, हे द्विजवर! तुम्हें उत्तम दिव्य नेत्र प्राप्त हुआ है, इसलिये तुम इस ही नेत्रसे राजाओंकी गति और सब लोकोंको देखो, तब ब्राह्मण कुण्ड-धारके वचनके अनुसार दूरसे ही दिव्य नेत्रके सहारे सहस्रों राजाओंको नरकमें डूबते देखा।

कुण्डधार बोले, तुम इच्छानुसार मेरी पूजा करके यदि दुःख पाते हो, तब मैंने तुम्हारा क्या किया। तुम्हारे ऊपर मेरी कृपा ही क्या हुई; देखो देखो, तुम फिर विशेष रूपसे अव-लोकन करो, मनुष्य किस लिये अभिलषित वस्तुकी कामना करता है; स्वर्गका द्वार सबके ही लिये अवरुद्ध होरहा है, विशेष करके मनु-ष्यको वहां प्रवेश करनेका अधिकार नहीं है।

भीष्म बोले, अनन्तर उस ब्राह्मणने काम, क्रोध, निद्रा, तन्द्रा, लोभ, मद और आलसको दूर करके कितने ही पुरुषोंको स्थित देखा। उस समय कुण्डधार बोले, इन्हीं सब लोगोंके जरिये स्वर्गका द्वार संरुद्ध होरहा है, क्यों कि मनुष्योंसे देवताओंको भय हुआ करता है। उक्त द्वारको रुद्ध करनेवाले देव वाक्यके अनु-सार सब प्रकारसे विघ्न उत्पन्न करते हैं; देव-ताओंके जरिये बिना अनुज्ञात हुए कोई पुरुष धार्म्मिक नहीं होता, इस समय तुम तपस्याके सहारे राज्य और धनदान करनेमें समर्थ हुए हो।

भीष्म बोले, अनन्तर वह धर्म्मात्मा ब्राह्मण सिर झुकाके कुण्डधारके चरणपर गिरा और उनसे कहा, आपने मेरे ऊपर बहुत ही कृपा की है। पहले मैंने काम और लोभके वशमें होकर आपके स्नेहको न जानके जो असूया की है, आप मेरे उस अपराधको क्षमा करिये, कुण्डधारने उस द्विजवरसे "मैंने क्षमा किया," ऐसा कहके दोनों भुजाओंसे उसे आलिङ्गन करके उस ही स्थानमें अन्तर्हित हुए। ब्राह्मण भी उस समय कुण्डधारकी कृपासे तपस्याके जरिये सिद्धि प्राप्त करके सब लोकोंमें विचरने लगा। उसने आकाश मार्गमें गमन, सङ्कल्पित विषय सिद्धि और धर्म्म शक्ति तथा योगसे जो परमगति मिलती है, वह सब प्राप्त की थी। देवता, ब्राह्मण साधु लोग, यक्ष, मनुष्य और

चारण गण इस लोकमें धार्म्मिकोंका ही सत्कार किया करते हैं। धनवाले तथा भोगा-भिलाषी लोगोंका कोई कभी भक्तिके सहित सत्कार नहीं करता। तुम्हारी बुद्धि जब धर्म्ममें रत हुई है, तब देवता लोग तुम्हारे ऊपर अवश्य ही भलीभांति प्रसन्न हैं, धनमें सुखका लेशमात्र नहीं है, धर्म्म ही परम सुख हुआ करता है।

२७० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! अनेक प्रकारके यज्ञ और तपस्याका फल चित्तशुद्धि अथवा ईश्वर प्रीति है, इसलिये धर्म्म वा स्वर्ग फलके निमित्त विनियुक्ति यज्ञ कैसा है।

भीष्म बोले, यज्ञके लिये जो उञ्छवृत्ति ब्राह्मणका प्राचीन इतिहास नारद मुनिके जरिये वर्णित हुआ था, इस विषयमें मैं तुम्हारे समीप उसे ही वर्णन करता हूं।

नारदमुनि बोले, धर्म्म प्रधान विदर्भ राज्यमें उञ्छवृत्ति नाम कोई ब्राह्मण था; वह यज्ञरूपी भगवान् विष्णुकी पूजा करनेके लिये अत्यन्त समाहित हुआ। उस समय सावां धान्य भक्षणीय था, सुवर्च्चपर्णी और सुवर्च्चला शाक स्वाभाविक तीते और विरस होनेपर भी उसके तपो-प्रभावसे स्वादिष्ट हुए थे। हे शत्रु तापन! उसने वनके बीच सब प्राणियोंकी अहिंसाके जरिये सिद्धिलाभ करके फल मूलके सहारे स्वर्ग साधन यज्ञ किया था। पुष्करमालिनी नाम उसकी एक साध्वी भार्य्या थी; वह सदा व्रत करनेसे अत्यन्त कृशित हुई थी; पतिको हिंसामय यज्ञ करता हुआ जानके वह यज्ञकी कुछ भी अनुकूलता न करनेसे स्वामीके जरिये यज्ञपत्नी रूपसे यज्ञ स्थानमें लायी गई, उस समय पत्नी पतिके शापभयसे अत्यन्त डरकर उसके स्वभावकी अनुवर्त्तिनी हुई! स्वयं गलित मयूर पुच्छसे उसका वस्त्र विस्तारित था, यज्ञ कामना न रहनेपर भी पतिकी आज्ञाके वशमें होके उसने उस समय यज्ञ किया था; सदंशमें उत्पन्न होकर यदि कोई भार्य्याका अनादर कर स्वयं यज्ञ करे, तो वह अधार्म्मिक होता है, इस ही लिये उन्होंने सपत्निक होकर यज्ञ किया था। उस वनमें निकटमेंही सहवासिक नाम एक मृग था। वह उस उञ्छवृत्तिके निकट आके बोला तुमने अत्यन्त दुष्कर कर्म्म किया है, मन्त्र और अङ्गहीन होकर यदि यह यज्ञ विकृत हो, तो तुम मुझे अग्निमें डालकर आनन्दित होके स्वर्गमें जाओ। अनन्तर सवितृमण्डलकी अधि-ष्ठात्री देवी सावित्री उस यज्ञमें स्वयं प्रकट होकर "मेरे निमित्त इस पशुको अग्निमें होम करो" ऐसा वचन कहनेपर उस ऋषिने उन्हें उत्तर दिया; "मैं सहवासीका वध न कर सकूंगा" सावित्री ऐसा उत्तर पाके निवृत्त होकर यज्ञकी अग्निमें प्रविष्ट हुई। बोध होता है, यज्ञमें कुछ विघ्न है, वा नहीं, उसे जाननेके लिये उन्होंने रसातलमें प्रवेश किया। तब मृग फिर उस बद्धाञ्जलि सत्य संज्ञक उञ्छवृत्ति ऋषिके समीप अपनेको अग्निमें होम करनेको प्रार्थना की। सत्य ऋषिने हरिनका शरीर स्पर्श करके उसे गमन करनेकी आज्ञा दी। हरिन उनकी आज्ञाके अनुसार आठ पग जाके फिर निवृत्त होके बोला, हे सत्य! तुम्हारा मङ्गल हो, तुम मेरी हिंसा करो, मैं मरके सद्गति पाऊंगा; मैं तुम्हें दिव्य नेत्र देता हूं। उससे तुम रमणीय अप्सराओं और महानुभाव गन्धर्व्वोंकी विचित्र विमानोंपर देखो। अनन्तर सत्य-संज्ञक ऋषि 'मुझे ऐसा ही सुख हो' इस ही प्रकार स्पृहयालु नेत्रसे पशुओंके सहित यजमानोंकी स्वर्ग-गतिको बहुत समय तक देखकर और हरिनको स्वर्गाभिलाषी समझके 'हिंसा करनेसे ही स्वर्गवास होगा,' ऐसा निश्चय किया। धर्म्मने किसी कारणसे अनेक

वर्षतक हरिनका रूप धरके उस वनमें वास किया था। उन्होंने उसकी ही निष्कृतिके लिये आत्माको मृगत्वसे मोचन किया, नहीं तो हिंसा कभी यज्ञकी समीचीन विधि नहीं है। "पशु वध करके स्वर्ग लाभ करूंगा।" ऋषिके ऐसे अभिप्रायसे ही महत् तपस्या पूर्ण रीतिसे नष्ट हुई; इसलिये हिंसा कदापि यज्ञ विषयमें हित कारिणी नहीं है। अनन्तर भगवान् धर्म्मने स्वयं उस ऋषिको यज्ञ याजन कराया, ऋषि भी तपस्याके सहारे हिंसामय यज्ञमें अनभिला-षिणी पुष्करधारिणी पत्नीके सहित परम समा-धिको प्राप्त हुए; अहिंसामय धर्म्म ही सब फलोंको देनेवाला है, हिंसा-धर्म्म स्वर्गप्रद रूपसे हितकर मात्र है। ब्रह्मवादी पुरुष जिस धर्म्मका आचरण करते हैं, मैंने तुम्हारे निकट उस ही सत्य धर्म्मका विषय वर्णन किया।

२७१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! मनुष्य किस प्रकार पापात्मा होता है। किस भांति धर्म्मा-चरण करता है। किससे निर्वेद लाभ करता है, और किस तरहसे ही मोक्ष लाभ किया करता है।

भीष्म बोले, हे भरत कुलतिलक! सब धर्म्म ही तुम्हें विदित है, इस केवल मर्य्यादाके निमित्त तुम प्रश्न करते हो; इसलिये निर्व्वेदके सहित मोक्ष, पाप और धर्म्मके विषयको सुनो। शब्दादि विषय-पञ्चकके अर्थको जानके मनुष्य इच्छानुसार उसमें प्रवृत्त होता है, उन सब विषयोंके प्राप्त होनेपर उसमें काम अथवा द्वेष उत्पन्न होता है। अनन्तर मनुष्य विषयके निमित्त यत्नवान् होकर महत् कर्म्म आरम्भ करता है, और अभिलषित रूप और गन्धोंको बार बार सेवन करनेकी इच्छा किया करता है। क्रम क्रमसे उसमें राग द्वेष और मोहकी उत्पत्ति होती है। जो पुरुष लोभ मोहमें अभिभूत और राग द्वेषमें आसक्त हुआ है; उसकी बुद्धि धर्म्ममें प्रविष्ट नहीं करती, वह छल पूर्व्वक धर्म्माचरण किया करता है, कपटताचरण पूर्व्वक धर्म्मानुष्ठान करता है, और कपटतासे ही धन प्राप्त करनेकी इच्छा किया करता है। हे कुरुनन्दन! कपटताके जरिये धनप्राप्ति सिद्ध होनेसे उसहीमें बुद्धि निविष्ट करता है; पण्डितों और सुहृदोंके निवारण करने पर भी पित्रादि द्रोहरूपी पापाचरण करनेकी इच्छा किया करता है; अहार और व्यवहार विषयमें लज्जा छोड़के सुखी होता है; इस ही प्रकार न्याया-नुगत विधि बोधित उत्तर देनेमें लज्जित नहीं होता। हे भारत! वैसे मनुष्योंके राग मोह जनित कायिक वाचिक, और मानसिक तीनों प्रकारके अधर्म्म वर्द्धित हुआ करते हैं। वह सदा दूसरेके अनिष्टकी चिन्ता किया करता है, जिससे दूसरेका अनिष्ट हो, वैसा ही वचन कहता है, और दूसरोंकी बुराई किया करता है। साधु पुरुष उस अधर्म्ममें प्रवृत्त मनुष्यके दोषोंको देखते हैं, और उसके समान पापाचारी पुरुष वैसे मनुष्यके सहित बन्धुतावन्धन किया करते हैं; ऐसा पापाचारी पुरुष जब इस लोक-मेंही सुखलाभ करनेमें समर्थ नहीं होता, तब परलोकमें उसे सुख कहां है; यहांतक जो कुछ कहा, उसे पापात्माका लक्षण जानो। अब धर्म्मात्माका लक्षण कहता हूं, उसे मेरे समीपमें सुनो। जो लोग दूसरोंके हितकर कार्य्योंको धर्म्म समझते हैं, वह कल्याण लाभ करते और कल्याणकारी धर्म्मके सहारे अभि-लषित गन्तव्य स्थानमें गमन किया करते हैं। जो लोग बुद्धिसे पहले ही ऊपर कहे हुए दोषोंको अवलोकन करते हैं, और सुख दुःखके विचारमें चतुर होकर साधुओंकी सेवा किया करते हैं; उन्हें साधु सदाचार और अभ्यास निबन्धनसे ज्ञान, बुद्धि तथा धर्म्ममे रति होती

है, और वे लोग धर्म्मको ही उपजीव्य करके जीवन व्यतीत किया करते हैं। अनन्तर वे धर्म्मसे धन प्राप्त करनेमें मन लगाते हैं और जिसमें सब गुण देखते हैं, उसहीका मूल सींचा करते हैं; इस ही प्रकार व्यवहार करनेसे मनुष्य धर्म्मात्मा होते और साधु मित्र लाभ करते हैं; वे लोग मित्र और धन लाभ निबन्धनसे इस लोक तथा परलोकमें आनन्दित होते हैं।

हे भारत! शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध विषयमें मनुष्य जो संकल्प सिद्धि लाभ करता है, उसे ही पण्डित लोग धर्म्मका फल कहा करते हैं। हे युधिष्ठिर! वैसे मनुष्य धर्म्म फल प्राप्त करके हर्षित नहीं होते, वह तृप्त न होकर ज्ञाननेत्रके सहारे वैराग्य लाभ करते हैं। प्रज्ञावत्त मनुष्य जिस समय काममें और शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्धमें अनुरक्त होते हैं, उस समय उनका चित्त चिन्ताके वशमें नहीं होता। वे कामसे रहित होते हैं। परन्तु धर्म्मको परित्याग नहीं करते। वे सब लोकोंको नाशमान देखके धर्म्मफल स्वर्गादिके परित्याग विषयमें यत्नवान् होते हैं। अनन्तर वे लोग उपायके अनुसार मोक्षके लिये अनुष्ठान करके धीरे धीरे निर्व्वेद लाभ करते और पापयुक्त कर्म्म परित्याग किया करते हैं। इस ही प्रकार मनुष्य धर्म्मात्मा होते और परम मोक्ष पाते हैं। हे तात भारत! तुमने जो पाप धर्म्म, मोक्ष और निर्व्वेदका विषय मुझसे पूछा था, वह सब मैंने तुम्हारे समीप कहा। हे युधिष्ठिर! इसलिये तुम सब अवस्थामें ही धर्म्ममें प्रवृत्त रहना। हे कौन्तेय! जो लोग धर्म्म-पथमें निवास करते हैं, उन लोगोंको शाश्वती सिद्धि प्राप्त होती है।

२७२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आपने कहा है, कि उपायके अनुसार मोक्ष होती है, अनुपायके जरिये मोक्ष नहीं होती; परन्तु वह कौनसा उपाय है, उसे मैं विधिपूर्व्वक सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, हे पापरहित महाप्राज्ञ! तुम निपुण भावसे सदा जिस उपायके जरिये मोक्षकी खोज किया करते हो, तुममें ही उसका निदर्शन समुचित होता है, अर्थात् मोक्षके उपाय विषयमें निज बुद्धि ही साक्षी देती है। घट बनानेके समय जैसी बुद्धि होती है, घट उत्पन्न होने पर वह नहीं रहती अर्थात् साध्य विषयमें चिकिर्षा बुद्धि उत्पन्न होती है; परन्तु सिद्धवस्तु ब्रह्मविषयमें आवरणका अपगम होनेपर ज्ञानमात्र स्थित रहता है; इस लिये मोक्ष धर्म्म विषयमें प्रकाशकी भांति वस्तुतत्वके अभिव्यञ्जक शम दम आदि निवृत्ति धर्म्ममें दूसरे कोई प्रवृत्ति धर्म्म कारण नहीं होते। यज्ञ आदि कर्म्म निष्काम पुरुषोंकी चित्त शुद्धि करके निवृत्ति-धर्म्मके हेतुमात्र हुआ करते हैं। पूर्व्व-समुद्र-गामी पथ कभी पश्चिम समुद्रमें गमन नहीं करता; इसलिये तुम एकमात्र मोक्षके ही मार्गको विस्तारपूर्व्वक मेरे समीप सुनो। धीर पुरुष क्षमाके जरिये क्रोधको नष्ट करे, संकल्प बर्ज्जित होके कामको त्यागे और आलस त्यागके सात्विक धर्म्म भगवद्ध्यान आदिसे निद्राको नष्ट करनेमें समर्थ होवे; सावधानताके जरिये लोकापवाद भयको रक्षा करे; 'त्वं' पदार्थके अनुशीलनसे श्वास निरोध करे और धैर्य्यसे इच्छा, द्वेष और बनिताभिलाषको निवृत्त रखे; तत्ववित् पुरुष तत्वाभ्यासके जरिये भ्रम, संमोह और अनेक कोटिके संशयोंको परित्याग करे और ज्ञान अभ्यासके सहारे निद्रा और प्रतिभा अर्थात् अननुसन्धान और अन्यानुसन्धान परिबर्ज्जित करे; दाह आदिसे अनुत्पादक हित, जीर्ण और परिमित भोजन आदिके जरिये श्लेष्म अत्तीर्ण प्रभृति उपद्रव तथा ज्वर वा अतीसार आदि रोगोंकी जय करे; सन्तोष,

हेतु, लोभ, मोह और तत्वदर्शन अर्थात् सब विषयोंके अनर्थक रूप दर्शन निबन्धन विषयोंको जय करे, करुणासे अधर्म्म और प्रतिपालनके जरिये धर्म्मको जय करे। उत्तरकालके जरिये आशाको जीते और अभिलाष त्यागकर अर्थकी जय करनेमें प्रवृत्त होवे। धीर पुरुष विषयोंकी अनित्यताके निमित्त स्नेह, वायु निग्रहके जरिये क्षुधा, करुणासे निज चित्तकी समुन्नति, परितोषसे तृष्णा, उद्योगसे आलस और वेदमें विश्वास करके विपरीत तर्कोंको जय करे। मौनावलम्बनसे बहुत बोलना और पराक्रमके जरिये भय परित्याग करे, बुद्धिसे बचन और मनको स्थिर करे; ज्ञाननेत्र अर्थात् शुद्ध 'त्वं' पदार्थके बोधसे उस बुद्धिको संयम करे। ज्ञान अर्थात् शुद्ध "त्वं" पदार्थको आत्मबोधके जरिये अर्थात् यह आत्मा ब्रह्म है ऐसे ज्ञानके जरिये संयत करे और बुद्धिवृत्तिको परम चैतन्य प्रकाशके जरिये नियमित करे, अर्थात् इन्द्रियोंको मनमें मनको बुद्धिमें बुद्धिको 'त्वं' पदार्थ में, त्वं पदार्थको ब्रह्माकार वृत्तिमें और उस वृत्तिको विशुद्ध आत्मामें क्रमसे लीन करके निज रूपमें निवास करे। ऋषि लोग जो पञ्चयोग दोषोंको जानते हैं, उन्हें नष्ट करके प्रशान्त और पवित्र कर्म्मवाले मनुष्योंको इसे अवश्य जानना चाहिये।

योग साधनके लिये यत-वाक्य होके काम, क्रोध, लोभ, भय और स्वप्न, इन पाचों दोषोंको त्यागके परमात्माकी सेवा करे; ध्यान, अध्ययन, दान, सत्य, बचन, लज्जा, सरलता, क्षमा, पवित्रता, अहारशुद्धि और इन्द्रिय-संयम, इन सबसे तेजकी वृद्धि तथा पापका नाश होता है। जो उक्त विधिके अनुसार आचरण करते हैं, उनके सब संकल्प सिद्ध होते और विज्ञानमें प्रवृत्ति हुआ करती है। वे पापरहित, तेजस्वी लघु भोजन करनेवाले जितेन्द्रिय मनुष्य काम क्रोधको वशमें करके ब्रह्मपदकी प्राप्तिके लिये अभिलाष करें। वेदान्त श्रवण आदि अभ्यास निबन्धनसे अमूढ़त्व, वैराग्यसे अवहूलै सन्तोष और क्षमाके जरिये दृढ़ता जनित काम क्रोधका त्याग परिपूर्ण कामनाके हेतु अदीनता, दर्प और अहंकारहीनता, निर्भयत्व निबन्धनसे अनुद्वेग और सदा किसी निर्द्दिष्ट स्थानमें अनवस्थिति, येही मोक्षके मार्ग हैं; ये मार्ग प्रसन्न निर्म्मल और पवित्र हैं, और कामना वा अकामनासे शरीर मन तथा बचनके नियमोंको भी मोक्षका मार्ग कहा जाता है। मोक्ष साधनमें प्रवृत्त पुरुषको निष्काम योग अवश्य करना चाहिये।

२७३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, असित देवल और नारदके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासका प्राचीन लोग इस विषयमें उदाहरण दिया करते हैं। बुद्धिमान् मनुष्योंमें मुख्य वृद्ध देवल मुनिको सुखसे बैठा हुआ जानकर नारद मुनिने जीवोंकी उत्पत्ति और लयका विषय पूछा।

नारदमुनि बोले, हे ब्रह्मन्! यह दृश्यमान् स्थावर जङ्गमात्मक जगत् किससे उत्पन्न हुआ है, और प्रलयके समय किसमें जाके लीन होता है। आप मेरे निकट उसे ही कहिये।

असित मुनि बोले, परमात्मा निखिल प्राणियोंकी बुद्धि-बासनासे प्रेरित होकर कर्म्मोंद्भवके समय जो आकाश आदिकोंसे जरायुजादि जीवोंको उत्पन्न करता है, भूतचिन्तक मनीषी लोग उन्हें ही पञ्चभूत कहा करते हैं। अधर्म्ममें रत, अधर्म्म त्यागनेकी इच्छा करनेवाले, धर्म्मारम्भी और धर्म्ममें रत, कलि, द्वापर, त्रेता तथा सत्य संज्ञक चतुर्युगात्मक काल बुद्धिसे प्रेरित होकर पञ्च महाभूतोंसे सब जीवोंको उत्पन्न करता है। यह काल, बुद्धि और पञ्चमहाभूत, चैतन्यस्वरूप ईश्वर तथा अचेतन

प्रकृति, इन सबसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु है,— जो लोग ऐसा कहते हैं, उनके बचन अत्यन्त अलीक हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। हे नारद! इन पञ्च महाभूतोंको नित्य निश्चल और स्थिर जानो, ये अत्यन्त महत् तेजराशि स्वरूप हैं, काल स्वभाविक ही इनमें षष्ठमरूपसे कहा जाता है। आकाश, जल, पृथ्वी, वायु और अग्नि इन पञ्चभूतोंसे पृथक् दूसरा कोई पदार्थ नहीं था, इसमें सन्देह नहीं है। ऊपर कहे हुए पञ्चभूतोंसे पृथक् दूसरा कुछ भी नहीं है, जो लोग ऐसा कहते हैं, वे कोई प्रमाण वा युक्ति अवलम्बन नहीं करते,—यह निःसन्दिग्ध है। सब कार्य्योंके अनुगत उक्त पञ्चभूत और काल जिसके कार्य्य हैं, उसे ही असत् शब्द वाच्य जानो। पञ्च महाभूत, काल अर्थात् जीव, भावनापूर्व्वक संस्कार और अज्ञान ये अष्टभूत अनादि वा अखण्डरूपसे विद्यमान होरहे हैं; ये ही स्थावर जङ्गम सब भूतोंकी उत्पत्ति और लयके स्थान हैं। स्थावर जङ्गम सब जीव उक्त अष्टभूतोंसे उत्पन्न होकर उन्हींमें लीन होजाते हैं। उक्त भूतोंको अवलम्बन करके सब जन्तु पांच प्रकार विनष्ट हुआ करते हैं, जीवोंका शरीर भूमिमय है, कान आकाशमय है, नेत्र अग्निमय, है, वेग वायुमय है और रुधिर जलमय हुआ करता है। नेत्र, नासिका, कान, जिह्वा और त्वचा, ये पांचो इन्द्रियां इन्द्रिय विषय शब्द आदि ज्ञानके द्वारस्वरूप हैं ऐसा ऋषि लोग कहा करते हैं। देखना, सुनना, सूंघना, छूना और चखना; ये पांचो गुण पञ्च इन्द्रियोंमें युक्तिके अनुसार पांच प्रकारसे निवास करते हैं। रूप, गन्ध, रस, स्पर्श और शब्द, ये पांचो गुण पञ्च इन्द्रियोंके द्वार हैं, पांच प्रकारसे इनकी प्राप्ति हुआ करती है इन्द्रियोंके सहारे रूप, गन्ध, रस, स्पर्श और शब्द, ये सब गुण मालूम नहीं होते; परन्तु क्षेत्रज्ञ अर्थात् विज्ञानात्मा इन्द्रियोंके जरिये इन सब गुणोंका ज्ञान किया करता है। इन्द्रियोंसे चित्त श्रेष्ठ है, चित्तसे मन उत्तम है, मनसे बुद्धि उत्तम है और बुद्धिसे क्षेत्रज्ञ परम श्रेष्ठ है। जीव पहले इन्द्रियोंके जरिये सामान्य रीतिसे पृथक् पृथक् विषयोंका ज्ञान करता है; फिर मनसे उन विषयोंका विचार करके बुद्धिसे निश्चय किया करता है। अध्यात्मविचार करनेवाले महर्षि लोग चित्त, श्रोत्रादि पांचो इन्द्रिय, मन और बुद्धि, इन आठोंको ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं; हाथ, पैर, गुदा, मेहन और मुख, इन पांचोंको कर्म्मेन्द्रिय कहा करते हैं, इसे सुनो। जल्पना और अहार साधनके निमित्त मुखको इन्द्रिय कहा जाता है, दोनों पांव गमनेन्द्रिय हैं, दोनों हाथ कार्य्य करनेकी इन्द्रिय हैं और गुदा तथा उपस्थ मल मूत्र और कामिक उत्सर्गके हेतु इन्द्रिय रूपसे वर्णित हुआ करती हैं। पञ्च इन्द्रियोंके बीच बल षष्टरूपसे माना जाता है; ज्ञान, चेष्टा और इन्द्रियोंके सब गुणोंको शास्त्रके अनुसार मैंने वर्णन किया।

जब इन्द्रियां श्रमके कारण निज कर्म्मोंसे विरक्त होती हैं, उस समय इन्द्रियोंके सम्यक रूपसे परित्याग निबन्धनसे मनुष्य निद्रित हुआ करते हैं; इन्द्रियोंके शान्त होनेपर यदि मन शान्त न होकर विषय सेवन करे, तो जानना चाहिये, कि उसे ही स्वप्न दर्शन कहा जाता है। जाग्रत समयके सात्विक, राजसिक और तामसिक भोगप्रद कर्म्मयुक्त कर्म्मोद्भावक सब भाव स्वप्नकालमें भी प्रकाशित हुआ करते हैं। आनन्द ऐश्वर्य्य, ज्ञान और परम वैराग्य, ये सब सात्विकी वृत्ति हैं, सतोगुण अवलम्बन करनेवाले पुरुषोंकी स्मृत वासना निमित्तीभूत उन आनन्द आदि भावोंकी स्वप्न समयमें भी अवलम्बन करती है, अर्थात् सात्विक पुरुष जाग्रद्वासनाके हेतु भूत आनन्द आदिको स्वप्नकालमें भी स्मरण किया करता है। कर्म्म गतिका-अनुसारिणी वासना सात्विक, राजसिक, और ताम-

सिक जीवोंके बीच जो कोई जीव जाग्रत अवस्थामें जिस भावसे संस्थित रहते हैं, स्वप्नकालमें भी उस ही भावको स्मरण करा देती है, अर्थात् जाग्रत अवस्थामें किये हुए कर्म्मोंके संस्कार जनित वासनाके प्रभावसे स्वप्नकालमें भी उक्त सब भाव आलोचित होते हैं; इसलिये जाग्रत और स्वप्न दोनों अवस्थामें ही तुल्य भाव हैं परन्तु सुषुप्ति अवस्थामें मनके अभावसे समस्त कल्पनाका अभाव होता है, इससे उस अपुनरावृत्ति स्वभाव-नित्य सुषुप्तिको ही मुक्ति कहा जाता है।

पूर्व्वोक्त चौदह इन्द्रियाँ अर्थात् पञ्चकर्म्म इन्द्रिय, पञ्चज्ञानेन्द्रिय बलात्मक प्राण, चित्त, मन, बुद्धि और सत्, रज, तमोगुण, इन सत्तरहोंको अवलम्बन करके भोक्ता जीव शरीरमें निवास करता है; अथवा शरीरधारियोंके ऊपर कहे हुए सब गुण शरीरके सहित संस्थित होते हैं; शरीरका बियोग होनेपर वे शरीरयुक्त नहीं रहते; पश्चान्तरसे यह पञ्चभौतिक शरीर पञ्चभूतोंको समष्टिमात्र है; इसमें एकमात्र अनुभव और भोक्ता शरीरके सहित पूर्व्वोक्त अठारह गुण निवास करते हैं। उक्त उन्नीस गुण जठरानलके सहित बीस होकर पञ्चभौतिक शरीरके आश्रित रहते हैं। इन बीस गुणोंके अतिरिक्त इक्कीसवां कोई महान् पदार्थ प्राणके सहित इस शरीरको धारण करता है और उसहीके प्रभावसे शरीरका नाश हुआ करता है। जैसे घटनाशके बिषयमें मुद्गर निमित्तमात्र है, पुरुष ही घट भेद किया करता है, वैसेही देह धारण वा देहनाशमें वायु निमित्त मात्र है, महान् पदार्थ ही उसका कर्त्तृपदवाच्य है। जैसे घट आदि वाह्य पदार्थ उत्पन्न होके कुछ समयके अनन्तर विनष्ट होते हैं, वैसेही जीव पुण्य पापोंके शेष होनेपर पञ्चत्वको प्राप्त होता है। कालक्रमसे फिर सञ्चित पुण्य पापके जरिये प्रेरित होकर कर्म्मसम्भव शरीरमें प्रवेश करता है। जैसे मनुष्य शीर्ण गृहसे गृहान्तरमें गमन करता है, वैसेही जीव काल प्रेरित होकर अविद्याकाम कर्म्मके जरिये देहान्तर सिद्ध करता हुआ एक शरीरको छोड़के दूसरा शरीर धारण किया करता है। कृतनिश्चय बुद्धिमान् लोग देह सम्बन्धी मरण आदिके बिषयमें शोक नहीं करते, देह और पुत्रादिकोंके सहित आत्माका सम्बन्ध न रहने पर भी भ्रमवशसे सम्बन्ध देखनेवाले मूर्ख लोग मरन आदि निबन्धनसे शोक किया करते हैं। यह जीव किसीका भी नहीं है, और इसका भी कोई नहीं है; जीव सदा शरीरमें सुख दुःख भोगते हुए अकेला ही निवास करता है। जीवको जन्म मृत्यु नहीं होती, कालक्रमसे तत्वज्ञानके जरिये कर्म्म-फल नष्ट होने पर भी देह परित्याग करनेसे मोक्ष प्राप्त हुआ करती है। जीव पुण्य पापमय शरीर व्यतीत करते हुए कर्म्म-चयनिबन्धनसे शरीर नष्ट होने पर फिर ब्रह्मभाव लाभ करता है। पुण्यपाप नाशके निमित्त सांख्य ज्ञान बिहित हुआ करता है; इसलिये पुण्य-पाप नष्ट होनेपर पण्डितलोग जीवको ब्रह्मभावसे परमगति अवलोकन करते हैं।

२७४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! मैं अत्यन्त पापशील और निठुर हूं; क्यों कि धनके लिये पिता, भ्रातापुत्र, पौत्र स्वजन और सुहृदोंका नाश किया है। अर्थसे जो तृष्णा उत्पन्न हुआ करती है, हमने उसके बशमें होकर पाप कार्य्य किया है, इस समय उस तृष्णाको किस प्रकार निबृत्त करूं।

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस बिषयमें जिज्ञासु माण्डव्यके निकट विदेहराजके कहे हुए इस पुरातन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। विदेहराजने कहा था, मेरा कुछ भी

नहीं है, इसीसे मैं परम सुखसे जीवन व्यतीत करता हूं; सारी मिथिला नगरीके भस्म होने पर भी मेरा कुछ न जलेगा। ब्रह्मलोक पर्य्यन्त सब समृद्ध विषय विवेकियोंको अत्यन्तही दुःख स्वरूप है, सम्र्द्धिशून्यता सदा अज्ञानी पुरुषोंको मोहित किया करती है। इस लोकमें जो कुछ कामसुख है, अथवा जो कुछ दिव्य महत् सुख देखा जाता है, वह तृष्णाक्षयजनित सुखके सोलह अंशका एक अंश भी नहीं है। काल-क्रमसे वर्द्धित गऊकी सींग जैसे वृद्धिको प्राप्त होती है, वैसेही बढ़ते हुए वित्तके सहित तृष्णाकी वृद्धि हुआ करती है। जिस समय जिस किसी वस्तुमें ममता उत्पन्न होती है, उसका नाश परितापका हेतु हुआ करता है। कामका अनुरोध कर्त्तव्य नहीं है, काममें रति होनी ही दुःखकी मूल है; धर्म्म और अर्थ प्राप्त होने पर उसे उपभोग करना उचित है, और कामना उपस्थित होने पर उसे परित्याग करना चाहिये। विद्वान पुरुष सब भूतोंमें अपने सहित समान उपमा धारण करें और कृतकृत्य तथा शुद्ध चित्त होकर सर्व्वसङ्ग परित्याग कर-नेमें यत्नवान् हों। वे लोग सत्य, मिथ्या, शोक, हर्ष, प्रिय, अप्रिय, भय और अभय परित्याग करके प्रशान्त वा निरामय होवें। दुर्म्मति पुरु-षोंसे जो अत्यन्त दुस्त्यज है, पुरुषके जीर्ण होने पर भी जो जीर्ण नहीं होती, जो प्राणियोंकी प्राणान्तिक रोगरूपी है, उस तृष्णाको जो लोग परित्याग करते हैं, वेही सुखभागी होते हैं। धर्म्मात्मा पुरुष निज चरित्रको कलंकरहित चन्द्रमाकी भांति निरामय देखके इस लोक और परलोकमें परम सुखसे कीर्त्ति लाभ करते हैं, द्विजश्रेष्ठ माण्डव्य विदेहराजके ऊपर कहे हुए वचनको सुनके प्रसन्न हुए और उनके वच-नका सम्मान करके मोक्षपथ अवलम्बन किया।

२७५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! इस सब प्राणियोंके क्षय करनेवाले समयके बीतते रहने पर किस प्रकार कल्याणका आसरा करना उचित है, आप उसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! इस विषयमें पुराने लोग पिता-पुत्र सम्वादयुक्त जिस प्राचीन इतिहासको कहा करते हैं उसे सुनो। हे पृथापुत्र! वेदाध्ययनमें रत किसी ब्राह्मणके मेधावी नाम एक बुद्धिमान् पुत्र था। मोक्ष-धर्म्मकी व्याख्यामें निपुण, लोक तत्वको जानने वाला वह पुत्र वेदविहित कार्य्योंमें रत पितासे प्रश्न करनेमें प्रवृत्त हुआ।

पुत्र बोला, हे तात! मनुष्योंको परमायु शीघ्र नष्ट हुआ करती है, इसलिये धीर पुरुष किस विषयको मालूम करके कार्य्य करें? आप फल सम्बन्धको अतिक्रम न करके विस्तारपू-र्व्वक मेरे समीप उसे वर्णन करिये; जिसे सुनके मैं धर्म्माचरण करनेमें समर्थ हूंगा।

पिताने कहा, हे पुत्र! ब्रह्मचर्य्य अवलम्बनके जरिये सब वेदोंको पढ़कर पितृलोक पानेके लिये पुत्र कामना करे, अनन्तर विधिके अनुसार अग्नि स्थापित करके यज्ञकार्य्य पूर्ण करते हुए गमन करके मौनव्रती होनेकी अभिलाषी होवे।

पुत्र बोला, हे पिता! लोकोंके इस प्रकार सब भांतिसे ताड़ित होने तथा घिरे रहने और निरन्तर अमोघापात होनेपर भी आप निर्व्वि-कार चित्तसे धीरकी तरह क्या कह रहे हैं।

पिताने कहा, हे पुत्र! सब लोक किस प्रकार ताड़ित तथा किससे घिरे हैं, और अमोघा क्या है, जो गिर रही है, क्या तुम मुझे भय दिखाते हो।

पुत्र बोला, सब लोक मृत्युसे ताड़ित और जरासे घिरे हुए हैं, और परमायु हरणके कारण अमोघारात्रि प्रतिदिन आती जाती है, इसलिये उसे आप क्यों नहीं जान सकते हैं। जब यह जानता हूं कि यद्यपि मृत्यु इस

स्थानमें उपस्थित नहीं है, परन्तु प्रति क्षण प्राणियोंको आक्रमण करती है; तब मैं ज्ञाना-वरणसे अनावृत होके किस प्रकार व्यवहार करते हुए समय व्यतीत करूंगा। जब कि प्रति रात्रिके बीतनेपर सबेरा होते ही आयुक्षीण होती है, तब बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि दिनको निष्फल समझे। कामनाओंके पूर्ण न होते ही मृत्यु मनुष्योंको आक्रमण करती है; इसलिये थोड़े जलमें रहनेवाली मछलि-योंकी तरह मृत्युके आक्रमणके समयमें कौन पुरुष सुख करनेमें समर्थ होगा। फूल गूंथ-नेकी तरह जब मनुष्य लोग काम्य कर्म्मोंके भोगनेके निमित्त तत्पर होते हैं, तब जैसे बाघिन भेड़के बच्चोंको ग्रहण करके अनायास ही चली जाती है, वैसे ही मृत्यु उन्हें ग्रहण करके प्रस्थान करती है। जो कुछ कल्याणसा-धक कर्म्म हैं, उसे आज ही समाप्त करना उचित है। यह समय जिसमें तुम्हें अतिक्रम न करे, कर्त्तव्य कार्य्योंके पूरा न होते ही मृत्यु मनु-ष्योंको आक्रमण किया करती है। जो कलह करना होगा उसे आज ही करना योग्य है, अपराह्नके कर्त्तव्य कर्म्मोंको पूर्व्वाह्नमें ही करना चाहिये। मनुष्योंके कर्त्तव्य कर्म्म पूरे हुए हैं, वा नहीं; उसके लिये मृत्यु कभी उन्हें आक्रमण करनेमें उपेक्षा नहीं करती। मनुष्य युवा अवस्थामें ही धर्म्मशील होवे, क्योंकि जीवनका समय अत्यन्त अनित्य है; आज किसका मृत्यु काल उपस्थित होगा, इसे कौन कह सकता है। धर्म्म-कार्य्य करनेसे इसलोकमें कीर्त्ति और परलोकमें अनन्त सुख मिलता है।

मनुष्य लोग मोहमें फंसके पुत्र कलत्र आदिके लिये कर्त्तव्य वा अकर्त्तव्य कार्य्योंको करके उनका पालन करते हैं, जैसे शेर सोये हुए हरिनको पकड़के चल देता है, वैसे ही पुत्रवान् पशुओंसे युक्त संसारमें फंसे हुए मानस मनुष्योंको मृत्यु ग्रहण करती हुई प्रस्थान करती है। जो पुरुष काम भोगसे तृप्त नहीं हुआ और पुत्र कलत्र आदि परिवारोंकी अधिक कहांतक कहें, आत्माको भी वञ्चित करके धन सञ्चय किया करता है, उसे मृत्यु इस तरह आक्रमण करती है, जैसे ग्राहक भेड़के बच्चे पकड़ता है। 'यह कार्य्य किया है, इसे करना होगा और दूसरे कार्य्य पूरे नहीं हुए'—इस प्रकारके वासना सुखमें आसक्त पुरु-षोंको मृत्यु ग्रास किया करती है। जिस पुरु-षने क्षेत्र आपण और भवनमें आसक्त होके किये हुए सब कर्म्मोंका फल नहीं पाया है, उसे भी मृत्युके वशमें होना पड़ता है। क्या निर्व्वल, क्या बलवान्, क्या मूढ़, क्या पण्डित, क्या कादर, क्या साहसी, कोई क्यों न हो; कामनाके सब विषयोंको प्राप्त न होते ही होते मृत्यु उन लोगोंको ग्रहण करके गमन करती है। जरा, मरन, व्याधि और अनेक कारणोंसे उत्पन्न हुए दुःख जब शरीरमें उपस्थित होरहे हैं, तब आप किस प्रकार अरोगीकी तरह निवास करते हैं। देहधारी जीवोंके जन्मते ही जरा मृत्यु उनके नाशके लिये उनका अनुगमन करती है; इसलिये स्थावर जङ्गम आदि उत्पन्न होनेवाली वस्तु मात्र इन दोनोंसे आक्रान्त होरही हैं। गांवमें वास करनेके लिये लोगोंकी जो अनुराग हुआ करता है, वह मृत्युका सुख स्वरूप है और जो अरण्य कहके विख्यात् है, ऐसी जनश्रुति है, कि वही इन्द्रियोंका विविक्त वासस्थान है। ग्राममें निवास करनेवा-लोंकी अनुराग बन्धन रस्सीरूपी है; सुकृतवान् लोग उसे काटके गमन करते हैं, पापी पुरुष उसे नहीं काट सकते। मन, वचन और शरी-रसे जो कभी प्राणियोंकी हिंसा नहीं करते, वे जीते और अर्थमें बाधा करनेवाले हिंसक जीव तथा चोरोंसे हिंसित नहीं होते। जरा-व्याधि-रूपी मृत्युकी सेना जब आगमन करती है तब सत्यके अतिरिक्त कोई कभी उसे निवारण नहीं

कर सकता। क्यों कि उस सत्यमें ही अमरण रूपी अमृत सदा स्थित रहता है; इसलिये मनुष्य ब्रह्म प्राप्तिके निमित्त यम-नियमरूपी सत्यव्रतका आचरण करते हुए चिदाभासरूपी जीवके ऐक्यसाधन, सत्ययोगमें रत, वेदबाक्यमें श्रद्धावान् और सदा जितेन्द्रिय होकर सत्यके जरियेही मृत्युको जीते। सत्य और मृत्यु, ये दोनों शरीरमें स्थित हैं, उसमेंसे मनुष्य मोहके कारण मृत्युके वशमें होते हैं; और सत्यसे अमृतत्व लाभ करते हैं; इसलिये मैं अहिंसामें रत और काम क्रोधसे रहित होके सुख दुःखको समान जानके सत्यार्थी और कुशली होकर अमर्त्तकी तरह मृत्युको त्यागूंगा,। उत्तरायण कालमें निवृत्ति मार्ग अभ्यासरूपी शान्ति यज्ञमें रत, दान्त, उपनिषदोंके अर्थ बिचाररूप ब्रह्म यज्ञके अनुष्ठानमें अनुरक्त मननशील, प्रणव जप-रूपी वाक् यज्ञ, परब्रह्मका मननरूपी मानस यज्ञ और स्नान, पवित्रता तथा गुरु सेवा आदि कर्मयज्ञोंका अनुष्ठान करूंगा। मेरे समान बुद्धिमान् पुरुष पिशाचके निष्फलचैत्र यज्ञकी तरह हिंसासाध्य पशु बधके जरिये किस प्रकार यज्ञ करनेमें समर्थ होंगे। जिनके बचन, मन, तपस्या त्याग और योग ये पांचो सदा परब्रह्ममें परिणत होते हैं, वे परम पद प्राप्त करते हैं। विद्याके समान नेत्र, सत्यके समान तपस्या, रागके समान दुःख और सन्न्यासके समान दूसरा सुख नहीं है। मैं अपुत्र होकर भी आत्माके जरिये आत्मजरूपके उत्पन्न और आत्मनिष्ठ होऊंगा; पुत्र मेरा उद्धार न करेगा। एकाकिता, समता, सत्यता, सच्चरित्रता, मर्य्यादा दण्डबिधान, सरलता और सब कार्य्योंमें आसक्ति हीनता, इन सबके समान ब्राह्मणोंके विषयमें और कुछ भी धन नहीं है। हे ब्रह्मन्। आपको जब अवश्य ही कालके ग्रासमें पड़ना होगा, तब फिर आपको धन, बन्धु और पुत्र कलत्रोंसे क्या प्रयोजन है। अन्तःकरणसे निष्ठावान होके आत्माको प्राप्त करनेकी इच्छा करिये; आपके पिता और पितामह आदि कहां गये हैं, उसे बिचारिये।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! पिताने पुत्रका बचन सुनके जैसा किया था, तुम भी सत्य धर्म्ममें तत्पर होके वैसा ही अनुष्ठान करो।

२७६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, मनुष्य किस प्रकारके स्वभाव, कैसा आचरण, कैसा ज्ञान और किसका अवलम्बन करनेसे निश्चल निर्व्विशेष ब्रह्मको प्राप्त होते हैं।

भीष्म बोले, मोक्ष धर्म्ममें रत पथ्य परिमित और पवित्र अन्नादि भोजन करनेवाले मनुष्य निश्चल निर्व्विशेष परमधाम पाते हैं। विवेकी पुरुष निज गृहसे निकलके लाभ हानिमें राग द्वेषसे रहित और मननशील होकर उपस्थित काम्य बस्तुओंमें निरपेक्ष होते हुए प्रव्रज्याश्रम अवलम्बन करें, नेत्र, मन, और बचनसे किसीको भी दूषित न करें, तथ किसीके प्रत्यक्ष वा परोक्ष दोषोंको किसीसे न कहे; सब लोगोंके बीच किसीकी भी हिंसा न करे; सूर्य्यकी भांति केवल एक ही दिन एक स्थानमें बिचरे यह मनुष्य जीवन पाके किसीके सङ्ग शत्रुता न करे; लोक निन्दाको सहन करे; किसीको उद्देश्य करके अहङ्कार प्रकाश न करे, लोग उसके विषयमें आक्रोश प्रकाश करें, तो वह उन लोगोंसे प्रिय बचन कहे और क्रोधित होने पर भी अनुकूल बचन कहे; जन समाजमें अनुकूल वा प्रतिकूल आचरण न करे; बिपद-ग्रस्त न होनेसे पहले निमन्त्रित होकर किसीके गृहपर भिक्षा ग्रहण न करे, मूढ़ पुरुषोंके धूलि फेंकने और धिक्कार देने पर भी वह चपलता रहित और निज धर्म्ममें निष्ठावान् होके उन्हें बचनमात्रसे भी अप्रिय बाक्य न कहे; वह

दयावान होवे और जिघांसु लोगोंके विषयमें क्रूरता न करे; निर्भय और आत्मश्लाघासे रहित हो अर्थात् 'मैं धन्य हूं' इस प्रकार अपनी बड़ाई न करे, मौनव्रत अवलम्बी सन्न्यासी जब देखे कि गृहस्थोंके गृह धूंएंसे रहित, मूषल शब्द वर्ज्जित अग्नि शून्य हुए हैं, गृहस्थ लोग भोजन कर चुके हैं, और हाथमें परिवेषण पात्र ग्रहण करनेवाले पुरुषोंका आना जाना बन्द हुआ है, उस समय भिक्षा पानेकी अभिलाष न करे; उदरपूर्त्ति करके भोजन लाभमें अनादर प्रदर्शित कर प्राण धारणके लिये जो कुछ भोज्य वस्तु आवश्यक हों, वही भोजन करे, भोज्य वस्तुओंके अभावमें किसीको भी हिंसा न करे और प्राप्त होनेपर भी हर्षित न होवे; सबके योग्य स्रक चन्दन आदि साधारण लाभके लिये उत्सुक न होवे और अत्यन्त पूजित होके भी भोजन न करे; क्योंकि सम्मानके सहित अन्नादि लाभको वैसे पुरुष निन्दा किया करते हैं; अन्नके भूसी आदि दोषोंको घोषणा न करे और किसी गुणके रहने परभी उसकी प्रशंसा न करे; निर्ज्जन स्थानमें सोने और बैठनेको अभिलाष करे; सूने स्थान, वृक्षके मूल, वन अथवा गुफा, इन सब स्थानोंके बीच दूसरेकी अजानकारीमें गमन करके उक्त स्थानोंमें वास करे; अचल अर्थात् उत्क्रान्ति गतिके जरिये गतिशून्य तथा कूटस्थ वा कूटकी भांति निर्व्विकार भावसे निवास करके योगके अनुरोध और सङ्ग त्याग विषयमें समदर्शी होवे, दया द्वेष आदिके जरिये सुकृत वा दुष्कृत दोनोंमेंसे किसीकी भी कामना न करे। जो नित्यतृप्त अत्यन्त सन्तुष्ट प्रसन्न वदन हैं, और जिनकी सब इन्द्रियां प्रसन्न हुई हैं; जो निर्भय, जपमें तत्पर हैं तथा मौनव्रत अवलम्बन किये हैं उन्होंने ही यथार्थ वैराग्य अवलम्बन किया है; जो बार बार जीवोंकी संसारमें जाति आति देखकर निस्पृह और समदर्शी होके फल मूल आदि खाके जीवन बिताते हुए स्वभावसे ही शान्तचित्त, लघुभोजी और जितेन्द्रिय होकर वचन, मन, क्रोध, हिंसा, उदर और उपस्थके वेग, इत्यादि इन सब वेगोंको सहते हैं, वेही तपस्वी हैं, लोकनिन्दा उनके हृदयको दुःखित नहीं कर सकती। प्रशंसा और निन्दाके मध्यवर्त्ती वा समदर्शी होकर निवास करना परिव्राजक आश्रमका परम पवित्र पथ है।

महानुभाव परिव्राजक सब भांतिसे इन्द्रियोंको दमन कर और सबका सङ्ग परित्याग करके पहले कहे आश्रमके निवासस्थानमें विचरें और आप्तोंके सहित वार्त्तालाप न करके सबके प्रियदर्शन होकर गृहवासको त्यागके ध्याननिष्ट होवें; वाणप्रस्थ और गृहस्थोंके गृहमें कदापि वास न करें; लोग यह न जान सकें, कि इन्हें भिक्षा लेनेकी इच्छा है। इस ही प्रकार भिक्षा पानेकी इच्छा करें, कभी हर्षित न होवें। ज्ञानियोंके निमित्त यही मोक्ष धर्म्म है और अज्ञानियोंको इस मार्गमें पदार्पण करना परिश्रम मात्र है; हारित मुनिने पण्डितमण्डलीके बीच यह सब मोक्षसाधक विषय कहे थे। जो लोग सब भूतोंको अभय दान करते हुए गृहसे निकलकर सन्न्यास धर्म्म ग्रहण करते हैं, वे अनन्तकालके लिये सत्यकाम और सत्यसङ्कल्प हुआ करते हैं।

२७७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! लोग हमें धन्य कहा करते हैं, परन्तु हमारे समान दुःखित पुरुष इस लोकमें कोई भी नहीं है। हे कुरुसत्तम! हम लोग धर्म्म आदि देवताओंसे मनुष्य जन्म पाके और लोकमें सम्मानित होके भी जो दुःखभागी हुए हैं, उस दुःख विनाशी सन्न्यासधर्म्मको कब ग्रहण करेंगे; इस संसारमें शरीर धारण करना ही दुःखकर है, हे पिता-

मह ! संशितव्रती मुनि लोग पञ्चप्राण, मन, बुद्धि और दशों इन्द्रियोंसे विमुक्त हैं ; मुक्ति-विरोधी संसारबद्धक काम, क्रोध लोभ, भय, स्वप्न, इन पांचो योग दोषोंसे रहित और शब्द स्पर्श आदि पञ्च इन्द्रिय विषय तथा सत, रज और तम, इन तीनों गुणोंसे रहित होके पुन-र्जन्म ग्रहण नहीं करते। हे परन्तप ! वैसेही हम राज्य परित्याग करके कब सन्न्यास धर्म्म अवलम्बन करके दुःख मोचन करेंगे।

भीष्म बोले, हे महाराज ! दुःख अनन्त नहीं है, दुःखोंको नाशक मोक्ष अवश्य है ; इस संसारमें सब विषयोंकाही परिच्छेद है, पूर्व्वजन्म भी प्रसिद्ध है, जगत्‌में कुछ भो अचल नहीं है ; इसलिये राज्य, ऐश्वर्य्य आदिका अवश्य ही नाश होगा। हे राजन् ! राज्यऐश्वर्य्य प्रभृतिको मोक्षका प्रतिबन्ध मत समझो, तुम लोग धर्म्मज्ञ हो। इसलिये ऐश्वर्य्यादिमें आसक्त रहने पर भी शम दम आदि साधनोंके जरिये कालक्रमसे मोक्ष लाभ करोगे। हे नरनाथ ! यह जीव सदा सुख दुःखका ईश्वर नहीं है, क्यों कि उस सुख दुःखसे उत्पन्न हुए राग-द्वेषमय अज्ञानसेही जीव स्वयं आवृत हुआ करता है। जैसे अञ्जन-मय वायु मनःशिला सम्बन्धीय लाल और पीले वर्णके रजमें प्रवेश करके उसके समान रूप धारण करके सब दिशाओंको रंजित करती हुई लोगोंके दृष्टिगोचर हुआ करता है, वैसेही अज्ञानसे छिपे हुए अर्थात् अविद्या उपाधियुक्त जीव स्वयं विवर्ण होके भी अर्थात् रागादिहीनता निबन्धन दोषस्पर्शी न होके भी देह सम्बन्धके कारण देह धर्म्म गौरत्व, कारणत्व, खञ्जत्व, सुखित्व और दुःखित्व आदि कर्म्मफलोंके जरिये रञ्जित है, इसहीसे वर्णवान् होकर देह समूहमें भ्रमण किया करता है। जब जीव अज्ञानसे उत्पन्न हुए अन्धकारको ज्ञानसे दूर करता है, उस समय सत्स्वरूप एकमात्र ब्रह्म प्रकाशित होता है।

मुनि लोग उस परब्रह्मको अयत्न साध्य अर्थात् कर्म्मसे प्राप्त होनेकी उपाय रहने पर उसमें अनित्यत्व संघटित होता है ; क्यों कि जो कर्म्मज है, वही उत्पाद्य, आप्य, संस्कार्य्य और अकार्य्य हुआ करता है। जिसमें विद्वानोंका अनुभव ही प्रमाण है, उस ही परब्रह्मकी उपासना करनी देवताओंकी भांति तुम्हें अवश्य योग्य है ; इसही लिये महर्षि लोग ब्रह्मोपासनासे विरत नहीं होते। उद्योगी पुरुषोंको अवश्य ही ब्रह्मप्राप्ति हुआ करती है, इससे तुम भी उद्योगी बनो। हे राजन् ! पहिले समयमें वृत्रासुरने देवताओंसे पराजित होनेसे राज्यहीन और ऐश्वर्य्यभ्रष्ट होकर अकेलेही शत्रुव्यूहमें स्थितही नैष्ठिकी बुद्धि अवलम्बन करके शोक रहित अन्तःकरणसे इस विषयमें जिस प्रकार चेष्टा की थी, और जैसा कहा था, उसे तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। हे भारत ! पहिले समयमें शुक्राचार्य्यने ऐश्वर्य्यभ्रष्ट होने-पर वृत्रासुरसे यह वचन कहा था कि, हे दानव ! तुम इस समय पराजित हुए हो, तोभी तुम्हारे अन्तःकरणमें कुछ दुःख नहीं है, इसका क्या कारण है ?

वृत्रासुर बोला, मैं अबाधित सत्य वचन और ध्यान मननकी आलोचनासे जीवोंकी सांसारिक गति और मुक्तिके विषयको निःसंशयरूपसे जान कर शोक वा हर्षमें नहीं डूबता। जीव पुण्य वा पापके धर्म्म लक्षण कालके जरिये प्रेरित होते हैं कोई कोई अवश होके नरकमें डूबते हैं ; कोई कोई स्वर्गमें गमन किया करते हैं ;परन्तु मनीषी लोग ऐसा कहा करते हैं, कि वे समस्त जीवही परितुष्ट रहते हैं। वे काल प्रेरित जीव नरक वा स्वर्गमें परिमित समय बिताकर फिर संसारमें जन्म लेते हैं,। काम पाशमें बन्धे हुए जीवसमूह सहस्रों तिर्य्यग् योनि लाभ और नरकमें गमन करके अवश होकर बाहिर होते हैं। मैं अतीन्द्रिय ज्ञानयुक्त

होकर जीवोंकी इस ही प्रकार इस संसारमें गतागतिके विषयको जानता हूं, और जिसका जैसा कर्म्म है, उसी फल लाभ भी उसहीके अनुरूप हुआ करता है ; इस शास्त्र निदर्शनको भी मानता हूं । जीव पहिले किये हुए प्रिय अप्रिय, सुख और दुःखके आचरणसे कोई तिर्य्यग् योनि पाते हैं, कोई नरकमें गमन करते हैं, कोई मनुष्य जीवन प्राप्त किया करते हैं, कोई देव शरीर धारण करते हैं, सब लोक ही कालकृत नियममें निबद्ध होकर पूर्व्वोक्त गतियोंको प्राप्त हुआ करते हैं, जीव-समूह जन्म और मृत्यु के मार्गमें सदा घूम रहे हैं। शुक्रने इसही प्रकार कालसंख्याके अनुसार गणित सृष्टि और स्थिति विषयके कहनेवाले उस वृत्रको असुर योनिमें जन्म लेने पर भी उसे इस प्रकार ज्ञानवान समझके आश्चर्य किया और उसके बुद्धिकी परीक्षा करनेके लिये बोले, हे तात! तुम बुद्धिमान् हो, इसलिये किस निमित्त यह सब अनर्थक वचन कह रहे हो।

वृत्रासुर बोला, पहले मैंने जयलुब्ध होकर जो महत् तपस्या की थी वह आप तथा दूसरे मनीषी पुरुषोंको प्रत्यक्ष हुई थी। मैं निज वीर्य्यबलसे अनेक गन्ध और रसके आश्रयभूत सबको विमर्द्दन करते हुए तीनों लोकोंको आक्रमण करके वर्द्धित हुआ था। मैं ज्वाल-मालासे परिपूरित आकाशचारी और सदा निर्भय रहके सब भूतोंसेही अजेय था। हे भगवन्! तपस्यासे ऐश्वर्य्य लाभ हुआ था और निज कर्म्मसे वह नष्ट हुआ है, इसलिये मैं धैर्य्य अवलम्बन करके उसके लिये शोक नहीं करता। पहले जब मैंने महानुभव इन्द्रके सङ्ग युद्ध करनेकी अभिलाषकी, उस समय उनकी सहायताके लिये आये हुए ऐश्वर्य्योंसे युक्त, सब जीवोंके लय स्थान, सर्व्वान्तर्य्यामी हरिको देखा। उस भूतोंके मेल करनेवाले पूर्ण पुरुष जो कि तीनों परिच्छेदोंसे रहित, अनन्त, शुद्ध, सर्व्वव्यापी, सनातन, मुञ्जकी समान पीले केश और पिङ्गल वर्ण श्मश्रुयुक्त हैं, तथा जो सब भूतोंका पितामह शुद्ध ब्रह्म हैं, प्रसङ्ग क्रमसे उस परब्रह्मके दर्शनस्वरूप तपस्याका शेष फल इस समय भी कुछ विद्यमान है। हे भगवन्! उस ही तपोबलको अवलम्बन करके मैं कर्म्म-फल पूछनेकी इच्छा करता हूं। महत् ऐश्व-र्य्यस्वरूप परब्रह्म किस वर्णमें प्रतिष्ठित है और उस सर्वोत्तम ऐश्वर्य्य की किस प्रकार निवृत्ति होती है। किस कारणसे जीव जीवन धारण करते हैं और किस लिये कर्म्मकी चेष्टा किया करते हैं। जीव किस प्रकार परम फल पाके ब्रह्मत्व लाभ करता है ; आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये। हे पुरुषप्रवर नरनाथ! वृत्रासुरके ऐसा पूछने पर उस समय शुक्राचा-र्य्यने जो उत्तर दिया था, मैं उसे कहता हूं तुम सहोदर भाइयोंके सहित एकाग्रचित्त होकर सुनो।

२७८ अध्याय समाप्त।

शुक्र बोले, हे तात दानव-सत्तम! आका-शके सहित पृथ्वीतल जिसकी भुजाके बीच निवास करता है, उस सर्व्व ऐश्वर्य्य युक्त सर्व्व शक्तिमान भगवान्को नमस्कार करता हूं। जिसका शिर अनन्त मोक्षस्थान है, उस सर्व्व-व्यापी देवका परम माहात्म्य तुम्हारे समीप कहता हूं। वृत्रासुर और शुक्र इस ही प्रकार वार्त्तालाप कर रहे थे, उस ही समय विष्णुकी कृपासे धर्म्मात्मा महामुनि सनत्कुमार उन लोगोंके सन्देहको दूर करनेके लिये वहां आके उपस्थित हुए। हे राजन्! मुनिवर पहुंचते ही असुरेन्द्र और शुक्रसे पूजित होकर उत्तम आसनपर बैठे। महाप्राज्ञ मुनिके बैठनेपर शुक्र उनसे बोले, आप इस दानवेन्द्रके समीप भगवान् विष्णुका परममाहात्म्य कहिये।

अनन्तर सनत्कुमार ऐसा वचन सुनके बुद्धिमान् दानवेन्द्रके निकट विष्णुके माहात्म्य संयुक्त महार्थ वाक्य कहने लगे। हे दैत्यराज! विष्णुका यह सब परम माहात्म्यका विषय सुनो। हे शत्रुतापन! समस्त जगत् विष्णुके अवलम्बसे स्थित है। हे महाबाहो! ये विष्णु ही स्थावर जङ्गम सब जीवोंको उत्पन्न करते हैं, येही कालक्रमसे जीवोंको आकर्षण करते हैं, और कालक्रमसे फिर सृष्टि किया करते हैं; सब कोई इन्हींमें लीन होते और इन्हींसे उत्पन्न हुआ करते हैं। ज्ञानवान् मनुष्य तपस्या वा यज्ञसे इन्हें प्राप्त होनेमें समर्थ नहीं हैं, और इन्द्रियोंको संयम करनेसे भी इन्हें प्राप्त नहीं किया जाता, जो यज्ञादि कर्म्मोंसे उन्हें जाननेकी इच्छा करते हैं, अथवा शान्त, दान, उपरत, तितिक्षु और समाहित होकर आत्मासे ही आत्माको देखते हैं। वे निष्ठावान् मनुष्य आभ्यन्तर और वाह्य कर्म्मयुक्त बुद्धिके सहारे चित्तशुद्धि करते हुए देहाभिमान छोड़के आत्मलोक लाभ करके मोक्षफल उपभोग किया करते हैं। जैसे सोनार अपने महत् प्रयत्नके जरिये बार बार अग्निमें डालके सुवर्ण आदि शोधन करता है, वैसेही जीव सैकड़ों जन्ममें पूर्व्वोक्त कर्म्मोंसे चित्तशोधन किया करता है; कोई एक ही जन्ममें अत्यन्त महत् प्रयत्नके सहित पूर्व्वोक्त कर्म्मोंके अनुष्ठानसे चित्तशुद्धि लाभ करता है। जैसे कोई कोई सहजमेंही निज शरीरकी अल्प मलिनता शुद्ध करते हैं, पुत्र कलत्र आदिमें अनुरागका उच्छेद वैसा नहीं है इसमें बहुत ही यत्नकी आवश्यकता है। जैसे थोड़े फूलोंसे वासित तिल वा सरसों निज गन्धको परित्याग नहीं करते, सूक्ष्म वस्तुका दर्शन भी वैसाही है, तिल और सरसों बहुतसे फूलोंसे बार बार सुवासित होनेपर निज गन्ध त्यागके जैसे पुष्पगन्धमें मिलित होते हैं, वैसेही सैकड़ों जन्ममें सत्वादि गुणोंसे युक्त पुत्र कलत्र आदि कुटुम्बके संसर्ग जनित दोष योगाभ्यासके यत्न और बुद्धिसे निवर्त्तित हुआ करते हैं। हे दानव! कर्म्मवशसे अनुरक्त अथवा विरक्त जीव जिस प्रकारसे विशेष कर्म्मको प्राप्त होते हैं उसे सुनो। जीव जिस प्रकार कर्म्मकी चेष्टा करता और जिसमें स्थित रहता है, वह मैं तुम्हारे समीप विस्तार पूर्व्वक कहता हूं; इस समय तुम चित्त एकाग्र करके सुनो। जिसका आदि अन्त नहीं है, जो सब भूतोंमें समभावसे निवास करता है, वही जीवोंका पाप हरता है, इसीसे उसे 'हरि' कहते हैं, वही उपाधि रहित स्थावर जङ्गम सब जीवोंकी सृष्टि किया करता है, वही सब भूतोंमें सुज्ञात और जीवरूपसे स्थित रहता है, और एकादश इन्द्रिय स्वरूप होकर इन्द्रियोंके जरिये समस्त जगत्का ज्ञान किया करता है। हे दैत्यराज! पृथ्वीमण्डल उसके दोनों चरण हैं, द्युलोक उसका शिर, दशोंदिशा उसकी भुजा हैं, और आकाशको उसका श्रोत्र (कान) जानना चाहिये। सूर्य्य उसके तेजसे प्रकाशमय हुआ है, उसकी बुद्धि चन्द्रमामें स्थिर होरही है। उसकी बुद्धि सदा ज्ञानगत अर्थात् वृत्तिरूप ज्ञान स्वरूपी हुई है, जल ही उसकी जिह्वा है। हे दानवसत्तम! सब ग्रह उसके दोनों भौंके निकटवर्त्ती होरहे हैं, नक्षत्र मण्डल उसके नेत्र हुए हैं। हे दानव! भूमितल उसके दोनों चरणोंमें वर्त्तमान है, सत, रज, और तम इन तीनों गुणोंको नारायण स्वरूप जानो। हे तात! वही सब आश्रमों और जप आदि कर्म्मोंका फल है, धीर लोग ऐसा ही ज्ञान किया करते हैं। वह अव्यय परम पुरुष ही निष्कर्म्म सन्न्यासका फल मोक्ष स्वरूप है। सब मन्त्र जिसके रोएं और प्रणव जिसका वाक्य है, अनेक वर्ण और सब आश्रम जिसका आश्रय है जिसे अनन्त सुख है तथा जो हृदयमें स्थित धर्म्म स्वरूप है, वह परब्रह्म ही आत्मदर्शनरूपी परम धर्म्म और कृच्छ-चान्द्रा-

यज्ञ आदि तपस्याका फल स्वरूप है, वही कार्य्य और कारण स्वरूप है। वह परमात्मा ही मन्त्र ब्राह्मण और प्रवर्त्तना वाक्यसे युक्त है; होता, उद्गाता, प्रस्तोता प्रतिहर्त्ता आदि षोड़स ऋत्विकोंके जरिये सम्पादनीय क्रतु स्वरूप है। वही ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, अश्विनीकुमार, मित्रा-वरुण, यम और कुवेर स्वरूप है। उक्त ऋत्विक् गण पृथक् दर्शन होनेपर भी-अर्थात् इन्द्रसे महेन्द्र विभिन्न और वैश्वानरसे अग्नि स्वतन्त्र है, इत्यादि रूपसे कर्म्मकी विभिन्नताके कारण पृथक् दर्शन करनेपर भी उस एक मात्र महान् आत्माके सहित पूर्व्वोक्त प्रजापति आदि देव-ताओंकी एकता अवलोकन किया करते हैं, इस समस्त जगत्को उस ही एक मात्र देवके अधीन जानो। हे दैत्यराज! धीर पुरुष कहते हैं, कि उसके नाना भूतोंमें निवास करनेपर भी यह जीव उसे एक ही देखता है, अनन्तर जीव ही विज्ञानवशसे ब्रह्मरूपसे प्रकाशित होता है। हे दैत्येन्द्र! जगत्के लय और उदयको कल्प कहते हैं, कोई कोई जीव उस सहस्र कोटि कल्प परि-माण पर्य्यन्त स्थित रहते हैं, कोई स्थावर हुआ करते हैं कोई जङ्गम होके विचरते हैं; प्रजासृ-ष्टिका परिमाण वक्ष्यमाण विधिसे सहस्र वापी सोखनेकी भांति अनन्त है। पचासकोस चौड़ और पचास कोस लम्बाईके परिमाण तथा गहराईसे दुरवगाह सहस्रों वापियोंके प्रत्येक योजनके परि-माणसे वर्द्धित होती रहनेपर यदि प्रतिदिन केवल एकबार केशाग्रके जरिये उसमेंसे एक बूंद जल उठाया जावे और इस ही प्रकारके नियमसे एक एक वापीके जल सोखनेके क्रमसे कोई सहस्र दीर्घकारके नष्ट होनेकी सम्भावना हो, तो ज्ञानके विना संसारका उच्छेद होसके। एककी मुक्तिसे एककी सृष्टिनाश होनेपर भी अनेक जीव वर्त्तमान रहते हैं। इससे किसी प्रकारसे भी संसारके नष्ट होनेकी सम्भावना नहीं है। रज, सत और तमोगुण रञ्जकता, स्वच्छता और मलिनताके साम्यवशसे लाल, श्वेत और काले हुआ करते हैं। उक्त तीनों गुणोंके भाग भेदसे जीवका सफेद, लाल, काला, पीला, धूम और कृष्ण, ये छः प्रकारके वर्ण होते हैं, तीनों गुण परस्पर वियुक्त होनेपर स्थित नहीं रहते उसके बीच जिसमें तमोगुणकी अधिकता, सतोगुणकी न्यूनता और रजोगुणकी समता रहती है, उसका कृष्णवर्ण होता है; सत और रजोगुणकी विपरीतता अर्थात् सतो-गुणकी समता तथा रजोगुणकी न्यूनता होनेपर धूम्र वर्ण हुआ करता है, इस ही प्रकार रजो-गुणकी अधिकता और सत्व तथा तमोगुणकी न्यूनता वा समतासे नीलवर्ण हुआ करता है। सत्व और तमोगुणकी विपरीतता अर्थात् सतो-गुणकी समता और तमोगुणकी न्यूनतासे लोकोंके सह्यतर लालवर्ण उत्पन्न होता है, सतोगुणकी अधिकता और रज तथा तमोगुणकी न्यूनता वा समता होनेपर सब लोक सुखकर पीत वर्ण हुआ करता है। सत्वकी अधिकता रजोगुणको समता और तमोगुणकी न्यूनता होनेसे अत्यन्त सुखकर श्वेत वर्ण हुआ करता है।

हे दानवेन्द्र! स्थावर आदि सृष्टि क्रममें कृष्णवर्णसे कौमारसृष्टि पर्य्यन्त क्रमसे जो शुक्ल वर्ण होता है, वही राग-द्वेषहीनता निबन्धनसे निर्म्मल है, इससे शोकहीन और प्रवृत्ति नामक श्रमरहित वह वर्ण ही सिद्धिके उपायोगी हुआ करता है। हे दैत्य! जीव सहस्रों बार जन्म ग्रहण कारके अन्तमें सिद्धिलाभ करता है। हे असुरेन्द्र! सुरराज पुरन्दरने उत्तम शास्त्रज्ञान लाभ करके आत्मानुभवात्मिका जो शुभ गतिका विषय कहा था, अर्थात् "इस ब्रह्मका मैंने दर्शन किया" इत्यादि जो वचन प्रकाशित की थी, वही ब्रह्मज्ञान लाभकी प्रमाण स्वरूप है। सत्वादि गुणोंके तारतम्यके अनुसार प्रजा-समूहकी वर्ण-विहित गति हुआ करती है, प्रजाके वर्ण भी कालकृत अर्थात् पहले कहे

हुए चतुर्युगात्मक जीव कर्त्तृक बिहित हैं, जीवोंके पूर्व्व जन्मके संस्कारसे जिस प्रकार सत्वादिकी उत्पत्ति होती है, वैसी ही गति हुआ करती है। हे दैत्यराज! सोपानारोहन क्रमसे इस लोकमें चौदह लाख बार जीवको उर्द्ध गति होती है, और उसहीके अनुसार स्थिति तथा अधोगति समझनी चाहिये; स्थावत्व-प्रापक कृष्णवर्णको निकृष्ट गति होती है, क्यों कि वे जनिष्यमान स्थावर पदार्थ नरकप्रद कर्म्ममें संयत्त हुआ करते हैं, इसहीसे वे नरकमें निमग्न होते हैं, प्राचीन पण्डित लोग ऐसा कहा करते हैं, कि अनेक कल्पतक उनकी दुर्गति लोगोंके सहित स्थित हुआ करती है। इस ही प्रकार जीव स्थावर शरीरसे समय बिताते हुए अन्तमें तिर्य्यग् योनि लाभ किया करता है। जीव उस तिर्य्यग् योनिको लाभ कर शीत वातादिसे पीड़ित होकर युगक्षयमें सब प्रकारसे मृत्यु-भय दर्शन करते हुए पूर्व्व पुण्योदयके बिवेकसे व्याप्तचित्त होकर उक्त शरीरमें स्थिति करता है। कृष्ण और हरित वर्ण केवल भोगभूमि है, इसलिये इसमें भोगके जरिये जिसके पाप नष्ट होते हैं, दैवात् उसके पूर्व्व पुण्यके उदय होनेपर जीवका चित्त बिवेकसे संवृत हुआ करता है। जब जीव सतोगुणयुक्त होता है, उस समय निज बुद्धिसे तमोगुणकी प्रवृत्तियोंको दूर करते हुए कल्याणसाधन कर्म्ममें यत्नवान् हुआ करता है, तब सतोगुणको उत्कर्षता होनेसे कामादिके अभिमानी देवभाव लाभ करता है, और सतोगुणके अपकर्ष होनेसे तिर्य्यग् योनिसे फिर तिर्य्यग् योनिको प्राप्त होता अथवा मनुष्य जन्म ग्रहण करता है। तब जीव मनुष्य लोकमें कल्प परिमित समय बिताके विधि निषेधरूपी निगड़निवहके जरिये क्लेशित होकर तपस्याका उपचय करते हुए सैकड़ों कल्प बीतनेपर देवभाव लाभ किया करता है। हे दैत्यराज! जीव देवत्व लाभ करके भी सहस्रों कल्पतक बिचरते हुए निवास करता है; देव लोकमें भी जीव विषय रहित होके पूर्व्व पूर्व्वकल्पोंके किये हुए पुण्य पापोंका फल भोग किया करता है।

अनन्तर दश हजार जन्मके बीतनेपर मनुष्य भोगप्रद कर्म्म और अन्यान्य जन्मोंसे मुक्ति लाभ करता है इसलिये स्वर्गको भी क्षयशील समझना चाहिये। जीव देवलोकमें सदा विहार किया करता है, अनन्तर वहांसे च्युत होकर मनुष्य जीवन पाता है; देवता लोग मनुष्यत्व और मनुष्य भी देवत्व लाभ किया करते हैं। ऊपर कहे हुए कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नासिका, चित्त, मन और बुद्धि नामक आठों ज्ञानेन्द्रिय सैकड़ों कल्पतक मनुष्य शरीरमें निवास करती हुई अन्तमें देवत्वको प्राप्त होती है। अनन्तर वही जीव कालक्रमसे संकल्पकृत लयोदय प्रवाहसे भ्रष्ट होकर सबसे अपकृष्ट वर्ण अर्थात् तलभागकी भांति सबसे नीच स्थावर शरीरमें निवास करता है। हे असुर प्रवीर! यह जीव जिस प्रकार बिमुक्त होता है, उसे मैं तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं। एकके अनेकधा भावको व्यूह कहते हैं, मुमुक्षु जीव उन सत्तरह देवव्यूहोंको अवलम्बन करके लाल, पीला और अन्तमें सफेद वर्ण होकर क्रमसे अर्चनीय अष्टलोकोंमें बिचरता है। कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका, मन और बुद्धि रूपसे सप्तधा-भूत बुद्धिकी उस ही उसी इन्द्रिय वृत्तिभेदसे सौ हजार व्यूह हुआ करता है, तिसके बीच शम दम आदि सात्विक भावोंसे युक्त देव व्यूह अवलम्बन करके पहले जो रक्तवर्ण होता है, वही शम दमादिके अभिमानी देवतास्वरूप है, इससे वह अत्यन्तही शमदमादिसे युक्त हुआ करता है।

अनन्तर पीत वर्ण देवशरीर होकर अन्तमें श्वेतवर्ण कौमारमूर्त्ति हुआ करती है, यह मूर्त्ति बालककी भांति रागद्वेषसे रहित होती है। अनन्तर सगुणात्म स्वरूप सब लोक प्राप्त होते हैं, क्रमसे धूम्र आदि मार्गप्राप्तिपूर्व्वक अर्चि

नीय चन्द्रलोकसे भी पूजनीय अर्चिरादि मार्ग-प्राप्य ब्रह्मलोक लाभ होता है । अनन्तर योग-फलभूत ज्ञानसे मिलने योग्य सब पूज्य लोक प्राप्त होते हैं । हे महानुभव दैत्यराज ! पूर्ण प्रकाशयुक्त आत्मज्ञ पुरुष उक्त अष्टलोक और अविद्या काम कर्म्म आदि भेदसे विभिन्न जो एक सौ साठ लोक हैं, उन सबको मनसे ही विशेष रूपसे रुद्ध कर रखते हैं, अर्थात् मूढ़दृष्टिसे सब लोकोंके भिन्नरूपसे दीखनेपर भी ज्ञानियोंके मनमें वे एक रूपसे ही मालूम हुआ करते हैं ; जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्तिसंज्ञक तीनों लोक यदि संक्षेपसे मनहीके जरिये रुद्ध हों, तो शुक्लवर्णको वही परम गति है, अर्थात् ऐसी अवस्थामें वेद प्रतिपाद्य, मङ्गलमय हेतरहित ब्रह्मको जाना जाता है । जीव एक मात्र भोगके स्थान शरीरको धारण करके सौ कल्पके परिमाणतक इस देहमें निवास किया करता है, योग ऐश्वर्य्यसे उपस्थापित दिव्य भोगोंको परित्याग करनेमें असमर्थ योगी योगबलके तारतम्यके अनुसार महः, जन, तपः और सत्यसंज्ञक ऐश्वर्य्यके तारतम्ययुक्त क्रममुक्ति स्थानोंमें निवास किया करते हैं । जो शुद्ध ब्रह्मके दर्शनके जरिये जीवन मुक्त होनेमें समर्थ नहीं हैं और जिनके रागादि दोष नष्ट हुए हैं, वैसे पुरुष योगसिद्ध होके भी ब्रह्म और आत्मामें ऐक्यज्ञानके अभाव निबन्धनसे क्रममुक्तिभाजन हुआ करते हैं ; और जो पुरुष पूर्णरीतिसे योगानुष्ठान करनेमें समर्थ नहीं है, वह परोक्ष रूपसे निर्दिष्ट स्वर्गलोकमें सतोगुणको प्रबलतासे पूर्व्वोक्त श्रोत आदि पञ्चक और मन तथा बुद्धिके उत्कर्ष साधक पुरुष एक सौ कल्प पर्य्यन्त तथा जबतक पूर्व्वकृत कर्म्मचय नहीं होते, तबतक निवास करता है । शुद्ध कर्म्मवाले साधु योगी यदि योग सिद्धिके पहिले विरक्त हो, तो भूलोक अथवा स्वर्गलोकमें गमन करते हैं अनन्तर वहांसे लौटकर मनुष्यजन्म पाके कुल शील और विद्याबुद्धिसे युक्त होकर सब लोगोंमें पूजनीय होते हैं । अन्तमें वही अपूर्ण योगी मनुष्य जन्मसे निकलके पूर्व्व अभ्यासके सहारे क्रमसे उत्तरोत्तर योगभूमिकामें आरोहण करते हैं, वह समाधि और समाधि भङ्गके समयमें प्रमावयुक्त होके सातबार सब लोकोंमें पर्य्यटन किया करते हैं, अर्थात् प्रथम भूमिमें आरूढ़ योगी यदि मृत्युको प्राप्त हो, तो वह स्वर्गलाभ करके वहांसे च्युत होनेपर सार्व्वभौम्य पदवी लाभके जरिये उनका भूलोक विजय हुआ करता है । इस ही प्रकार उत्तरोत्तर योगकला वृद्धिके अनुसार क्रमसे सब लोक जय किया जाता है ; अन्तमें ब्रह्मलोक लाभ करके भी जीव फिर संसारमें आगमन किया करता है, और यदि ध्येयवस्तुके सङ्ग आत्माको अभेद प्रतीति उत्पन्न हो, तो प्रलयकालमें ब्रह्माके सहित जीवको मुक्ति हुआ करती है, अर्थात् कृतात्मा मनुष्य प्रजापतिके प्रलयकालमें उनके सहित परमपदमें प्रवेश करते हैं ।

पश्चात्तरमें योगी पुरुष भूर्लोक भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्य लोक अथवा मन और बुद्धिके सहित पञ्चज्ञानेन्द्रिय, इन सातोंको ज्ञानसे बाधित करके जीव लोकमें शोक मोहसे रहित होकर निवास करते हैं । वे लोग पृथ्वी आदि सातों लोक अथवा बुद्धि आदि सातों इन्द्रियोंको दुःखस्वरूप निश्चय करके शरीर त्यागनेपर अपरिणामी अनन्त अर्थात् परिच्छेद रहित शुद्ध ब्रह्मपद लाभ करते हैं । कोई कोई उस पदको महादेवका कैलास कहते हैं, कोई उसे विष्णुका बैकुण्ठ बतलाते हैं, कोई कोई सम्प्रदायवाले उसे ब्रह्माका ब्रह्मलोक कहा करते हैं, कोई कोई भक्तजन उसे अनन्त देवके धामरूपसे वर्णन करते हैं, सांख्य मतवाले मनीषी पुरुष उसे जीवोंकी परम निवृत्ति स्थान कहा करते हैं, और उपनिषत् अर्थात् वेदान्त, दर्शनवाले

पण्डित लोग उसी दीप्तिमान् चिन्मात्र सर्व्वव्यापी परब्रह्मके धामस्वरूप रूपसे निर्णय किया करते हैं। संहारके समयमें जो लोग ज्ञानरूपी अग्निसे स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरको सब भांतिसे जलाये हैं, वेही सब प्रजा सदा परब्रह्मको प्राप्त होती हैं और चेष्टात्मक इन्द्रियें तथा ब्रह्मस्वरूपसे अर्व्वाचीन प्रकृति आदि भी परिदग्ध शरीर होकर संहारकाल अर्थात् जीवके मोक्ष समयमें परब्रह्ममें लीन हुआ करती हैं। प्रलयकालके आसन्न होनेपर जो लोग देवत्व लाभ करते हैं, उनके सब कर्म्मफल भोग न किये जानेसे पूर्व्व कल्पके अर्ज्जित उनके सब कर्म्मफल प्रत्यासन्न हुआ करते हैं; क्यों कि प्रति कल्पमें ही पूर्व्व पूर्व्वकल्पोंकी सदृशता विद्यमान रहती है, और प्रलयकालमें जिसके कर्म्मफलोंके भोग निःशेषित होते हैं, उनका स्वर्गवास समाप्त होनेसे फिर मनुष्यत्व प्राप्त हुआ करता है; क्यों कि तत्वज्ञानके अतिरिक्त सौ कल्पमें भी किये हुए कर्म्मोंका नाश नहीं होता।

जो लोग क्रमसे सिद्ध लोकसे प्रच्युत होने की सामर्थ धारण करते हैं, दूसरे जीव लोग उनके समान बलवाले होकर क्रमसे उनकी गतिको प्राप्त होते हैं, अर्थात् उन्हींकी भांति पाप-पुण्यके फलोंको भोग किया करते हैं। एक कल्पमें ही जब बार बार ऊर्द्ध गति और अधोगति हुआ करती है, तब संसार भीरु पुरुषोंको तत्वज्ञानका आसरा अवश्य करना चाहिये।

ब्रह्मवित् पुरुष जबतक प्रारब्ध कर्म्मोंको परित्याग न करके उसे भोग करते हैं तबतक उनके अङ्गमें ब्रह्मस्वरूपसे प्रजासमूह और परा तथा अपरा विद्या विद्यमान रहती है। अनन्तर वह योगसंशोधित चित्त होनेपर अर्थात् धारणा, ध्यान, समाधि स्वरूप संयमका अनुष्ठान करनेसे इस आकाश आदि पञ्च महाभूतोंको पञ्च इन्द्रियोंकी भांति जानते हैं; ब्रह्मवित् पुरुषके सम्बन्धमें विशुद्ध कैवल्य पर्य्यन्त समस्त जगत दूरवर्त्ती नहीं है। जो लोग शुद्धचित्तसे श्रवण मनन और ध्यानाभ्याससे शुद्ध चिन्मात्र वस्तुको जाननेकी इच्छा करते हैं, वे द्वैतजालको दूर करके उस शुद्ध परम गतिको प्राप्त होते हैं, शेषमें ब्रह्म साक्षात्कार होनेपर अक्षय मोक्षपद लाभ करते हैं। उस समय अविद्या आदि व्यवधानोंसे जो शाश्वत परब्रह्म दूसरोंको अत्यन्त आप्य है, उसे वे गलेमें पड़े हुए कण्ठभूषणकी भांति सहजमें ही प्राप्त होते हैं। हे महाबलवान् दैत्यराज! यह मैंने तुम्हारे निकट नारायणका प्रभाव वर्णन किया।

वृत्रासुर बोला, हे भगवन्! आपने जो कहा, कि उसमें जगत मनरूपसे स्थित है, तब अब मुझे कुछ भी विषाद नहीं है और आपके कहे हुए वाक्यार्थको मैंने विशेष रूपसे आलोचना की है। हे महानुभाव! मैं आपके वचनको सुनके इस समय दुरदृष्टरहित और शोक मोहसे हीन हुआ। हे महर्षे! यह महातेजस्वी अन्तर्रहित विष्णुके चक्रकी भांति अनन्तवीर्य्य आकर्षित हुआ, वही उसका सनातन स्थान है, जिससे समस्त सृष्टि हुआ करती है, वह महानुभाव विष्णु ही पुरुषोत्तम है, उसमें ही यह सब जगत् प्रतिष्ठित होरहा है।

भीष्म बोले, हे कुन्तीपुत्र! दैत्यराज वृत्रने ऐसा कहके प्राणत्याग किया, उसने निज आत्माको परमात्मामें संयुक्त करके परम स्थान प्राप्त किया था। उस समय युधिष्ठिर श्रीकृष्णको ओर अङ्गुली दिखाके बोले, हे पितामह! पहिले समयमें सनत्कुमार मुनिने वृत्रासुरके निकट जिसकी महिमा कही थी, ये भगवान् जनार्द्दन वही देवता हैं।

भीष्म बोले, मूल अधिष्ठानकी भांति निर्व्विकार भावसे स्थित षड़विध ऐश्वर्य्यवान् चिदात्मा निज तेजपुञ्जसे अधिष्ठित रहके सत्य संकल्प आदि गुणयुक्त मानसमें अनेक प्रकार कार्य्य कारण स्वरूप वृक्ष बीज प्रभृति उत्पन्न करता

है। यह निश्चय जानो, कि उस मूलाधिष्ठानमें स्थित चिन्मय पुरुषके आठवें अंशसे ये मूर्त्तिमान माधव उत्पन्न हुए हैं, यह बुद्धिमान् केशव मूलाधिष्ठानके आठवें अंशसे उत्पन्न होकर उस अष्टम अंशके सहारे ही तीनों लोकोंकी सृष्टि किया करते हैं, जो इनके परवर्त्ती होकर समष्टि-कार्य्य स्वरूपसे प्रतिपन्न होते हैं, वे हम लोगोंके शरीरकी अपेक्षा नित्य होके भी कल्पान्त कालमें लयको प्राप्त होते हैं, और जो अनन्त ब्रह्माण्डके लय उदयका बीजभूत है, वही अन्तर्य्यामी भगवान् प्रलयकालमें जलके बीच शयन किया करता है, अर्थात् जल रूपसे निरूपित रस स्वरूप एकमात्र अखण्ड परब्रह्ममें लीन होता है। बिधाता शुद्धचित्त अर्थात् अज्ञानरूपी अन्धकारसे निर्मुक्त होनेसे उस शाश्वत समष्टिरूप परब्रह्ममें लयको प्राप्त हुआ करता है, इसलिये चतुर्मुख आदि चेतनमात्रका ही एकमात्र परब्रह्म ही लय स्थान है। अन्तरहित परमात्माने कार्य्य कारण भूत सब पदार्थोंको निज सत्तास्फूर्त्ति प्रदान करके पूर्ण कर रखा है; वह सनातन अर्थात् सदा एक रूप होनेपर भी माया उपाधियुक्त इस दृश्यमान् श्रीकृष्णरूपसे सब लोगोंमें बिचर रहा है। वह देव ऐसा होके भी हम लोगोंकी भांति उपाधि कर्म्मके जरिये निरुद्ध नहीं है; इसीसे वह अनिरुद्ध अर्थात् अहंकार स्वरूप होकर जगत्की सृष्टि करता है, और वही महात्मा सब वस्तुओंका आधार कहा जाता है। बीजमें वृक्ष और फलमें बीजोंके स्थित रहनेकी भांति यह विचित्र जगत् उस ही परमात्मामें निवास करता है।

युधिष्ठिर बोले, हे परमार्थज्ञ पितामह! बोध होता है, वृत्रासुरने आत्माकी गति अवलोकन की थी, उसने उस ही आत्मगतिको देख कर शुभ-निबन्धनसे सुखी होकर कभी शोक प्रकाश नहीं किया। हे पापरहित पितामह! शुक्लवर्ण और शुद्ध वंशमें उत्पन्न साध्य संज्ञक देवयोनि तिर्य्यग् योनिरूपी निरयसे निर्मुक्त होकर फिर दूसरीबार उसमें आवर्त्तित नहीं होती। हे पृथ्वीनाथ! पीतवर्ण अथवा रक्तवर्णमें वर्त्तमान मनुष्य तामस कर्म्मोंसे परिपूरित होकर तिर्य्यग् योनि लाभ किया करते हैं। हम लोग पीतवर्णसे च्युत होकर केवल रजप्रधान रक्त वर्णमें निवास करते हुए कभी सुखी कभी दुःखी और कभी बिना सुखके ही समय बिताकर नीलवर्ण मनुष्य योनि अथवा उससे भी निकृष्ट कृष्णवर्णकी तिर्य्यग् योनिके बीच कैसी गति पावेंगे, उसे नहीं कह सकते।

भीष्म बोले, हे पाण्डुनन्दन! तुम लोग शुद्ध वंशमें उत्पन्न हुए हो और तुम सबने ही तीव्र व्रत धारण किया है, इसलिये इसके अनन्तर तुम लोग देव लोकोंमें बिहार करके फिर मनुष्य जन्म पाओगे। प्रजासमूहके प्रलयकालमें तुम लोग देव लोकमें फिर अनायास ही सुख भोग करोगे, अन्तमें सिद्धोंके बीच तुम्हारी गिनती होगा; तुम लोगोंको भय नहीं है, इससे सब शङ्का त्यागके प्रसन्न रहो।

२७९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! अत्यन्त तेजस्वी वृत्रासुरकी धर्म्मिष्ठतासे आश्चर्य्य होता है। उसका जैसा अनन्य-साधारण विज्ञान था, भगवान्के विषयमें भक्ति भी वैसीही थी। हे तात! असीम महिमासे युक्त भगवान्का तत्व अत्यन्त दुर्व्विज्ञेय है, उसे वह तत्व किस प्रकार मालूम हुई थी। आपने जो इस विषयके अस्खलित वचन कहे, उसमें मेरी श्रद्धा होरही है, परन्तु वृत्रासुर वैष्णव था, वह कभी बधार्ह नहीं होसकता; तौभी आपकी वचन अनुसार उसका बध सुना जाता है, इस अन्यतर कोटि निश्चयिक विज्ञानके अभावसे फिर मुझे प्रश्न करनेकी इच्छा हुई है। हे पुरुषप्रवर! वृत्रासुर

धर्म्मिष्ठविष्णुभक्त और वेदान्त वाक्यके अर्थ विचार विषयमें तत्पर था ; तब किस प्रकार वह इन्द्रके जरिये मारा गया ? मुझे यही सन्देह होरहा है, इसलिये प्रश्न करता हूं आप मेरे निकट यह विषय वर्णन करिये। हे भरत प्रवर पितामह ! वृत्रासुर जिस प्रकार इन्द्रसे द्वारा तथा जिस भांतिसे उन दोनोंका युद्ध हुआ था, आप उसे विस्तार पूर्व्वक वर्णन करिये ; इस विषयको सुननेकी मुझे बहुतही अभिलाषा है।

भीष्म बोले, पहिले समयमें देवराजने देवताओंके सहित रथपर चढ़के गमन करते हुए पुरमें द्वारपर स्थित पर्व्वतके समान वृत्र दैत्यको देखा। हे शत्रु दमन ! उस समय वृत्र ऊर्द्धमें पांचसौ योजन ऊंचा, और विस्तारमें तीनसौ योजन आयतरूप धारण किया था ; वृत्रका त्रैलोक्य-दुर्ज्जय वैसा रूप देखके देवता लोग अत्यन्त भयभीत हुए और किसी भांति शान्ति लाभ न कर सके। हे राजन् ! उस विपर्य्याय रूपको देखकर भयसे उस समय इन्द्रका सहसा उरुस्तम्भ हुआ। अनन्तर देव असुरोंका वह युद्ध उपस्थित होनेपर महान् सिंहनाद और युद्धके बाजोंके शब्द होने लगे। हे कुरुकुल धुरन्धर ! देवेन्द्रको उपस्थित देखके वृत्रासुरके अन्तःकरणमें सम्भ्रम भय वा चिन्ता नहीं हुई, अनन्तर सुरराज शक्र और महानुभाव वृत्रासुरका त्रिलोक भयङ्कर युद्ध आरम्भ हुआ। तलवार, पट्टिश, शूल, शक्ति, तोमर, मुद्गर अनेक तरहकी शिला, महा शब्दयुक्त धनुष अनेक प्रकारके दिव्य शस्त्र, अग्नि और उल्का समूहसे देवासुर सेनाके जरिये सब जगत् व्याकुल होने लगा। हे भरतप्रवर महाराज ! प्रजापति आदि सब देवताओं और महानुभाव ऋषियोंने युद्ध देखनेके लिये आगमन किया। सिद्ध और गन्धर्व्व लोग अप्सराओंके सहित विमानोंमें चढ़के उस स्थानमें इकट्ठे हुए। अनन्तर धार्म्मिक प्रवर वृत्रासुरने पत्थरकी वर्षासे शीघ्र ही आकाशतलको परिपूरित करते हुए देवेन्द्रको छिपा दिया, तब देवता लोग क्रुद्ध होकर सब प्रकारसे बाणोंकी वर्षा करके युद्धमें वृत्रासुरकी पत्थरवर्षाको निवारण करने लगे। हे कुरुवर ! महा मायावी महाबली वृत्रासुरने माया युद्धसे देवेन्द्रको सब भांतिसे मोहित किया। जब इन्द्र वृत्रके जरिये अत्यन्त पीड़ित हुए, तब उन्हें मोह उत्पन्न हुआ, उस समय महर्षि वशिष्ठने रथन्तर साम उच्चारण करके उन्हें चैतन्य किया।

वशिष्ठ बोले, हे दैत्य दानव निसूदन देवराज ! तुम सब देवताओंमें श्रेष्ठ और तीनों लोकोंके बलसे युक्त हो, इसलिये किसलिये विषाद कर रहे हो ; ये जगत्पति ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और भगवान् सोमदेव तथा सब महर्षि लोग विद्यमान् हैं। हे सुराधिप शक्र ! इसलिये तुम्हें साधारण पुरुषोंकी भांति मुग्ध न होना चाहिये ; युद्धमें साधु बुद्धि अवलम्बन करके शत्रुओंका संहार करो। हे सुरपति ! ये सब लोकोंके नमस्कृत भगवान त्रिलोचन तुम्हें देखते हैं, इसलिये तुम मोह परित्याग करो। हे शक्र ! ये सब वृहस्पति आदि ब्रह्मर्षि लोग जयके निमित्त दिव्य स्तवसे तुम्हारी स्तुति कर रहे हैं।

भीष्म बोले, महानुभाव वशिष्ठ मुनिने जब इस प्रकार इन्द्रको चैतन्य किया, तब प्रबल पराक्रमी सुरराजका पराक्रम अत्यन्त बर्द्धित हुआ, अनन्तर भगवान पाकशासनने बुद्धि स्थिर करके महत् योगयुक्त होकर वृत्रासुरकी माया दूर की। अङ्गिराके पुत्र श्रीमान् सुराचार्य्य और पूर्व्वोक्त महर्षियोंने वृत्रासुरका विक्रम देखकर सब लोकोंकी हितकामनासे महादेवके निकट जाके उसके नाशके निमित्त प्रार्थना की। अनन्तर जगत्पति महादेवका तेज घोर ज्वररूप धारण करके उस ही समय दैत्यपति वृत्रके शरीरमें प्रविष्ट हुआ ; और लोकरक्षामें तत्पर

सब लोकपूजित भगवान् विष्णुने देवराजके वज्रमें प्रवेश किया। अनन्तर बुद्धि शक्तिसे युक्त वृहस्पति, महातेजस्वी वशिष्ठ और वे सब महर्षि लोग लोकपूजित वरदाता इन्द्रके निकट जाके एकाग्रचित्तसे यह वचन बोले कि, हे देवेश! तुम सब वृत्रासुरका बध करो।

महेश्वर बोले, हे शक्र! यह सुर स्वयं प्रबल है और महत् बलसमूहसे परिपूरित हुआ है यह पुरुष विश्वव्यापी और सर्व्वगामी तथा अनेक प्रकार मायाजाल फैला सकता है, इस ही कारण विख्यात् है। हे सुरेश्वर! इसलिये तुम योग अवलम्बन करके इस त्रिलोकदुर्ज्जय दानवश्रेष्ठका बध करो, अवज्ञा मत करो। हे देवराज! इस वृत्रासुरने बलके निमित्त साठ हजार वर्ष पर्य्यन्त तपस्या की थी; ब्रह्माने भी इसे योगियोंके बीच महत्व, महामायात्व और श्रेष्ठ तेजस्विता लाभके निमित्त वर प्रदान किया था। हे इन्द्र! यह मेरा तेज शीघ्र तुम्हारे शरीरमें प्रवेश करता है, तुम इस ही तेजसे तेजस्वी होकर वज्रसे इस दानवका नाश करो।

देवराज बोले, हे सुरश्रेष्ठ भगवन्! आपकी कृपासे मैं आपके सम्मुखमें ही इस दुरासद दानवको वज्रसे मारूंगा।

भीष्म बोले, महासुर वृत्रासुरके शरीरमें शैवज्वर प्रविष्ट होनेपर देवता और ऋषियोंमें महान् हर्षध्वनि उत्पन्न हुई। अनन्तर सहस्रों शंख, नगाड़े पखावज और डिण्डिम बाजे बजने लगे। सब असुरोंकी इकबारगी स्मृति लुप्त होगई, क्षणभरके बीच प्रबल माया नष्ट हुई। देवता और ऋषि लोग इन्द्रके शरीरमें शिवतेजको प्रविष्ट हुआ जानके प्रशंसा वाक्यसे उनका उत्साह बढ़ाने लगे। युद्धके समयमें जब महानुभाव महेन्द्र रथमें चढ़के ऋषियोंसे स्तुतियुक्त हुए, उस समय उनका रूप अत्यन्त भयानक होगया।

२८० अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे महाराज! जब वृत्रासुर सब तरहसे ज्वरके वशमें हुआ तब उस समय उसके शरीरसे जो सब लक्षण प्रकाशित हुए थे, उसे सुनो। उसका मुख अत्यन्त प्रज्वलित होनेसे विवर्ण होगया उसका शरीर अत्यन्त ही कांपने लगा, श्वास बढ़ने लगा, तीव्ररूपसे रोएं खड़े होगये और लम्बी सांस चलनी आरम्भ हुई। उसके मुखसे अशिवरूप अत्यन्त दारुण महाघोर रूपवाली सियारी निकली, हे भारत! वही उसकी स्मृति शक्ति थी। प्रज्वलित और प्रकाशमान लुक्कोंने उसके दोनों पार्श्वोंको घेर लिया। गृद्ध, कङ्क और बगुले वृत्रासुरके ऊपर इकट्ठे होकर चक्रकी भांति भ्रमण करते हुए दारुण शब्द करने लगे। अनन्तर देवताओंसे आप्यायित आहवके बीच सुरराजने उस रथपर चढ़के हाथमें वज्र लेकर वृत्रासुरकी ओर देखा, हे राजेन्द्र! उस समय तीव्रज्वरसे संयुक्त होकर वह महासुर अमानुष शब्द करके जमुहाई लेने लगा। जब वृत्र जमुहाई ले रहा था, उस ही समय इन्द्रने उसके ऊपर वज्र चलाया, वह कालाग्नि समान अत्यन्त महत् तेजसे युक्त वज्रने शीघ्र ही महाकाय वृत्रासुरको मारके गिरा दिया।

हे भारत! अनन्तर वृत्रासुरको मरा हुआ देखके चारों ओरसे फिर देवताओंकी हर्षध्वनि उत्पन्न हुई। दानवारि देवराजने विष्णुयुक्त वज्रसे वृत्रासुरको मारके महायशस्वी होकर सुरपुरमें प्रवेश किया। हे कुरुनन्दन! अनन्तर वृत्रासुरके शरीरसे लोक भयावन रौद्ररूपिणी ब्रह्महत्या निकली। हे धर्म्मज्ञ भरतसत्तम! उसके सब दांत अत्यन्त कराल थे, उसका रूप भयङ्कर और विकृत था, रङ्ग काला और पीला था, उसके केश बिखरे और घोररूपी दोनों नेत्र थे। हे राजेन्द्र! कृत्याकी भांति कपालमालिनी वल्कल वस्त्र धारण करनेवाली रुधिरसे भींगी हुई, वैसी भयङ्कर रूपवाली वह स्त्री निकलते

ही इन्द्रको खोजने लगी। हे कुरुनन्दन! कुछ कालके अनन्तर वृत्रासुरके मारनेवाले इन्द्र सब लोकोंके हितकी कामनासे स्वर्गकी ओर जारहे थे, उस समय उस ब्रह्महत्याने महातेजस्वी शक्रको निकला हुआ देखकर उन्हें ग्रहण किया और उस ही समयसे उनके शरीरमें लग गई। जब देवराजको ब्रह्महत्याका भय उत्पन्न हुआ, तब उन्होंने कमलको मृणालके बीच छिपकर अनेक वर्षतक वास किया था। हे कौरव! ब्रह्महत्याने भी उनका पीछा कर यत्न-पूर्वक उन्हें ग्रहण किया, तब वह अत्यन्त निस्तेज होगये। देवेन्द्रने उससे छुटकारा पानेके लिये बहुत यत्न किया, परन्तु किसी प्रकार भी उस ब्रह्महत्यासे न छूट सके। हे भरतकुल शिरो-मणि! अनन्तर सुरराजने उस ब्रह्महत्यासे आक्रान्त होकर पितामहके निकट जाके सिर झुकाके उन्हें प्रणाम किया। हे भरतसत्तम! ब्रह्मा उस समय सुरराजको ब्रह्महत्यासे आक्रान्त जानके चिन्ता करने लगे। हे महा-बाहु युधिष्ठिर! उस समय पितामहने ब्रह्मह-त्याको मधुर वचनसे धीरज देकर कहा, हे भाविनि! तुम इस देवराजको छोड़के हमारा प्रियकार्य्य साधन करो। कहो मैं तुम्हारी कौनसी कामना सिद्ध करूं; इस समय तुम क्या अभिलाष करती हो?

ब्रह्महत्या बोली, हे देव! आप त्रिलोकपू-जित और तीनों लोकोंके कर्त्ता हैं, जब आप प्रसन्न हुए हैं, तब मैं अपनी सब कामनाओंको पूर्ण हुई ही समझती हूं। अब मैं कहां वास करूंगी, आप इस विषयमें कोई उपाय निश्चय करिये; आपने लोकरक्षाके लिये यह महती मर्य्यादा स्थापित की है। हे सर्व्व-लोकेश्वर सर्व्वलोक नियामक धर्म्मज्ञ! आप जब प्रसन्न हुए हैं तब मैं अवश्य ही सुरराजके शरीरसे अन्तर्द्धान हूंगी; इससे अब मेरे वास करनेके लिये स्थान खोजिये।

भीष्म बोले, प्रजापतिने उस समय ब्रह्मह-त्यासे कहा, कि "वैसाही होगा।" फिर उन्होंने यत्नके सहित उसे इन्द्रके शरीरसे पृथक् किया। अनन्तर महानुभाव स्वयम्भूने अग्निको स्मरण किया, अग्निने स्मरण करते ही उनके समीप आके कहा, हे भगवन्! मैं आपके निकट उपस्थित हूं, हे अनिन्दित! हे देव! अब मुझे जो कुछ करना हो, उसके लिये आप आज्ञा करिये।

ब्रह्मा बोले, आज मैं इन्द्रके छुटकारेके निमित्त इस ब्रह्महत्याको कई भागमें विभक्त करूंगा, इसलिये तुम इसके चौथे भागका एक अंश ग्रहण करो।

अग्निदेव बोले, हे लोकपूजित प्रभु ब्रह्मन्! इससे मैं किस प्रकार मुक्त हूंगा, उसका आप विचार करिये; मैं इसे ही यथार्थ रूपसे जान-नेकी इच्छा करता हूं।

ब्रह्मा बोले, हे हव्यवाह अग्नि! जो मनुष्य मोहवशसे तुम्हें जलती हुई देखके भी बीजा-ञ्जलि और सोम रससे तर्पित न करेगा, यह ब्रह्महत्या शीघ्र ही उसे अवलम्बन करके उसमें ही निवास करेगी, इसलिये तुम अपना मान-सिक शोक दूर करो।

भीष्म बोले, हव्यकव्य भोक्ता भगवान अग्निने ऐसा सुनके पितामहका वह वचन अङ्गीकार करके उस ही समय ब्रह्महत्यासे आक्रान्त हुए। हे महाराज! तिसके अनन्तर पितामह वृक्ष औषधि और तृणोंको आह्वान करके इस विष-यको कहना आरम्भ किया। हे राजन्! वृक्ष, औषधि और तृणसमूह ऊपर कहे हुए ब्रह्म-हत्याके विषयको सुनके अग्निकी भांति दुःखित होके ब्रह्मासे यह वचन बोले, हे लोक पिता-मह! हम ब्रह्महत्यासे कितने समयमें मुक्त होंगे; हम लोग तो देवके जरिये पहलेसेही अभिहत होरहे हैं, इसलिये फिर हम लोगोंको निहत करना आपको उचित नहीं है। हे